रामायण
का
गूढ़ रहस्य

लेखक

संतदास माहेश्वरी, एम. एस-सी.

स्वामी बाग, आगरा-282005

प्रकाशकीय वक्तव्य

संतदासजी ने सन् 1952 में जो यह **"रामायण का गूढ़ रहस्य"** लिखा था उसमें सन्तमतानुसार रचना के दूसरे बड़े दर्जे ब्रह्माण्ड तक की चढ़ाई की व्याख्या की है। मसलहत वक्त व जीवों के भाग्य व अधिकार को देखते हुए उस समय तुलसीदासजी ने इतना ही भेद खोलना मुनासिब समझा था। लेकिन तुलसीदासजी उससे ऊपर की रचना दयाल देश यानी पूर्णतया आध्यात्मिक व चैतन्य देश, जहाँ माया का नामोनिशान भी नहीं है, उससे अवगत तो थे। इशारे में उसका जिकर किया भी हे। इसे नये अध्याय 11 में दिया है।

रामायण का गूढ़ रहस्य लिखने के बाद संतदासजी ने समय समय पर अपनी अतीत की स्मृतियाँ व प्रतीत की स्मृतियाँ पुस्तकों में न केवल रामायण के कठिन अंशों व कुछ घटनाओं की व्याख्या ही की बल्कि महाभारत की कुछ घटनाओं का भेद भी दिया है। इन सबको परिशिष्ट 1 व 2 में दे दिया गया है। नये अध्याय 11 व इन परिशिष्टों के पढ़ने से एक विशेष प्रकार की अनुभूति और जिज्ञासा सी होती है। उसे और प्रभावी व बलवती करने हेतु परिशिष्ट 3 'चितावनी' में सन्तों की बानियों से कुछ अंश जोड़ दिये हैं जिनसे इस क्षण भंगुर जीवन व संसार एवं इसकी निःसारता भासती है व

सत्य परमार्थ की खोज पैदा होती है। इस जिज्ञासा की तृप्ति हेतु परिशिष्ट 4 में राधास्वामी सन्तमत के सिद्धान्तों व भेद का उल्लेख किया है जिससे खोजी सच्चे व कुल्ल मालिक से मिलने की राह का संकेत पा सकेंगे।

आशा है उपरोक्त के फलस्वरूप इस पुस्तक की उपयोगिता में वृद्धि हो जाने से जन सामान्य इसका लाभ उठा सकेंगे।

— *प्रकाशक*

भूमिका

रामायण पढ़ने सुनने या इसकी लीलाएँ देखने से थोड़ा लाभ इस संसार के बरताव व्यवहार आदि सुधारने का मिल सकता है, किन्तु सच्चा और पूरा लाभ जब तक कि रामायण के अन्तरी भेद को अच्छी तरह न समझा जाय, नहीं मिल सकता। यह अन्तरी भेद रामायण में इस तरह छिपा हुआ है जिस तरह कि दूध में घी और फूल में खुशबू। वास्तव में अन्तरी भेद ही बाहरी चरित्र का आधार है।

काग भुसुंड काया के माहीं।
राम रमा मुख पैठा जाई ॥
तुलसी ता की गति मति जानी।
रामायन में कीन बखानी ॥
यह सब घट में भाखि सुनाई।
अन्धो जिव अन्तै लै जाई ॥
भरत चत्रागन लछिमन भाई।
यह घट माहिं कहेउ समझाई ॥
सुमितरा केकई कौसिल्या।
ये तन भीतर घट में मिलिया ॥
सीता दशरथ राम कहाये।
ये सब घट भीतर दरसाये ॥
सरजू सुरति अवध दस द्वारा।
ये घट भीतर देखि निहारा ॥

रावन कुम्भ लंकपति राई।
त्रिकुटी बह्म बसे तेहि माहीं ॥
रावन ब्रह्म कहा हम जोई।
त्रिकुटी लंक ब्रह्म है सोई ॥
मन्दोदरी भभीषन भाई।
इन्द्रजीत सुत त्रिकुटी माहीं ॥
ये सम्वाद कहा घट माहीं।
रामायन घट माहिं बनाई ॥

— घट रामायण, भाग 1, पृष्ठ 42

'माधुरी' मासिक पत्रिका में परम सन्त तुलसी साहब की 'घट रामायण' को अप्रमाणिक सिद्ध करने के लिए लेख छपा था जिसमें उनके प्रति ऐसे भाव प्रकट किए हैं और ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिससे भारी मूर्खता और ओछा पात्र होना टपकता है। सन्त साध महात्माओं के बचन बानी को न समझना दोष नहीं है, परन्तु पक्षपात करके उनमें ओछी बुद्धि से तरह-तरह की गलतियाँ निकालना अनुचित है। ऐसे कार्य से न केवल उन्हीं की बल्कि औरों की भी हानि होती है। यथार्थ बात कहने में हर्ज नहीं है, पर यदि बात वास्तव में यथार्थ हो। सन्त साध महात्मा इस बात के मोहताज नहीं कि मूढ़ संसार जो इनकी निन्दा करें, उसका कोई जवाब दें। मगर फिर भी कुछ कहना ज़रूरी मालूम हुआ, ब-क़ौल तुलसीदास

तदपि कहे बिनु रहा न जाई

अतः जो कुछ इस पुस्तक में लिखा जा रहा है, वह केवल उनके लिये है जो सन्तों की क़दर करते हैं और जानते हैं कि सन्त मत और संसार के अन्य मतों में क्या फ़र्क़ है।

यह कहना कि रामचरितमानस के पात्रों और स्थानों को घट के भीतर भरने का प्रयत्न किया गया है, ज़ाहिर करता है कि इस बात का ऐसा खयाल करने वालों को पता ही नहीं है कि जो ग्रन्थ दृष्टान्त या कथा allegory के रूप में लिखे जाते हैं उनके असल मानी अन्तरी हैं, जैसे ईसा मसीह का सूली पर चढ़ना, मुहम्मद साहब का शक्कुल-कमर, वग़ैरा वग़ैरा। पर मजबूरी है, यह लोग 'घट की पोथी पढ़ें न पढ़ानी।' अगर कुछ अन्तर का हाल मालूम होता तो पता लगता कि घट के भीतर के स्थान व रूप रामचरित मानस में दिए गए हैं, न कि रामचरितमानस के स्थान व पात्र घट (घट रामायण) में ठूंसे गये हैं।

इस बात को स्पष्ट रूप से समझने व समझाने के लिए पूरी रामायण का अन्तरी भेद वर्णन करना ज़रूरी है ताकि इस प्रकार के सन्देह उठने की गुंजाइश न रहे।

प्रस्तुत पुस्तक में रामायण का यही अन्तरी और गुप्त भेद संक्षेप में वर्णन किया गया है। रामायण की सब घटनाओं को अन्तर में घटित करने की आवश्यकता नहीं। मुख्य मुख्य घटनाओं का दिग्दर्शन करा देना पर्याप्त है जिससे भक्तजन रामायण प्रेमियों को सन्तमत समझने तथा उसमें प्रवेश पाने का उत्साह हो।

सत्यप्रकाश माहेश्वरी

राधास्वामी सत्संग
स्वामी बाग, आगरा
कार्तिक सुदी 1 सम्वत् 2009 वि.
तारीख 19 अक्तूबर सन् 1952 ई.

राधास्वामी दयाल की दया
राधास्वामी सहाय

सूचीपत्र

अध्याय 1

प्रारम्भिक वार्त्ता

1. परम तत्त्व की प्राप्ति विद्या पर निर्भर नहीं है। आवश्यकता है तो सच्ची जिज्ञासा, खोज और तलाश की तथा राह बतलाने वाले व साथ-साथ चलने वाले सच्चे गुरु की। ग्रन्थ तो सिर्फ गवाही दे सकते हैं। वे खोजी की कमर बँधा सकते हैं। मगर उनसे मार्ग हाथ नहीं लग सकता। मार्ग तो सतगुरु की सेवा, भक्ति व अन्तर अभ्यास से ही हाथ लगता है।

2. रामायण में जहाँ-तहाँ अन्तर अभ्यास की बातें भरी पड़ी हैं। पूर्ण रामायण आदि से अन्त तक जीव की ब्रह्म या पार-ब्रह्म पद तक की यात्रा की एक सुन्दर कथा है, रूपक है, जैसा कि कथाएँ रूपक होती है। प्रस्तुत पुस्तक में इसी बात के पुष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

3. अन्तर अभ्यास की विधि को योग अभ्यास कहते हैं। रामायण वास्तव में योग की एक पुस्तक है। योग का वर्णन सीधा सादा न करके कथा के रूप में किया गया है। ब्रह्म के अवतार राम को इस कथा का आधार बनाकर अन्तर का भेद कहा गया है। सीधे रूप में क्यों नहीं? उत्तर इसका यही है कि जनता उस समय की बल्कि कहना चाहिये अभी भी, उस विषय को अपनाने के लिए आमतौर से तैयार

नहीं। कड़वी औषधि मीठे के साथ सहज में खा लेते हैं।

4. इतिहास में धर्मांधता के कितने उदाहरण पाये जाते हैं। खगोल शास्त्र में लोक मत के विरुद्ध जब यह तत्त्व मालूम हुआ कि सूर्य की परिक्रमा पृथ्वी करती है तो लोग नाराज हो गये व शोध लगाने वाले को प्राणों की पड़ गई। फ़क़ीर मंसूर ने जब 'अनलहक' यानी "अहं ब्रह्मास्मि" कहा तो उसे सूली पर चढ़ा दिया गया। तुलसीदास के साथ भी ऐसा ही हुआ। इसका वर्णन घट रामायण में है जिसको उन्होंने अपने दूसरे जन्म में जब तुलसी साहब के नाम से प्रसिद्ध हुए, प्रकट किया। घट का भेद घट रामायण में प्रकट किया तो जनता नाराज़ हो गई, तब रामायण को जो घट रामायण का रूप दिया था, ग़ायब करना पड़ा व साधारण कथा रूप में रामचरित मानस की रचना की। मगर जो बातें कहना चाहते थे, उनको वे अप्रकट रूप से कह ही गये। यही अप्रकट बातें इस पुस्तक द्वारा प्रकट की जाती हैं।

5. इस स्थान पर घट रामायण द्वितीय भाग का अन्तिम शब्द देना आवश्यक मालूम हुआ। इससे जो बात ऊपर लिखी गई, उसकी तसदीक़ ही नहीं, बल्कि तुलसीदास का असल जीवन, मत, ध्येय, इत्यादि का सूक्ष्म रूप में परिचय होगा :

दोहा

तुलसी कहत बताइ अपनी उतपति मति बिधी।
सुधि सतसंगति लार, जग जब से तन में सिधी ॥

चौपाई

अब अपनी बिधि कहा बिसेखा।
तुलसी कीच नीच कर लेखा ॥
मैं अति अधम अचेत अबूझा।
सन्त चरन कछु मोहिं को सूझा ॥
मैं तो अजान जानि जित जाई।
सन्तन कीन्ह जानि सरनाई ॥
मैं तो अचेत चेत चित नाहीं।
सन्त चिताई लीन्ह अपनाई ॥
मैं पुनि सन्त सरन सम नाहीं।
सन्त दयाल दया के सांई ॥
तुलसी मत बुधि नाहिं विवेका।
सन्त चरन चित बाँधी टेका ॥
मैं अब अपनी आदि बताओं।
अपनी बिथा आदि गति गाओं ॥
जग ब्यौहार जगत जग राई।
तन उपजा बिधि कहौं बुझाई ॥
राजापुर जमुना के तीरा।
जहँ तुलसी का भया सरीरा ॥
बिधि बुन्देलखण्ड बोहि देसा।
चित्रकोट बीच दस कोसा ॥
सम्वत् पंद्रह सै नवासी।
भादों सुदी मंगल एकादसी ॥

भया जनम सोइ कहौ बुझाई।
बाल बुद्धि सुधि बुधि दरसाई ॥
तिरिया बरत भाव मन राता।
बिधि बिधि रीत चित्त संग साथा ॥
ज्ञान हीन रस रंग संग माता।
कान्ह कुब्ज बाम्हन मोरी जाता ॥
जगत भाव ऊँचा सब भाँते।
कुल अभिमान मान मदमाते ॥
मोटा मन कछु चीन्ह अचीन्हा।
ज्ञान मते मत रहौं मलीना ॥
एक विधी चित रहों सम्हारे।
मिलै कोई सन्त फिरौं तेहि लारे ॥
सन्त साथ मोहिं नीका भावै।
ज्ञान अज्ञान एक नहिं आवै ॥
अब आगे का सुनो बिधाना।
ता की विधि कहों परमाना ॥
सम्वत् सोलासै थे चौधा।
ता दिन भया अगम का सौदा ॥
सावन सुदी नौमी तिथि बारी।
आधी रात भई गति न्यारी ॥
बिजुली चमक भई उजियारी।
कड़का घोर सोर अति भारी ॥
मन में बहु बिधि भर्म समाया।
यह अजगुत कहो कहँ से आया ॥

राति बीति गई भयउ बिहाना।
मन अचरज सोई कहौं बिधाना ॥
पुनि प्रति रोज रोज अस होई।
एक दिवस सूरति चढ़ि जोई ॥
नील सिखर गुरु द्वारे माहीं।
निरखा अचरज कहा न जाई ॥
कहँ लगि कहों बिधी बिधि डण्डा।
पुनि सब निरख परा ब्रह्मण्डा ॥
गंगा जमुना और त्रिबेनी।
कँवल माहिं सतगुरु की सैनी ॥
पद्म प्रयाग अगम पुर बासा।
सतगुरु कंज सुरति पद पासा ॥
तीन लोक भीतर सब देखा।
कहौं कहाँ लगि बिधि बिधि लेखा ॥
जो ब्रह्मण्ड भरा जग माईं।
सो देखा सब घट में जाई ॥
नित नित सैल सुरति संग खेला।
निरखा अगम निगम अस सैला ॥
कस कस कहौ अगम बिधि नाना।
एक दिवस चढ़ि अगम ठिकाना ॥
वहं की सैल चौंज कछु भारी।
अण्ड खाण्ड ब्रह्मण्ड से न्यारी ॥
अस अस देखा अगम तमासा।
चौथा पद सतलोक निवासा ॥

वे सत सतगुरु भेंटे जाई।
सूरत सत्तनाम रही छाई ॥
तीन लोक से चौथा न्यारा।
तहँ गइ सूरति सतगुरु प्यारा ॥
नित नित सैल कोई दिन कीन्हा।
चौथा पद जहँ सतगुरु लीन्हा ॥
एक दिवस भइ ऐसी रीती।
सूरति चढ़ि रस आगे पीती ॥
पिण्ड ब्रह्मण्ड दोऊ से न्यारी।
उतरै चढ़ै चढ़ै नित चारी ॥
चौथे पद से न्यारा धामा।
सतगुरु पद के पार अनामा ॥
तुलसी प्रीति सुरति की लागी।
राति दिवसि सौवै नहिं जागी ॥
कहँ लगि ब्यान कहौं गति गाई।
तुलसी मोसे कही न जाई ॥
जो सब विधि मैं कहों सुनाई।
तो जग कागद मिलै न स्याही ॥
ये विधि देखा सकल विधाना।
अब कहौं सुनौ और विधि नाना ॥
कंज गुरु ने राह बताई।
देह गुरु से कछु नहिं पाई ॥
अब आगे विधि सुनौ विधाना।
ताकी विधी कहौ परमाना ॥

ऐसे कइ दिन बीति सिराने।
राजापुरी जगत सब जाने ॥
लोग दरस को नित नित आवै।
दरस भाव सबको उपजावै ॥
नर नारी सब आवैं झारी।
दरसन करै सिपारस भारी ॥
हिरदे अहीर कासी का बासी।
रहे राजापुर नौकर पासी ॥
वोहु प्रति दिन दरसन को आवै।
प्रीति बढ़ी हित कहा न जावै ॥
राति दिवस दिन दिन रहै पासा।
तुलसी बिना और नहिं आसा ॥
एक दिवस भइ ऐसी रीती।
कासी गये बहुत दिन बीती ॥
हमरा चित हिरदे में बासी।
हम चलि गये नग्र जहँ कासी ॥
सम्वत् सोलासै रहे पन्द्रा।
चैत मास बारस तिथि मंगरा ॥
पहुँचे कासी नगर मँझाई।
हिरदे सुनत दौड़ि चलि आई ॥
आये चरन लीन्ह परसादी।
विधि विधि रहन कुटी की साधी ॥
कुटी बनाय कीन्ह अस्थाना।
कासी में हम रहे निदाना ॥

गंगा निकट कुटी जहं कीन्हा।
हिरदे नित आवै लौ लीन्हा ॥
सतसंग रंग राह रस पीना।
हम पुनि वस्तु अगम की दीन्हा ॥
अस अस कुछ दिन कासी माईं।
रहे तहाँ पुनि सहज सुभाई ॥
सोलासै सोला में सोई।
कातिक बदी पंचमी होई ॥
आये पलकराम इक सन्ती।
रहे कासी में नानक पंथी।
गुष्टि भाव विधि उनसे कीन्हा।
खुशी भये मारग को लीना।
घट रामायन ग्रन्थ बनावा।
ताकी विधि दिवस सब गावा ॥
सम्मत सौलासै अट्ठारा।
उठी मौज ग्रन्थ कियौ सारा ॥
भादौं सुदी मंगल एकादसी।
आरंभ कियो प्रथम मन भासी ॥
सुनि कासी में अचरज कीन्हा।
सारे नगर में भयो अलीना ॥
पण्डित जग्त जैन और तुरका।
भयो झगरा आइ कासीपुर का ॥
पण्डित भेष जग्त मिलि सारा।
घट रामायण परी पुकारा ॥

जो कुल झगरा रीति जस भाँती।
जस जस भया दिवस अरु राती ॥
ता से ग्रन्थ गुप्त हम कीन्हा।
घट रामायण चलन न दीन्हा ॥
या से सन्त मते को रीती।
जग्त अजान न जानै प्रीति ॥
सम्मत सोलासै इकतीसा।
राम चरित्र कीन्ह पद ईसा ॥
ईस कर्म औतारी भावा।
कर्म भाव सब जगहिं सुनावा ॥
जग में झगरा जाना भाई।
रावन राम चरित्र बनाई ॥
पण्डित भेष जग्त सब झारी।
रामायन सुनि भये सुखारी ॥
अंधा अंधे विधि समझावा।
घट रामायन गुप्त करावा ॥
अब कहीं अन्त समय अस्थाना।
देह तजी विधि कहौ विधाना ॥

दोहा

सम्मत सोलासै असी, नदी बरुन के तीर।
सावन सुकला सत्तमी, तुलसी तज्यो शरीर ॥

चौपाई

मैं अपना बरतन्त बताई ।
समझ बूझ सुध बुध चित लाई ॥
जस जस भया बिधी विधि लेखा।
तस तस तुलसी कहा बिसेखा ॥

दोहा

तुलसी नीच निकाम, गति मति उतपति सब सुधी।
निधि स्रुति सन्त समान, आदि अन्त तुलसी बिधी ॥

6. ऊपर के गूढ़ विषय को समझने के लिए योगाभ्यास की प्रारम्भिक बातें मालूम होनी चाहिये। उनका वर्णन अगले अध्याय में किया गया है। कबीर साहब ने अपने शब्द "कर नैनों दीदार, महल में प्यारा है" में घट के मुख्य मुख्य स्थानों का उल्लेख कर दिया है और उसी के अनुसार रामायण की कथा को योग विषय से लागू कर बतलाने का प्रयास किया गया है।

7. यह प्रयास कहाँ तक सफल हुआ है, ज्ञात करने के लिए पाठकों को कथा का हर एक सूक्ष्म से सूक्ष्म अंग कैसे घटित हुआ है, देखने की कोशिश नहीं करनी चाहिये। कारण यह है कि अन्तर का भेद और रास्ता बाचक ज्ञान द्वारा नहीं, अन्तरमुख अभ्यास करके जानने का है।

8. सर्वसाधारण के सामने खोल कर नहीं रक्खा जा सकता। तुलसीदास ने तो उसे रामचरितमानस में रूपक देकर

ही वर्णन किया है। तुलसी साहब ने भी स्पष्ट भाषा में नहीं कहा, संकेत मात्र ही किया। अलबत्ता जो उनके सामने उनके शिष्य हुए, उन्हें असली भेद दिया। सन्त मत आमतौर से जारी होने पर भी अंतरी भेद खोल कर नहीं कहा गया। सन्तों ने उतना ही भेद अन्तरी मार्ग का खोला है जो चलने के लिए आवश्यक है। इसलिये यदि इस पुस्तक को पढ़कर पाठकों को स्पष्ट हो जाये कि रामायण केवल ऊपरी कथा नहीं, वरंच भीतरी भेद से भरी हुई है तो लेखक अपना प्रयत्न सफल समझेगा।

9. लोगों में एक तो परमार्थ की ओर रुझान और झुकाव बहुत कम है और जिनमें है भी वह लीक पिटाई के तौर से। सच्चे जिज्ञासु बहुत कम हैं। सच्चे जिज्ञासु ही रूढ़ि या ऊपरी बंधन को तोड़ सच्चे मार्ग में लग सकते हैं, सब नहीं।

10. कोई ऐसी बात नहीं है जो सन्त मत में वैज्ञानिक रीति से न समझाई जा सके। पर यह कमाई का मार्ग है विद्या ज्ञान का नहीं।

11. सन्तों के बचनों का अर्थ सन्त ही कर सकते हैं या वह जिसने उनसे सुना हो। उनके अर्थ अनुभवी हैं। भाषा शास्त्र की वहाँ गम नहीं। विद्या के वे गुलाम नहीं हैं।

सन्त न विद्या पढ़ते कोई।
उनके अनुभव समुन्द समानी ॥
उनका प्यार लगा प्यारे से।
विद्या क्योंकर याद रहानी ॥

बे विद्या के जो नर प्रेमी।
सो सन्तन के संग लिपटानी ॥

— राधास्वामी साहब

12. सब सन्तों की बोली एक है, उन्होंने एक ही बात कही है, पर उस पर अमल करने से भेद खुलेगा और उसका असली अर्थ दरसेगा। जैसे

कामादिक सब ग्वाल बाल संग।
बिन्द्राबन तन करत खिलार ॥

— राधास्वामी साहब

13. अब बिंद्रावन शब्द पर विचार कीजिये। बिंद्राबन का शुद्ध रूप वृन्दावन वह स्थान है जहाँ वृन्दा (तुलसी) के वन खड़े हैं। वृन्दा का अपभ्रंश बिन्द्रा हुआ। उसका अपभ्रंश बिन्दा भी है। बिन्द्राबन का अर्थ तन यानी जो बिंदु से बना है। सन्त भाषा शास्त्र के कैदी नहीं हैं। वे जानते हैं कि "वृन्दावन" श्रीकृष्ण का क्रीड़ा स्थल है। परन्तु जब उन्होंने कुल कृष्ण लीला का अंतरी अर्थ योगाभ्यास में घटाया तो कहा :

मन है कृष्ण इन्द्रियाँ गोपी।
लीला भोग विकार ॥
कामादिक सब ग्वाल बाल संग।
बिन्द्राबन तन करत खिलार ॥

— राधास्वामी साहब

14. वही बात परम सन्त तुलसी साहब ने अपने ग्रन्थ

में कही है :—

बिंदाबन बिंद कीन्ह, सोई साचा।
गुसाँई गोपी के साथ बन बन नाचा ॥

15. शब्दों के अर्थों के कई कारण हैं। कुछ ध्वनि के अनुकरण के हैं। कुछ कृत्रिम हैं। कुछ लीला वाचक हैं। पर कितने ही शब्द देव-वाणी के हैं यानी वे शब्द जिनका भाव, कार्य व ध्वनि भीतर से सम्बन्ध रखते हैं, जैसे घण्टा का टन टन शब्द, अंग्रेजी का डिंग डांग और सत्त शब्द का रूपांतर हक़ है। जिन्होंने अन्तर में शब्द सुना है उन्होंने सच्चे (भीतरी) शब्द शास्त्र के अनुसार अर्थों को घटित किया है।

16. सब जीव सन्त मत के अधिकारी नहीं हैं, यद्यपि सन्त मत सभी जीवों के लिए समान रूप से खुला हुआ है। कारण इसका यह है कि सन्तों के अनुभवी अर्थों में जीवों को श्रद्धा नहीं। हाँ, जिन्हें अपने जीव के सत्य कल्याण का फिक्र है वे स्वाभाविक रीति से सन्तों पर भाव ला सकते हैं। सब नहीं।

17. जैसे सब शास्त्रों में पारिभाषिक शब्द होते हैं, वैसे योग शास्त्र में भी हैं। यहाँ योग शास्त्र का अर्थ संकुचित न लिया जावे यानि केवल पातंजलि योग शास्त्र तक नहीं। कितने गगन, कितने सुन्न, कितने नाल, कितने पर्वत, कितने कुण्ड आदि हैं। शेष, कुर्म, शक्ति, आदि भी बहुत हैं। इन सब का सन्त मत में वर्णन किया गया है पर बिना भेदी गुरु

के उनके ग्रंथों से लाभ नहीं उठाया जा सकता। सन्त साधु महात्माओं की बानी का मनन किया जावे, तो इल्मी ज्ञान इन स्थानों का हो। फिर भी यह समझने के लिए कि कौन-सा गगन कहाँ है, भेदी की जरूरत होगी।

18. जब से परम सन्त कबीर साहब का इस सँसार में आगमन हुआ, तब से भक्ति मार्ग की धारा अबाधित रूप से निरन्तर बह रही है। सूरदास, तुलसीदास, रैदास, मीरा बाई, दयाबाई, सहजो बाई, पल्टू साहब, तुलसी साहब, दादू दयाल, सुंदरदास, ये सब इसी नई पौध के आभूषण हुए हैं व भक्ति मार्ग में उन्हीं का बोलबाला है।

जात पाँत पूछे नहीं कोई।
हरि को भजे सो हरि का होई ॥

19. जनता में योग का प्रचार नहीं हुआ। पर चिर काल से मंदिरों में घण्टा संख नौबत घड़ियाल इत्यादि आरती के रूप में शब्द व गुरु की भक्ति का प्रचार पूरे आचार्य व अवतार के चरणामृत प्रसाद दर्शन इत्यादि के रूप में होता आ रहा है। मतलब यह था कि लोगों का ध्यान अन्तरी भेद की ओर आकर्षित हो। लोग मंदिरों में आते जाते हैं। पर किसको घण्टा संख आरती देखकर कुतूहल होता है? कौन मालूम करना चाहता है कि इन बाजों के बजने का क्या मतलब है? सर्व साधारण के सामने रोज़ तारा मण्डल उदय अस्त व प्रकृति में फेरफार होते नज़र आते हैं, परंतु कुतूहल केवल वैज्ञानिकों को होता है, जिनका वे

कारण ढूंढ़ निकालते हैं। शिखा सूत धारण करते चले आ रहे हैं, पर ये चिह्न किन बातों की स्मृति दिलाने वाले हैं, कोई पता नहीं लगाता। भेड़ चाल चल रही है।

20. यह पुस्तक अन्तरी भेद जानने को उत्साहित करने के लिए लिखी गई है। सहज योग का मार्ग सन्तों ने दया करके जारी किया। इसमें प्राणों की साधना, धोती, नेती इत्यादि की आवश्यकता नहीं है। कबीर साहब के उद्धृत शब्द से मालूम होगा कि अन्तरी भेद क्या है। सुरत द्वारा अन्तरी शब्दों को खोलने व सुनने का अभ्यास ''सुरत शब्द योग'' कहलाता है। इस पुस्तक में धुर धाम तक की यात्रा का वर्णन नहीं है। केवल ब्रह्माण्ड की चोटी तक का है। आशा की जाती है कि रामायण प्रेमी इसे शौक से पढ़ेंगे, समझेंगे और उनके हृदय में पूरा भेद मालूम करने व अंतर में चलने की इच्छा जाग्रत होगी।

21. रूढ़िवादियों को भी इसे पढ़ने से जिज्ञासा जागेगी। आत्मा न हिंदू है, न यवन, न ईसाई, न जैन। न वह देशकाल के अधीन है। सर्वथा स्वतंत्र है। वह कैद में पड़ गई है और भूल गई है कि वह कौन है। उसके छुटकारे का बस यही एक मार्ग योग द्वारा है। और दूसरा नहीं। साध सन्त महात्माओं के इस कलियुग में पधारने से भक्ति योग का प्रचार हुआ। उन्होंने सुरत शब्द योग जारी किया। यही केवल एक उपाय उद्धार का रक्खा। इसी से घट का हाल मालूम होगा और घट की पोथी पढ़ना ज़रूरी है। यही घट रामायण है।

22. सब मज़हब, धर्म व मत एक हैं, किसी भी राह से चलो, मंज़िल तक पहुँच जाओगे, किसी भी नदी के ज़रिये समुद्र तक पहुँच सकते हो, यह कथन चिन्तनीय और काबिल अफ़सोस है। यह परमार्थ की ओर से लापरवाही ज़ाहिर करता है।

23. तुलसीदास के रामचरित मानस के उत्तर कांड के 26वें दोहे में राज्याभिषेक के प्रसंग के समय लिखा है :–

सुनि खगेस तेहि अवसर ब्रह्मा सिव मुनिवृन्द।
चढ़ि विमान आये सब सुर देखन सुखकन्द ॥

(कागभुशुण्ड ने कहा कि हे गरुड़! सुनो, उस समय ब्रह्मा शिवजी तथा ऋषि समूह और सब देवता विमानों में चढ़कर सुखधाम श्री राम को देखने के लिए आये।)

24. ब्रह्मा विष्णु शिव, यह त्रिदेव हैं। ऊपर के दोहे से स्पष्ट है कि विष्णु नहीं आये। क्यों? इसलिए कि इस समय राम को विष्णु ने अपने ही बराबर समझा। स्वयं अपनी ही स्तुति करने क्यों आते? अपने मुँह अपनी तारीफ कैसे?

25. दूसरे स्थल में राम के विषय में उत्तर काण्ड में कहा है :–

सारद कोटि अमित चतुराई।
विधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई ॥
विष्नु कोटि सत पालन करता।
रुद्र कोटि सत सम संहरता ॥

उनमें अनगिनत करोड़ों सरस्वतियों के समान चतुराई है। सौ करोड़ ब्रह्मा के समान सृष्टि की निपुणता है। वे सौ करोड़ विष्णु के समान पालन कर्त्ता और सौ करोड़ रुद्रों के समान संहार कर्त्ता हैं।

26. निज निज मति मुनि हरि गुन गावहिं।
निगम शेष सिव पार न पावहिं ॥

यहां हरि रूप सहसदल कँवल का है जिससे त्रिदेव उत्पन्न हुए हैं।

27. बिना अन्तरी भेद से परिचित हुए सब धान बाईस पँसेरी जँचता है। हरि, विष्णु, ब्रह्मा, शिव, शक्ति, सब परमात्मा के स्वरूप हैं, सब एक हैं, कोई भी नाम लो किसी मार्ग से चलो, ईश्वर तक पहुँचोगे, इस भाव को दूर करने के लिए अस्पष्ट रीति से अनेक देवताओं का पृथक पृथक महत्त्व तुलसीदास ने क़ायम किया, खोलकर नहीं कहा, क्योंकि लोग सुनने को तैयार न थे।

झूठ कहे जग नष्ट है सत्य कहे अति कष्ट।
इस विधि पूरब वृद्ध जन कह न सके स्पष्ट ॥

– – – –

सांच कहे सो मारा जाई, झूठे जग पतियावे।

28. स्पष्ट कहने वालों का मुंह बंद किया जाने लगा, तब सन्त मत के अनुयाइयों ने प्रचलित धर्म कथाओं में अपने अनुभूत तत्त्वों का मेल कर सुहावना बनाकर जनता के सामने रखना शुरू किया। जनता ने उसका स्वागत किया। तुलसी कृत रामायण (रामचरित मानस) इसका एक उदाहरण है।

29. मगर जो बात उन्हें कहनी थी और जिसका प्रमाण वह स्वयं थे, वह भी तुलसीदास ने कही है।

जैसे :

'ब्रह्म राम ते नाम बड़ बर-दायक-बर-दानि'

'मोरे मत बड़ नाम दुहूँ ते'

''कहउँ नामु बड़ राम तें, निज विचार अनुसार''

'कहउँ कहाँ लगि नाम बड़ाई-राम न सकहि नाम गुन गाई'

30. यह 'नाम' कुछ और है जिसका भेद सिर्फ़ सन्त देते हैं। नाम से तात्पर्य ध्वन्यात्मक नाम से है जिसकी धुन घट घट में हो रही है और जिसको कबीर साहब ने 'आदि नाम' कहा है :

कोटि नाम संसार में, ता ते मुक्ति न होय।
आदि नाम जो गुप्त जप, बूझे बिरला कोय ॥
राम राम सब कोई कहे, नाम न चीन्हें कोय।
नाम चीन्हि सतगुरु मिलै, नाम कहावै सोय ॥

31. इन नामों या शब्दों को मामूली नामों से जो चीजों विचारों और भावों के नाम हैं, मिश्रित नहीं करना चाहिये।

32. तुलसीदास ने और भी कहा है :–

'नयनन्हि सन्त दरस नहिं देखा,
लोचन मोर पंख कर लेखा'

(जिन्होंने अपनी आँखों से सन्तों के दरशन नहीं किये, उनकी आँखें मोर के पंखों पर बनी आँखों के समान हैं।)

33. रामचन्द्र के मुख से कहलवाया है कि 'मो से सन्त अधिक कर लेखे।' रामायण में जहाँ तहाँ सन्तों की महिमा गाई है। सन्तों के विषय में कहा है कि उन्हें मुझसे भी बड़ा समझें, उनका दर्शन करें, उनका प्रसाद लेवें व उनका सतसंग करें।

मुद मंगलमय सन्त समाजू।
ज्यों जग जंगम तीरथ राजू ॥

(सन्तों का समाज आनन्द मंगल देने वाला है। वह संसार में चलता-फिरता तीर्थराज प्रयाग है।)

34. सन्तों के समान कोई हितकारी व उपकारी नहीं।

पर उपकार बचन मन काया।
सन्त सहज सुभाउ खगराया ॥
सन्त उदय सन्तत सुखकारी।
विश्व सुखद जिमि इन्दुतमारी ॥
होहि उलूक सन्त निन्दा रत।
मोह निसा प्रिय ग्यान भानु गत ॥

(सन्तों का ऐसा सहज स्वभाव होता है कि वे मन बचन और काया से दूसरों का उपकार करते हैं। जैसे अंधकार को दूर करने वाला चंद्रमा अपने उदय से संसार को सुख देता है, वैसे ही संत अपने उदय, प्रभाव से सदा सुखदायक होते हैं। जो संतों की निंदा करने में तत्पर हैं, वे उल्लू हैं। उनको मोह रूपी रात प्यारी है, ज्ञान रूपी सूर्य नहीं।)

35. योग मार्ग के अनेक स्थान हैं और उनके अलग अलग धनी हैं, इसलिए अनेक मत चल पड़े। ये मत स्वाभाविक हैं। इनके सिवाय कृत्रिम मत अलग हैं जो विद्या बुद्धि से चले हैं। सबको एक नहीं कह सकते। सबका क्षेत्र अलग-अलग है। जो जहाँ तक पहुँचा है वहीं तक का मार्ग उसने गाया है। योग मार्ग में अलग-अलग मंज़िलों का भेद बतलाया है। इस मार्ग को भली भाँति जान लेने से मनुष्य के परस्पर विरोध का स्थान नही रह जाता। इस मार्ग को अच्छी तरह समझ लेने पर मालूम हो जाता है कि किस प्रकार एक से अनेक हुए और फिर कैसे अनेकता के दोष से बचकर एक हो सकते हैं। आशा की जाती है कि यह पुस्तक एकता व शांति का मार्ग प्रशस्त करेगी व दुरूह भेद से भरी सन्त बानी की पुस्तकों के अनुशीलन में सहायता मिलेगी।

36. साहित्यिक जगत में परम सन्त तुलसी साहब की घट रामायण पर आक्षेप हुए हैं। इस पुस्तक में उन आक्षेपों का उत्तर दिया गया है।



अध्याय 2

रचना के भेद का संक्षिप्त वर्णन जैसा संतों के मुख से सुना और उनकी बानी में पढ़ा

37. रचना के तीन हिस्से हैं निर्मल चैतन्य देश, ब्रह्माण्ड और पिण्ड। पिण्ड में छः चक्र हैं—गुदा, इन्द्री, नाभि, हृदय, कण्ठ और तीसरा तिल अथवा षटमचक्र। यह ब्रह्माण्ड के छः कँवलों के बिम्ब और ब्रह्माण्ड के छः कँवल, निर्मल चैतन्य देश के छः पद्मों के बिम्ब हैं। ब्रह्माण्ड के छः कँवल यह हैं शिव लोक, ब्रह्मा का लोक, विष्णु लोक, सहस दल कँवल, त्रिकुटी और सुन्न। शिव, ब्रह्मा और विष्णु के लोकों को "अण्ड" कहते हैं। पिण्ड अण्ड और ब्रह्माण्ड को तीन लोक और सन्तों के निर्मल चैतन्य देश को चौथा लोक कहते हैं। ब्रह्माण्ड में पार-ब्रह्म पद शामिल है।

38. सन्तों के निर्मल चैतन्य देश में केवल चैतन्य ही चैतन्य और अन्तरमुख शक्ति है। वहाँ काल और माया व जड़ता और बहिरमुख शक्ति का नामो-निशान नहीं है। ब्रह्माण्ड और पिण्ड, काल यानि ब्रह्म और माया के देश हैं ब्रह्माण्ड में मन और माया पर चैतन्य ग़ालिब और हावी है यानी वहाँ मन और माया हैं, मगर उन पर चैतन्य प्रधान है।

पिण्ड में चैतन्य पर मन और माया ग़ालिब और हावी हैं यानी यहाँ चैतन्य है ज़रूर मगर मन और माया प्रधान हैं। माया और ब्रह्म की रचना कल्पित और नाशमान है। ब्रह्माण्ड में देश अभाव होता है और पिण्ड में पृथक पृथक और जल्द जल्द मृत्यु होती है। संतों का निर्मल चैतन्य देश अजर, अमर, अविनाशी और सदा एक रस है।

39. नीचे के तीन चक्रों, गुदा, इन्द्री और नाभि की कार्रवाई हैवानी है यानी पशुओं से ताल्लुक रखती है। इन चक्रों में मुख्य अंग से बरतना पशुवत है। पहले तीन अवतार मच्छ कच्छ और वाराह इन्हीं तीन चक्रों से ताल्लुक रखते हैं। यह हैवानी ताकतों के अवतार थे। यह शक्ल सूरत में भी पशु थे। हृदय चक्र पर नर और पशु की सन्धि है। नरसिंह अवतार हृदय चक्र से ताल्लुक रखता है। हृदय चक्र पर जो शिव का रूप है वह 'पशुपति' कहलाता है। ऊपर के तीन चक्रों में बरतने और गति होने से 'नर' कहलाता है। तीसरे तिल यानी छठे चक्र पर पहुंचने से जोगी गति और जोगानन्द प्राप्त होता है। ब्रह्म और पार-ब्रह्म पद में पहुँचने पर जोगेश्वर गति और जोगेश्वरानन्द प्राप्त होता है। ब्रह्म और पार-ब्रह्म पद के परे, देश सन्तों का शुरू होता है। वह सुरत चैतन्य का देश है जिसका पता और भेद सिर्फ सन्तों ने दिया और प्रथम परम सन्त अवतार कबीर साहब का हुआ। नीचे एक शब्द कबीर साहब का दिया जाता है :-

कर नैनों दीदार महल में प्यारा है ॥टेक॥
काम क्रोध मद लोभ बिसारो,
सील सन्तोष छिमा सत धारो।
मद्द माँस मिथ्या तजि डारो,
हो ज्ञान घोड़े असवार भरम से न्यारा है ॥1॥
धोती नेती बस्ती पाओ,
आसन पदम जुगल ले आओ।
कुम्भक कर रेचक करवाओ,
पहले मूल सुधार कारज हो सारा है ॥2॥
मूल[1] कँवल दल चतुर बखानो,
कलिंग जाप लाल रंग मानो।
देव गनेस तहँ रोपा थानो,
ऋध सिध चँवर ढुलाता है ॥3॥
स्वाद[2] चक्र षट दल विस्तारो,
ब्रह्मा सावित्री रूप निहारो।
उलटि नागिनी का सिर मारो,
तहाँ सब्द ओंकारा है ॥4॥
नाभी अष्ट कँवल दल साजा,
सेत सिंघासन बिस्नु बिराजा।
हिरिंग जाप तासु मुख गाजा,
लक्ष्मी सिव आधारा है ॥5॥

(1) मूल कँवल = गुदा चक्र, (2) स्वाद चक्र = इन्द्री चक्र।

द्वादस कँवल हृदय के माहीं,
जंग गौर सिव ध्यान लगाई।
सोहं शब्द तहाँ धुन छाई,
गन करैं जैजै कारा है ॥6॥
दो दल कँवल कण्ठ के माहीं,
तेहि मध बसे अविद्या बाई।
हरि हर ब्रह्मा चँवर ढुराई,
जहँ श्रृंग नाम उच्चारा है ॥7॥
ता पर कंज[1] कँवल है भाई,
बग भौंरा[2] दुई रूप लखाई।
निज मन करत तहाँ ठकुराई,
सो नैनन पिछवारा है ॥8॥
कँवलन भेद किया निर्वारा,
यह सब रचता पिण्ड मँझारा।
सतसंग कर सतगुरु सिर धारा,
वह सत नाम उचारा है ॥9॥
आँख कान मुख बन्द कराओ,
अनहद झिंगा शब्द सुनाओ।
दोनों तिल एक तार मिलाओ,
तब देखो गुलज़ारा है ॥10॥

---

(1) तीसरा तिल, षटम् चक्र, शिव नेत्र, ब्रह्म रंध्र, नुक्ते सुवेदा (2) बकुला और भौंरा अर्थात् सेत श्याम पद।

चन्द सूर एकै घर लाओ,
सुषमन सेती ध्यान लगाओ।
तिरबेनी के संध समाओ,
भोर उतर चल पारा है ॥11॥
घंटा संख सुनो धुन दोई,
सहस कँवल दल जगमग होई।
ता मध करता निरखो सोई,
बंकनाल धस पारा है ॥12॥
डाकिनी साकिनी बहु किलकारें,
जम किंकर धर्म दूत हकारें।
सत्तनाम सुन भागें सारे,
जब सतगुरु नाम उचारा है ॥13॥
गगन मण्डल बिच उर्धमुख कुइया,
गुरुमुख साधू भर भर पीया।
निगुरे प्यास मरे बिन कीया,
जा के हिय अंधियारा है ॥14॥
त्रिकुटी महल में विद्या सारा,
घनहर[1] गरजें बजे नगारा।
लाल बरन सूरज उजियारा,
चतुर कँवल मंझार शब्द ओंकारा है ॥15॥
साध सोई जिन यह गढ़ लीन्हा,
नौ दरवाज़े परगट चीन्हा।
दसवाँ खोल जाय जिन दीन्हा,
जहाँ कुलुफ[2] रहा मारा है ॥16॥

(1) बादल, (2) ताला।

आगे सेतु सुन्न है भाई,
मानसरोवर पैठि अन्हाई।
हंसन मिलि हँसा होई जाई,
मिलै जो अमी अहारा है ॥17॥
किंगरी सारंग बजै सितारा,
अच्छर ब्रह्म सुन्न दरबारा।
द्वादस भानु हंस उजियारा,
खट दल कँवल मंझार सब्द ररंकारा है ॥18॥
महा सुन्न सिंध विषमी घाटी,
बिन सतगुरु पावै नहिं बाटी।
ब्याघर सिंध सरप बहु काटी,
तहँ सहज अचिंत पसारा है ॥19॥
अष्ट दल कँवल पारब्रह्म भाई,
दहिने द्वादस अचिंत रहाई।
बायें दस दल सहज समाई,
यों कँवलन निरबारा है ॥20॥
पाँच ब्रह्म पाँचों अण्ड बीनो,
पाँच ब्रह्म निःअच्छर चीन्हो।
चार मुकाम गुप्त तहँ कीन्हो,
जा मध बन्दीवान पुरुष दरबारा है ॥21॥
दो पर्वत के संध निहारो,
भँवरगुफा तेहि सन्त पुकारो।
हंसा करते केल अपारो,
तहाँ गुरन दरबारा है ॥22॥

सहस अठासी दीप रचाये,
हीरे पन्ने महल जड़ाये।
मुरली बजत अखण्ड सदाये,
तहँ सोहं झनकारा है ॥23॥
सोहं हद्द तजी जब भाई,
सत्तलोक की हद पुनि आई।
उठत सुगंध महा अधिकाई,
जा को वार न पारा है ॥24॥
षोड़स भानु हंस को रूपा,
बीना सत धुन बजै अनूपा।
हंस करत चँवर सिर भूपा,
सत्त पुरुष दरबारा है ॥25॥
कोटिन भानु उदय जो होई,
एते ही पुनि चन्द्र लखोई।
पुरुष रोम सम एक न होई,
ऐसा पुरुष दीदारा है ॥26॥
आगे अलख लोक है भाई,
अलख पुरुष की तहँ ठकुराई।
अरबन सूर रोम सम नाहीं,
ऐसा अलख निहारा है ॥27॥
ता पर अगम महल इक साजा,
अगम पुरुष ताही को राजा।
खरबन सूर रोम इक लाजा,
ऐसा अगम अपारा है ॥28॥

ता पर अकह लोक है भाई,
पुरुष अनामी तहाँ रहाई।
जो पहुँचा जानेगा बाही,
कहन सुनन तें न्यारा है ॥29॥
काया भेद किया निर्बारा,
यह सब रचना पिण्ड मँझारा।
माया अवगति जाल पसारा,
सो कारीगर भारा है ॥30॥
आदि माया कीन्ही चतुराई,
झूठी बाज़ी पिण्ड दिखाई।
अवगति रचन रचो अण्ड माहीं,
ता का प्रतिबिम्ब डारा है ॥31॥
शब्द विहंगम चाल हमारी,
कहै कबीर सतगुरु दई तारी।
खुले कपाट सब्द झनकारी,
पिण्ड अण्ड के पार सो देस हमारा है ॥32॥



अध्याय 3

ब्रह्म के अवतारों का वर्णन

40. परमार्थ की कार्रवाई समयानुसार, कर्मानुसार, संस्कारानुसार और फिर अधिकारानुसार होती है। जिस वक्त जिस अधिकार के जीव होते हैं उस वक्त उसी के बमूजिब ऊपर से अवतार और आचार्य और पीर पैगंबर वगैरा आते हैं।

41. ब्रह्म के अवतार भी इसी सिलसिले और क्रम में हुए हैं। पहले पशु-रूप मच्छ-कच्छ और वाराह अवतार हुए और फिर नर-पशु रूप नरसिंह अवतार हुआ। यह बात सही है कि सब ब्रह्म के अवतार थे, मगर जीवों के अधिकार के अनुसार एक के बाद दूसरा बढ़कर दर्जे का, इस तौर से हुए। सबके अन्त में सोलह कला सम्पूर्ण कृष्णावतार हुआ।

42. ब्रह्म के दस अवतार यह हैं :—

सतयुग में	4 मच्छ, कच्छ, वाराह और नरसिंह
त्रेता में	3 बावन, परसराम और राम
द्वापर में	2 कृष्ण और बुद्ध
कलियुग में	1 कल्कि

43. रामचन्द्र अवतार लेकर यहाँ आये और जो कुछ काम उन्होंने किये और जिनका वर्णन रामायण में किया गया है, उनमें राम लोक और उसकी प्राप्ति का भेद क़ायदे और सिलसिले से छिपा हुआ है। अन्तःकरन अथवा हृदय चक्र, कण्ठ चक्र, षटम् चक्र, अण्ड, सहसदल कँवल, त्रिकुटी और सुन्न, यह सात मंज़िलें रामायण में वर्णन किये हुए मन के अभ्यास की हैं। यही सात सीढ़ियां रामायण के सात सोपान अथवा कांड हैं।

एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना।
रघुपति भगति केर पंथाना ॥

(इस कथा में जो सुंदर सात सोपान (सीढ़ियाँ) हैं, वे रामचन्द्र की भक्ति के मार्ग हैं)

44. सन्तों का सुरत शब्द योग इस मन के अभ्यास से क़तई अलग और न्यारा है।



अध्याय 4

जीव की पैदायश

45. गुदा चक्र पर गनेश का बासा है। चूंकि पहले ज़माने में प्राणायाम यानी अष्टांग योग का अभ्यास इसी चक्र से शुरू किया जाता था, इसलिये प्रथम पूजा इस चक्र के देवता या धनी की यानी गनेश की प्रत्येक कार्य में मुक़र्रर की गई। चुनांचे तुलसीदास का भी पहला सोरठा गनेश स्तुति में है।

जेहि सुमिरत सिधि होई,
गन नायक करिबर बदन।
करहु अनुग्रह सोइ,
बुद्धिरासि सुभ गुन सदन ॥

(जिनके स्मरण करने से सब काम सिद्ध हो जाते हैं, जिनका मुख हाथी के मुख के समान सुंदर है, जो समस्त गुणों की खान और महा बुद्धिमान हैं, ऐसे श्री गनेशजी मुझ पर कृपा करें।

46. प्रारंभ में जीवन की उत्पत्ति दिखलाई गई है जिसका वर्णन इस प्रकार है :–

बाहरी चरित्र

47. प्राचीनकाल में भारतवर्ष में कौशल नाम का एक प्रांत था जिसे आजकल अवध कहते हैं। उस समय इस प्रांत

की राजधानी सरयू नदी के किनारे पर स्थित अयोध्या नगरी थी। यहां सूर्यवंशी क्षत्रिय राजा राज करते थे। इस वंश में राजा दशरथ बड़े प्रतापी हुए हैं। उनकी कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी ये तीन प्रधान रानियाँ थीं।

48. जब उन तीन रानियों में से किसी के भी कोई बालक न हुआ और राजा दशरथ को भी बुढ़ापे ने आ घेरा तो कुल के नाश हो जाने के डर से दुःखी और उदास हो उन्होंने अपने कुल-गुरु महर्षि वसिष्ठजी की आज्ञा से पुत्रेष्टि नामक यज्ञ किया।

भगति सहित मुनि आहुति दीन्हे।
प्रगटे अगिन चरू कर लीन्हे ॥

49. उस यज्ञ की आग में से अग्नि देव हाथ में चरू लिए प्रकट हुए। उन्होंने राजा दशरथ से कहा कि तुम्हारा सब काम सिद्ध हो गया। तुम यह हवि यथा योग्य हिस्से बनाकर अपनी रानियों को बांट दो।

50. राजा ने आधा हिस्सा रानी कौशल्या को दे दिया। शेष के दो हिस्से करके, एक हिस्सा रानी कैकेयी को दिया और शेष जो चौथाई बचा उसके भी दो भाग कर लिये और वे दोनों भाग कौशल्या और कैकेयी के हाथ में धरकर अर्थात् उनके हाथों से स्पर्श कराके सुमित्रा को दे दिये।

51. यथा समय बड़ी रानी कौशल्या के गर्भ से रामचंद्र प्रकट हुए। कैकेयी के गर्भ से भरत पैदा हुए और सुमित्रा

के गर्भ से दो बालक हुए, जिनमें बड़े का नाम लक्ष्मण और छोटे का नाम शत्रुघ्न रक्खा गया।

52. लक्ष्मण ने बालकपन से ही रामचन्द्र को अपना हितकारी स्वामी जानकर उनके चरणों में प्रीत लगा ली। भरत और शत्रुघ्न दोनों भाइयों ने जैसे सेवक और स्वामी की प्रीति हो, वैसी प्रीति बढ़ाई।

श्याम गौर सुंदर दोउ जोरी।
निरखहि छवि जननी तृन तोरी ॥

अन्तरी भेद

53. दशरथ यानी दश इंद्रियों का रथ यह शरीर है जिसकी बनावट ऐसी है जैसे दो घड़ों को आपस में मुँह मिलाकर गर्दन के पास जोड़ दिया हो। एक सीधा और दूसरा उल्टा है। नीचे का घड़ा या मटका सीधा है और "घट" कहलाता है जिसमें ये पांच कर्म इन्द्रियाँ हैं, जीभ (बोलने के लिए), हाथ (पकड़ने के लिए), पैर (चलने के लिए), गुदा (मल त्यागने के लिए) और इन्द्री (मूत्र त्यागने के लिए)। ऊपर का घड़ा उल्टा रक्खा हुआ है और "औघट" कहलाता है जिसमें ये पांच ज्ञान इंद्रियाँ हैं :– कान, आँख, नाक, रसना (जिससे स्वाद का ज्ञान होता है) और त्वचा जिससे स्पर्श का ज्ञान होता है। यह इंद्रियों का विभाग नीचे और ऊपर के मटकों में उनके केंद्रों के हिसाब से है, चाहे द्वार किसी इंद्री का दूसरे मटके में आ गया हो।

54. शरीर पांच ज्ञानेद्रियों और पांच कर्मेन्द्रियों के बल पर अपना कार्य करता है। शरीर को रथ की उपमा दी गई है व इन्द्रियों को पहियों की। यह दश इन्द्रियां शरीर को चलाने के लिए वाह्य[1] साधन हैं। साधन का ही दूसरा नाम इन्द्रिय (करण[2]) है। अन्तः[3] साधन को अन्तःकरण कहते हैं। जिनकी संख्या चार है मन,-चित्त, बुद्धि अहंकार।

55. ये चार रथ को चलाने वाले घोड़े हैं। जीव इस रथ पर सवार हो ऊँच-नीच योनियों में भ्रमता रहता है। मन इच्छा उठाता है। इच्छा वश ही यह जीव सदैव चक्र की तरह घूमता रहता है। कभी देव योनियों में, कभी अन्य योनियों में। जीव इस तरह सदा कोई न कोई योनि में रमता रहता है। रममाण होने से उसकी संज्ञा 'राम' हुई। जीव अपनी तरफ़ से कोई चेष्टा नहीं करता। वह तो मोह वश हो यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ, घसीटा जाता है। इसीलिए मन को ग्यारहवीं इंद्रिय की संज्ञा दी जाती है। वही शरीर में राज करता है। अतएव वास्तव में यही मन राजा हुआ। दस इंद्रियों के रथ पर सवार है। वह जहां चाहे ले जावे। इसलिए इसे मनोराम कहते हैं यानी कामना करने वाला राम। दस इंद्रियों का सुमेर होने से वह दशरथ का ज्येष्ठ पुत्र हुआ।

---

(1) बाहरी, (2) इंद्रिय, (3) अन्तरी।

56. ऊपर से यानी निर्मल चैतन्य देश से जो चैतन्य की धार आई, वह त्रिकुटी के स्थान पर माया से मिली। तब तीन धारें हो गईं यानी चैतन्य की धार सतोगुण, चैतन्य और माया की मिलौनी की धार रजोगुण ओर माया की धार तमोगुण। सतोगुण में चैतन्य प्रधान और तमोगुण में माया प्रधान है। रजोगुण में दोनों का बल बराबर है। ये तीनों निहायत सूक्ष्म धारें त्रिकुटी से अरूप प्रकट हुईं और सहसदल कँवल के स्थान से जो त्रिकुटी के नीचे हैं, यह धारें स्वरूपवान प्रकट हुईं।

57. सृष्टि को त्रिगुणात्मक कहते हैं यानी सृष्टि का प्रसार मुख्य तीन गुणों के कारण हुआ। इसलिए सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण की ये तीनों शक्तियाँ जीव की तीन जननी हुईं यानी दशरथ की तीन घट रानियाँ।

58. जीव आदि में बहुत ऊँचे से आया है, किंतु उसके आवागमन का सिलसिला ब्रह्म की जाग्रत अवस्था के स्थान सहसदल कँवल से लगा हुआ है। सहसदल कँवल जोति अथवा अग्नि रूप है। यहीं से जीव आता है और मृत्यु के उपरांत यहीं वापस जाता है। अग्नि की पूजा करना और उससे प्रसाद पाने का मतलब सहसदल कँवल से उतर कर जीव का जन्म धारण करना है।

59. इन तीन गुणों से चार धारें निकली हैं। एक सतोगुण और तमोगुण से और दो धारें रजोगुण से। सतोगुण की धार मन, तमोगुण की धार अहंकार और रजोगुण की

धारें चित्त और बुद्धि हैं। सतोगुण की विशेषता वाली धार का नाम चित्त और तमोगुण की विशेषता वाली धार का नाम बुद्धि है।

60. जन्म से पहले जीव की स्थिति सहसदल कँवल में रहती है। जन्म के समय वह छठे चक्र पर आकर बैठता है मगर जाग्रत अवस्था में अन्तःकरण के घाट से कार्रवाई करता है यानी जाग्रत अवस्था में जीव की बैठक चौथे चक्र यानी अन्तःकरन के घाट पर रहती है। अन्तःकरन की चार वृत्तियाँ, मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार ही राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और भरत हैं।

61. राम यानी रमने वाला मन है। लक्ष्मण चित्त है जो मन के अंदर छिपकर कार्रवाई करता है। शत्रुघ्न यानी शत्रु का नाश करने वाला बुद्धि है। बुद्धि का काम भले और बुरे की पहचान करना यानी निर्णय करना है। भरत यानी भव अर्थात् संसार में जो रत है वह अहंकार है।

"भव में रत भरत नाम मन को भाई।"

62. तीन गुणों से निकली हुई चार धारें मिली हुई अवस्था में पिण्ड के नाके छठे चक्र और पाँचवे कण्ठ चक्र से गुज़रती हुई चौथे हृदय चक्र या अंतःकरण के घाट पर ठेका लेती हैं। और इसी मुकाम से सारे शरीर की कार्रवाई करती हैं। साधारण बोलचाल में इन्हीं चारों धारों को "मन" कह देते हैं। जब तक यह चारों धारें अन्तर में कार्रवाई नहीं कर लेतीं, बाहर में कोई क्रिया नहीं होती।

63. पहले मन में चाह उठती है। तब चित्त उस ओर ध्यान देता है। ध्यान देते ही मनुष्य की सर्व शक्तियां उस ओर जुट जाती हैं। बुद्धि निर्णय करती है और अहंकार उसे दृढ़ करता है। इन चारों धारों की कार्रवाई में समय का कोई हिसाब नहीं है। यह किसी काम को एक क्षण में कर सकती हैं और वर्षों का भी समय लग सकता है। किसी ने गाली दी। मन में तुरंत चाह उठी कि बदला लिया जाए, चांटा मारा जाए। चित्त ने उसको फैलाया कि कहाँ किस प्रकार चांटा मारा जाए। बुद्धि ने फैसला कर दिया कि जरूर चांटा मारना चाहिए, चांटा मारना ठीक है। अहंकार ने फौरन उसको दृढ़ कर दिया और उसी क्षण चांटा मारने का काम हो गया। मन में चाह उठी कि धन कमाने के लिए दुकान खोली जाए। चित्त ने विस्तार किया कि कहाँ, किस प्रकार दुकान खोली जाए। मगर इसमें लाभ होगा या हानि, इस बात का फैसला बुद्धि न दे सके तो दुकान खोलने में वर्षों का समय लग सकता है।

64. चूँकि मन और चित्त के बिना कोई कार्रवाई नहीं हो सकती, इसलिये बुद्धि और अहंकार की अपेक्षा मन और चित्त का आधार मुख्य है। इसी कारण से दशरथ को भरत और शत्रुघ्न की अपेक्षा राम लक्ष्मण अधिक प्रिय थे। कहा जाय तो राम लक्ष्मण ही दशरथ के आधार थे।

65. ऊपर लिखा गया है कि रजोगुण से दो धारें निकलती हैं। एक में सतोगुण प्रधान होता है और दूसरी में

तमोगुण। सतोगुण की प्रधानता वाली धार यानी 'चित्त' अथवा लक्ष्मण, सतोगुण की धार 'मन' अथवा राम से मिल जाती है। इसी प्रकार तमोगुण की प्रधानता वाली धार यानी 'बुद्धि' अथवा शत्रुघ्न, तमोगुण की धार 'अहंकार' अथवा भरत से जा मिलती है। एक जोड़ा मन और चित्त का यानी राम लक्ष्मण का हो जाता है और दूसरा जोड़ा बुद्धि और अहंकार का यानी शत्रुघ्न और भरत का। जो भाग जिसका है, वह उसमें मिल जाता है।



अध्याय 5

अन्तःकरण के घाट से कण्ठ चक्र तक का सफ़र

बाहरी चरित्र

66. एक दिन राजा दशरथ सभा में बैठे हुए अपने पुत्रों के विवाह की चर्चा कर रहे थे कि विश्वामित्र मुनि आ पहुँचे। राजा ने मुनि की अगवानी की और उन्हें बड़े आदर से सभा में आसन पर बिठाया। परस्पर कुशल प्रश्न होने के पीछे राजा ने कहा, सेवक के लिए क्या आज्ञा है? राजा दशरथ ने सोचा कि मुनि धन दौलत माँगेंगे पर मुनि की माँग सुनकर राजा के प्राण सूख गए। विश्वामित्र ने कहा,

असुर समूह सतावहिं मोहीं।
मैं जाँचत आयहु नृप तोहीं ॥
अनुज समेत देह रघुनाथा।
निसिचर वध में होव सनाथा ॥

67. जिस तपोवन में हम लोग रहते और तपस्या तथा यज्ञादिक धर्म कर्म करते हैं, वहां पर आजकल कई राक्षसों ने बड़ा उपद्रव मचा रखा है। वे समय समय पर हम लोगों की यज्ञशाला को रुधिर वर्षा कर अपवित्र कर देते हैं। जिससे यज्ञ नष्ट हो जाता है। यदि हम लोग चाहें तो उन

लोगों को बात की बात में भस्म कर दें, पर ऐसा इसलिये नहीं कर सकते कि यज्ञ का अनुष्ठान कर क्रोध करना अनुचित है। इससे यज्ञ का फल नष्ट हो जाता है और तपस्या बिगड़ जाती है। इसलिए हम चाहते हैं कि आप थोड़े दिनों के लिए अपने परम पराक्रमी प्रिय पुत्र राम और लक्ष्मण को हमारे साथ कर दीजिये और इसमें किसी बात की चिंता न कीजिये। यद्यपि ये अभी सुकुमार बालक हैं तो भी हमारे यज्ञ की रक्षा करने में समर्थ होंगे।

68. मुनि की ऐसी बातें सुनकर राजा का वीर हृदय दहल उठा। उन्होंने मुनि से बहुत कुछ विनती कर कहा कि राम और लक्ष्मण के बदले हमको व हमारी सब सेना ले जाइये, पर मुनि ने एक नहीं माना। तब कुल-गुरु वसिष्ठ के बहुत समझाने-बुझाने और धीरज दिलाने पर राजा ने अपने प्राण से प्यारे दोनों कुमारों को विश्वामित्र के साथ विदा किया और वे दोनों भाई भी बड़ी प्रसन्नता से उनके साथ तपोवन में गए।

69. रास्ते में ताड़का नाम की एक राक्षसी दौड़कर सामने आई और कुछ विघ्न डाला ही चाहती थी कि चट रामचंद्र ने एक ऐसा तीर चलाया कि वह बड़े धड़ाके से धरती पर गिर पड़ी और थोड़ी देर में मर गई।

चले जात मुनि दीन्ह दिखाई।
सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ॥

एकहि बान प्रान हरि लीन्हा।
दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा ॥

70. मुनि ने दूसरे ही दिन यज्ञ आरम्भ कर दिया। राम लक्ष्मण उस यज्ञ की रखवाली करने लगे। यज्ञ का नाम सुनते ही मारीच अपने सहायकों को साथ लेकर दौड़ा आया। रामचंद्र ने एक बाण मारा जिससे वह समुद्र के पार जा गिरा। फिर अग्नि बाण से उन्होंने सुबाहु राक्षस को मारा। बाकी राक्षसों को भी दोनों भाइयों ने मार गिराया। यह सब देखकर मुनियों को बड़ा आनंद मिला और उनका यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ।

अन्तरी भेद

71. जैसा कि पहले कहा जा चुका है नीचे के तीन चक्रों गुदा, इन्द्री और नाभि में पशुवत कार्रवाई है। चौथे चक्र यानी हृदय चक्र अथवा अंतःकरन के घाट से 'नर' संज्ञा होती है। रामायण में जो अभ्यास बतलाया गया है, वह इसी स्थान से शुरू होता है। यह मन का अभ्यास है। इस अभ्यास में मन और चित्त ही चलते हैं, बुद्धि और अहंकार को छोड़ दिया जाता है, यानी भरत और शत्रुघ्न को नाना के यहाँ भेज दिया जाता है।

72. सन्तों का सुरत शब्द योग का अभ्यास इससे अलग और न्यारा है। सुरत शब्द योग सुरत द्वारा किया जाता है। मन के अभ्यास में मन अगुवा रहता है।

73. इस मार्ग की कमाई के लिए दो चीजों की जरूरत है। बाहर में सच्चा मित्र यानी देहधारी गुरु मिले और अन्तर में मालिक की दया की धार से परिचय प्राप्त हो। जब तक यह दो बातें न मिलें, परमार्थ में कदम नहीं रख सकता। दुनिया में जितने मित्र और सम्बन्धी हैं, सब अपने अपने स्वार्थ के मित्र हैं। गुरु ही सच्चे मित्र हैं जो जीव को संसार यानी विश्व से निकालकर मालिक से मिला देते हैं और इसलिये वही सारे विश्व के मित्र यानी विश्वामित्र हैं।

74. "गुरु" नाम मालिक का है। मालिक अपने धाम में बैठा हुआ जीवों को न चेता सकता है और न उद्धार कर सकता है। इस काम के लिए उसे मनुष्य चोले में आना पड़ता है। मालिक के चरनों से जो चैतन्य की धार अन्तर में आ रही है, या तो उसका नाम "गुरु" है या जिस चोले में वह धार विराजमान हो, वह गुरु है। गुरु और मालिक एक हैं। तुलसीदास ने रामायण में "गुरु" को "नर रूप हरि" कहा है।

बन्दउँ गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज, जासु बचन रवि कर निकर ॥

75. जब गुरु कृपा करते हैं और परमार्थ में चलने के लिए इसको लेने आते हैं तो यह शरीर स्वाभाविक ही मन और चित्त को देने में संकोच करता है क्योंकि मन और चित्त ही तो शरीर के आधार हैं। उनके बिना शरीर का काम नहीं चल सकता। यही राजा दशरथ का राम और

लक्ष्मण को विश्वामित्र को देने में संकोच करने का मतलब है।

76. दूसरी ज़रूरी चीज अंतर में मालिक की दया है। अभ्यास में धीरे-धीरे मन और चित्त शरीर से अलग होते जाते हैं और उसको त्याग देते हैं। इसमें उसका मरण होता है। इसलिए शरीर यानी तन, मन और चित्त को छोड़ना नहीं चाहता। परंतु जब मालिक की दया होती है तो यह तन खुशी खुशी अभ्यास की काष्टा झेलने के लिए तैयार हो जाता है। यही वशिष्ठ यानी विश्व के इष्ट का राजा दशरथ को समझाना है कि तू अपने पुत्रों राम और लक्ष्मण यानी मन और चित्त को गुरु की भेंट कर दे, तेरा कल्याण हो जावेगा।

तब वशिष्ट बहु विधि समुझावा।
नृप सन्देह नाम कहुँ पावा॥

77. जब गुरु, मन और चित्त को अपने साथ अन्तर में ले चलते हैं तब दुनिया की ओर खींचने वाली वृत्तियाँ ज़ोर करती हैं, जिनको दमन किया जाता है। सबसे पहले तृष्णा रूप ताड़का का नाश किया जाता है। मोह जो कि घातक और मारने वाला है, मारीच है। मोह का बिल्कुल नाश तो नहीं होता, मगर उसका स्थूल अंग इस घाट पर छोड़ दिया जाता है यही मारीच को दूर फेंक देना है। फिर सुबाहु यानी अच्छी बाँह वाले का अर्थात् महा बलवान क्रोध का नाश किया जाता है।

78. पाँचवाँ कण्ठ चक्र अविद्या, मोह, अंधकार आदि का स्थान है जिसको पार करने के लिए गुरु की परम आवश्यकता है। यही राम और लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ जाना है। जब अभ्यासी की इस चक्र पर गति हो गई तो गोया वह स्थूल देश के स्थूल मोह आदि से रहित हो गया। सब वृत्तियों के निरोध करने की क्रिया यज्ञ करना है जोकि सब वृत्तियों के दमन हो जाने पर सफल समझा जाता है। यही राम और लक्ष्मण का विश्वामित्र के यज्ञ को सफल करना है।

79. यहाँ चौथे हृदय चक्र से पाँचवे कण्ठ चक्र तक का सफर तय हो जाता है। आगे छठे चक्र के सफर का वर्णन किया जाता है।



अध्याय 6

कण्ठ चक्र से षटम् चक्र पर पहुँचना

बाहरी चरित्र

80. रावण अपने राज्य में सबसे कर लेता था, यहाँ तक कि जंगलों में रहने वाले ऋषि-मुनियों को भी नहीं छोड़ता था। एक बार रावण के राज्य में अकाल पड़ा। ऋषियों के पास कर देने के लिए कुछ भी नहीं था। जब रावण के दूतों ने उनको कर देने के लिए बहुत तंग किया तो लाचार होकर उन्होंने एक घड़े में अपना थोड़ा रुधिर निकालकर दूतों को दे दिया और कह दिया कि इसी से रावण का नाश होगा। दूत उस घड़े को रावण के पास ले गये और ऋषियों का शाप सुना दिया।

रावण को अपना नाश प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा। पंडितों और ज्योतिषियों से उसका उपाय पूछा। उन्होंने कहा कि इस मटके को अपने शत्रु के राज जनकपुर में किसी खेत में दबा दें। रावण ने ऐसा ही किया। संयोगवश जनकपुर में भी उसी समय अकाल पड़ा। सलाह पूछने पर पंडितों और ज्योतिषियों ने कहा कि राजा को अपने हाथ से हल चलाना चाहिए। राजा जनक ने जब हल चलाया, सीता उस मटके में से निकली जिसे वह अपने घर ले आये।

81. यज्ञ के निर्विघ्न समाप्त हो जाने पर एक दिन विश्वामित्र ने रामचन्द्र से कहा कि मिथिला के राजा जनक के यहाँ एक बड़ा उत्सव और यज्ञ हो रहा है। बुलावा आया है, इसलिये हम लोग भी यज्ञ देखने जावेंगे। तुम दोनों भाई भी हमारे साथ चलो।

82. मार्ग में एक शिला को देखकर रामचन्द्र ने मुनि से पूछा। मुनि ने उसकी सारी कथा कह सुनाई। वह गौतम की स्त्री अहिल्या है। गौतम के शाप से वह पत्थर हो गई थी, पर आज शाप का अन्त हो जाएगा। इसे अपने पैर के अंगूठे से छुओ तो सही। रामचन्द्र के चरणों का स्पर्श होते ही पत्थर में से वह (अहिल्या) प्रकट हो गई।

83. राम लक्ष्मण सहित विश्वामित्र मुनि का आना सुनकर राजा जनक ने बड़े भाव भक्ति से उनकी अगवानी की और अपने यहां टिकाया। जब विश्वामित्र मुनि से दोनों राजकुमारों का परिचय पाया तो वे बहुत ही हर्षित और पुलकित हुए।

84. दूसरे दिन प्रातःकाल पुष्प लाने का समय जान कर गुरुजी की आज्ञा लेकर, दोनों भाई फुलवाड़ी में चले। उसी समय वहाँ सीताजी आई। उन्हें माता ने देवी की पूजा के लिए भेजा था। सीताजी के कंकण, करधनी और पायजेबों की आवाज सुनकर रामचन्द्र ने उस ओर देखा तो सीता का मुख तो चंद्रमा हो गया और रामचंद्र के नेत्र चकोर। रामचन्द्र की छवि को देखने पर सीता के नेत्र मुग्ध होकर

उसी ओर लगे रह गये। वे एकटक देखती ही रह गईं।

85. राजा जनक का बुलावा आने पर विश्वामित्र मुनि राम लक्ष्मण सहित सीता का स्वयंवर देखने के लिए यज्ञ शाला चले। राज सभा में दोनों भाई राम लक्ष्मण ऐसे शोभित हो रहे थे मानो नक्षत्रों के झुंड में दो पूर्ण चंद्र हों। महाराज जनक ने प्रार्थना कर अपनी सब कथा सुनाई और अन्त में कहा कि सीता की विचित्र शक्ति देख मैंने प्रतिज्ञा की कि जो शिवजी के इस धनुष को अपने बाहुबल से तोड़ देगा उसी के साथ इस बालिका का विवाह करूंगा।

86. रामचन्द्र को देखकर सब राजा लोग जो वहाँ एकत्रित थे, मन में हार गए जैसे पूर्ण चंद्र के उदय होने पर तारे फीके हो जाते हैं। रावण इत्यादि बड़े-बड़े योद्धा धनुष को देखकर धीरे-से खिसक गए। मूर्ख राजा लोग तमक तमक कर धनुष को पकड़ते थे। जब वह नहीं उठता तो शरमा कर चल देते। किंतु जिन राजाओं के मन में कुछ विवेक या विचार था, वे धनुष के पास ही नहीं फटकते।

87. अन्त में विश्वामित्र ने बड़ी स्नेहभरी वाणी से कहा, हे राम! उठो और शिवजी के धनुष को तोड़ो। हे पुत्र! जनक के संताप को मिटाओ।

88. गुरु के बचनों को सुनकर उनके चरणों में सिर नवाकर रामचन्द्र उठे और शिव-धनुष को देखा। लक्ष्मण ने पाँव से पृथ्वी को दबा लिया, यह समझकर कि धनुष टूटते

ही पृथ्वी हिलने लगेगी। रामचन्द्र ने मन ही मन गुरु को प्रणाम किया। यहाँ गुरु वसिष्ठ को प्रणाम किया क्योंकि विश्वामित्र को तो प्रत्यक्ष प्रणाम कर चुके थे। बहुत फुर्ती से धनुष को उठाया। वह बिजली जैसा दमका और फिर लचक कर आकाश मण्डल जैसा मण्डलाकार हो गया। उसी क्षण रामचन्द्र ने उसे तोड़ दिया। उसके शब्द से सम्पूर्ण संसार भर गया। उसी समय सीता ने रामचन्द्र के गले में जयमाला डाल दी।

89. शिवजी के धनुष का टूटना सुनकर परशुराम आये। एक हाथ में धनुष था, दूसरे में फरसा था। संस्कृत में फरसे या कुल्हाड़ी को 'परशु' कहते हैं। बड़े क्रोध में भरकर पूछा कि शिव धनुष को किसने तोड़ा है? शिव धनुष को तोड़ने वाला सहस्रबाहु के समान मेरा बैरी है। यह सुनकर लक्ष्मण हँसे और अपमान करते हुए बोले, जिससे परशुराम और भी क्रोध में भर गए। इस पर फिर लक्ष्मण ने हँसकर कहा कि यहाँ कोई कुम्हड़े की बतियाँ नहीं है जो तर्जनी अँगुली देखकर मर जाय। इस प्रकार जैसे-जैसे परशुराम क्रोध करते थे, लक्ष्मण हँसी दिल्लगी में उनकी बातों को उड़ा देते थे। मगर रामचन्द्र के गूढ़ और कोमल वचन सुनकर परशुराम की बुद्धि के परदे खुले। उनको रामावतार होने की बात स्मरण हो आई। परशुराम ने कहा कि हे राम! इस धनुष को हाथ में लीजिये और इसे खींच दीजिये तो मेरा सन्देह मिट जाय। ऐसा कह जब रामचन्द्र को धनुष देने लगे तब वह आप से

आप उनके हाथ में चला गया। परशुराम ने रामचन्द्र का प्रभाव जाना और उनकी स्तुति करके चले गये।

90. राजा दशरथ के पास नेवता भेजा गया। बारात को सजा, गुरु वसिष्ठ और सब बन्धु-बान्धवों सहित वे शीघ्र ही जनकपुर पहुँचे। जनक ने सीता का विवाह रामचन्द्र के साथ कर, अपने छोटे भाई की तीनों कन्याओं को भी बाक़ी तीन राजकुमारों के साथ ब्याह किया।

91. राजा दशरथ अपने चारों पुत्रों और पुत्र वधुओं को साथ ले बड़े आनन्द से अयोध्या आये। तब से नित्य नये नये उत्सव अयोध्या में घर घर होने लगे। थोड़े दिन पीछे कैकेय के राजकुमार युधाजित अयोध्या में आकर अपने भानजे भरत और शत्रुघ्न को अपने साथ ले गये और इधर रामचन्द्र अपने पिता को राजकाल और प्रजापालन में सहायता देने लगे।

अन्तरी भेद

92. अन्तर में चैतन्य अथवा शब्द की धार जो सुन्न से आ रही है, वही सीता है। सुन्न, त्रिकुटी और सहस दल कँवल के स्थानों से होती हुई पिण्ड के नाके छठे चक्र पर यह ठेका लेती है। हर स्थान पर इसका रूप और शब्द अलग अलग है। यह उद्धार करने वाली धार है।

93. जिस मन को सीता मिलेगी यानी जो सीता धार में समावेगा, वही अयोध्या पहुँचेगा :

अध रावण कुल नाश करावन।
सीता राम अजुध्या लावन ॥
सुरत सिया मन राम कहावन।
दसवाँ द्वार अजुध्या गावन ॥

— राधास्वामी साहब

94. जोगियों का दसवाँ द्वार तीसरा तिल अर्थात् छठा चक्र हैं। वहाँ पहुँचने पर जोगी गति प्राप्त होती है। पिण्ड यानी शरीर के नौ द्वार यह हैं दो सूराख कान के, दो आँख के, दो नाक के, एक मुँह का, एक इन्द्री और एक गुदा का।

95. सन्तों ने गुदा और इन्द्री को इस गिनती से छोड़ दिया है क्योंकि उन पर कोई पृथक व स्वयं ज्ञान की शक्ति नहीं है। बाकी सात द्वारे पिण्ड के, आठवां सहस दल कँवल, नवाँ त्रिकुटी और दसवाँ सुन्न। इस तरह सन्तों का दसवाँ द्वार सुन्न है। वहीं अयोध्या अथवा राम लोक है। वहाँ पहुँचने वाले को जोगेश्वर कहते हैं। सन्तों के मत में उसे 'पूरा साध' कहते हैं। उससे ऊपर जिसकी गति हो, वह 'सन्त' है।

96. जब अभ्यासी अन्तर में चलता है, स्थान स्थान पर वहाँ का शब्द, सीता, छोड़ता चला जाता है। छठे चक्र पर जो शब्द सुनाई देता है, वह असल में सहस दल कँवल के शब्द की छटा है।

97. छठा चक्र पिण्ड की चोटी अथवा नाका है। इसका धनी जम अर्थात् धर्मराय है और रूप उसका चन्द्रमा है। इसी चन्द्रमा से यहाँ की ज्योतिष विद्या निकली है। यहाँ के

धनी को जनक भी कहते हैं। जनक का मतलब 'ज' और 'अंक' यानी जम का अंग है।

98. इसके नीचे पाँचवाँ कण्ठ चक्र है जो सूर्य का स्थान है। इसी स्थान से कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष की गणना होती है। कण्ठ चक्र से नीचे प्रकाश घटते घटते अंतःकरण के घाट पर अमावस्या, और प्रकाश बढ़ते बढ़ते छठे चक्र पर पूर्णमासी हो जाती है मगर असली पूर्णमासी का चन्द्रमा ब्रह्माण्ड की चोटी पर यानी सुन्न अथवा दसवें द्वार में है। वहाँ पहुँचने पर राम से रामचन्द्र होता है। यहाँ छठे चक्र पर जो चन्द्रमा है उसे पिण्ड के हिसाब से चाहे पूर्णमासी का चन्द्रमा कह दें वरना असलियत में वह दूज का ही चाँद है। छठे चक्र के चन्द्रमा को तुलसीदास ने रामायण में 'बाल बिधु' कहा है।

99. पाँचवाँ कण्ठ चक्र फतह हो जाने पर गुरु इसको छठे चक्र पर ले जाते हैं जहाँ के धनी जनक में आपा और दुई न होने के कारण उसे विदेह कहते हैं। छठे चक्र पर पहुँचने पर अभ्यासी में भी आपा और दुई नहीं रहती। यही विश्वामित्र का राम और लक्ष्मण को जनक के यहाँ ले जाने का मतलब है।

100. छठे चक्र से दो धारें जरा टेढ़ी होकर दोनों आँखों में आई हैं और एक रीढ़ में उतरी है। अभ्यास में दोनों आँखों की धारों को छठे चक्र या तीसरे तिल पर मिलाया जाता है यानी एक किया जाता है, जिससे धनुष का सा आकार हो जाता है। इस धनुष को तोड़ने पर यानी

दोनों आँखों की धारों को तीसरे तिल पर लाने से छठा चक्र फ़तह हो जाता है। चूँकि छठे चक्र के ऊपर शिव का स्थान है और छठा चक्र फ़तह हो जाने पर अभ्यासी वहाँ जाने के क़ाबिल हो जाता है, इसको शिवजी का धनुष कहते हैं।

101. यही क्रॉस (Cross) अथवा सूली है कि जिस पर चढ़कर अभ्यासी सच्चे तौर पर ज़िन्दा हो जाता है जिसे Resurrection (मर कर जीना) कहते हैं। इस स्थान से बिजली की धार निक़लती है जिसे 'बुराक़' कहते हैं। मोहम्मद साहब का शक्कुल-क़मर[1] और बुराक़ की सवारी पर मेराज अर्थात् चढ़ाई हासिल करना और हजरत ईसा का सूली पर चढ़ना, इसी स्थान से ताल्लुक रखते हैं।

102. पाँचवाँ कण्ठ चक्र फतह हो जाने पर अभ्यासी को बड़ी शक्ति हासिल हो जाती है और वह गुरु की आज्ञा के आधीन उस शक्ति को अभ्यास की महिमा दिखलाने के लिए, कभी कभी ज़ाहिर भी कर देता है। दूसरे यह कि ऊपर के घाट की शक्ति नीचे की रचना की कर्त्ता है और वह नीचे की रचना में उलट फेर कर देने के लिए भी समर्थ है। यही रामचन्द्र का पत्थर को अपने चरण से स्पर्श करके अहिल्या में बदल देना है यानी पाषाण हृदय जीव को भक्तिवन्त बना देना है।

103. छठे चक्र का धनुष तोड़ने से पहले ही अभ्यासी को अपने इष्ट की झाँकी मिलने लगती है और वह एक

---

(1) चाँद को फाड़ कर दो टुकड़े करना।

दूसरे पर मोहित हो जाते हैं। यही फुलवाड़ी में सीता और राम का मिलना और एक दूसरे पर मोहित हो जाना है।

तात जनक तनया यह सोई।
धनुष जग्य जेहि कारन होई ॥
पूजन गौरि सखी लेइ आई।
करत प्रकाश फिरइ फुलवाई ॥

104. छठे चक्र का धनुष मन के सिवा कोई नहीं तोड़ सकता है क्योंकि मन ही ब्रह्म की अंस है और वह ब्रह्माण्ड से आया है। और वही ब्रह्माण्ड में जा सकता है। तोड़ना क्या है, उस स्थान को बेधकर उसके उस पार जाना है। पिण्ड अथवा माया देश की इंद्रियाँ वगैरा यहीं उत्पन्न होती हैं और यहीं रह जाती हैं। ब्रह्माण्ड में नहीं जा सकतीं। जो वस्तु जहाँ से उत्पन्न होती है उसके परे वह नहीं जा सकती। इसलिये सब इंद्रियाँ मिलकर भी अगर छठे चक्र का धनुष तोड़ना चाहे तो नहीं तोड़ सकतीं। यही स्वयंवर के राजा लोग हैं जो सब मिलकर भी धनुष को नहीं तोड़ सके। इन्द्रियाँ दस हैं।

भूप सहस दस एकहि बारा।
लगे उठावन टरई न टारा ॥

105. रावण त्रिकुटी का धनी है। उसके लिये इस धनुष के तोड़ने का सवाल ही नहीं उठता। उसको इस धनुष के तोड़ने की जरूरत ही नहीं है। वह अपने मातहत रचना को कैसे बिगाड़ सकता है?

106. जब अभ्यासी छठे चक्र का धनुष तोड़ता है तो चित्त की एक सूक्ष्म धार से इस शरीर यानी देह को सँभाले रहता है वरना छठे चक्र पर पहुँचने से देह पात हो जाय क्योंकि छठा चक्र मृत्यु का स्थान है। धनुष तोड़ते समय लक्ष्मण का पैरों से पृथ्वी को दबाये रखने का यही मतलब है। प्राणों की एक सूक्ष्म डोरी नीचे तक बराबर लगी रहती है, उसी के बल अभ्यासी फिर नीचे उतर आता है।

107. मृत्यु और अभ्यास दोनों में फ़र्क़ सिर्फ इतना है कि मृत्यु में वह बेहोश होकर जाता है और अभ्यास में बा-होश। मृत्यु द्वारा तो मन अनेक बार इस स्थान से पार हुआ है मगर अभ्यास में जो नई वस्तु इसके साथ जाती है, वह चित्त अथवा लक्ष्मण है जिसका रूप होशियारी है।

108. जिस समय यह छठे चक्र का धनुष तोड़ता है, वहाँ के शब्द की धार इसे गले लगा लेती है अर्थात् उसी समय से शब्द इसके गले का हार हो जाता है। यही सीता का रामचन्द्र के गले में जयमाल डालना है।

गावहिं छबि अवलोकि सहेली।
सिय जयमाल राम उर मेली ॥

109. शिवजी संहारक हैं। उनका ताण्डव नृत्य प्रलय काल का प्रसिद्ध है। उनका तीसरा नेत्र तमोगुण का द्वार है जो क्रोध का प्रचंड रूप है। इस धनुष के टूटते ही क्रोध की धार जो कि परशुराम है, गरजती हुई आती है और धनुष तोड़ने वाले की पूछताछ करती है।

तेहि अवसर सुन सिव धनु भंगा।
आये भृगु कुल कमल पतंगा ॥
अति रिस बोले बचन कठोरा।
कहु जड़ जनक धनुष केहि तोरा ॥
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू।
उलटउँ महि जहँ लगि तव राजू ॥

110. यह संहार या क्रोध की धार शिव के स्थान से आती है जो कि पिण्ड देश की संहार शक्ति है और जिसका कि यह धनुष कहलाता है। परशुराम यानी संहार और क्रोध की धार बार बार इसको भय दिखलाती है, परंतु जब कि अभ्यासी पहले ही शरीर छोड़ कर आप ही आप इसके घर चला आया तो अब भय किसका रहा? मन तो फिर भी अपनी पुरानी जान-पहचान के कारण चुप रहता है मगर चित्त जो इस बार अभ्यास में साथ गया है, वह इसके साथ अठखेलियाँ करता है। यही लक्ष्मण का परशुराम के साथ हँसी मजाक करना है।

सुनि मुनि बचन लषन मुसुकाने।
बोले परशु धरहि अपमाने ॥
विहंसि लषन बोले मृदुबानी।
अहो मुनीस महा भट मानी ॥
पुनि पुनि मोहिं देखाव कुठारू।
चहत उड़ावन फूँकि पहारू ॥

111. इसी हँसी मजाक में इस धार की शक्ति कम हो जाती है और जब उसे यह निश्चय हो जाता है कि यह मन

जरूर ऊपर जावेगा तो वह धार हट जाती है और अभ्यासी मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है। यही अन्त में परशुराम का ठण्डा पड़ जाना है।

भृगुपति सुनि सुनि निर्भय बानी।
रिसि तन जरहि होय बल हानी ॥
बहइ न हाथु दहइ रिस दाती।
भा कुठार कुंठित नृप घाती ॥

(परशुराम मुनि का शरीर इन निडर बचनों को सुनकर मारे क्रोध के जला जाता था और बल घटता जाता था। हाथ चलता नहीं, क्रोध से छाती जलती है, यह राजाओं का घातक कुल्हाड़ा आज कुण्ठित (कुन्द) हो गया।)

112. छठे चक्र से मिला हुआ ब्रह्माण्ड में जाने का एक छिद्र है। वहाँ भी एक छोटा-सा धनुष है जिसको तोड़ना तो नहीं पड़ता पर चढ़ाना जरूर होता है। यही परशुराम का छोटा धनुष है जिसको रामचन्द्र के द्वारा चढ़ाये जाने के पश्चात् परशुराम लौट गये।

देखि राम बलु निज धनु दीन्हा।
करि बहु बिनय गवन बन कीन्हा ॥

113. ऊपर से जो चैतन्य धार आ रही है, वह घूमती हुई यानी नृत्य करती हुई आती है और घूमता हुआ व नृत्य करता हुआ ही अभ्यासी भी उस धार के साथ ऊपर चढ़ता है यानी अभ्यासी को अपने इष्ट की परिक्रमा करते हुए चलना पड़ता है। यही राम और सीता के फेरे हैं।

कुअँरु कुअँरि कल भाँवरि देहीं।
नयन लाभु सब सादर लेहीं ॥
जाय न बरनि मनोहर जोरी।
जो उपमा कछु कहउँ सो थोरी ॥

114. मन के बाक़ी तीन अंग चित्त बुद्धि और अहंकार यानी लक्ष्मण शत्रुघ्न और भरत का विवाह भी सीता की बहनों अर्थात् उसके अन्य अंगों के साथ हो जाता है। ऊपर कहा जा चुका है कि शरीर से सम्बन्ध कायम रखने के लिये अभ्यासी एक सूक्ष्म डोरी अथवा धार छोड़ जाता है जिसके ज़रिये से वह जब चाहे तब छठे चक्र में उतरकर चौथे चक्र यानी हृदय चक्र या अन्तःकरण के घाट पर बैठकर इस देह और दुनिया का काम कर सकता है और जब चाहे ऊपर छठे चक्र पर पहुँच कर वहाँ का आनन्द ले सकता है।

115. छठे चक्र के शब्द के खुल जाने से तन और इंद्रियाँ हर्ष से फूली नहीं समातीं। ऐसा अभ्यासी सबको प्यारा लगता है और हर कोई अपने आपको उस पर न्यौछावर करने के लिए तैयार करता है। यही राजा दशरथ और अयोध्या के लोगों का खुशी मनाना है।

आये ब्याहि राम घर जब तें।
बसे आनन्द अवध सब तब तें ॥

116. कुछ समय तक अभ्यासी छठे चक्र के आनन्द को लेकर आगे चढ़ाई की तैयारी करता है।



अध्याय 7

अण्ड को पार करना

बाहरी चरित्र

117. राजा दशरथ ने प्रजा का रामचन्द्र पर अनुराग और रामचन्द्र में प्रजा पालन की शक्ति देख उनको राजतिलक कर देने पर विचारा। यह समाचार राज्य में फैल गया जिससे सारी प्रजा आनन्दित हो गई और उस मंगलमय दिन की बाट बड़ी उत्कण्ठा से देखने लगी।

118. जिस दिन रामचन्द्र को राज्याभिषेक होने वाला था, उसके एक दिन पहले कैकेयी की दासी मंथरा ने उसे इस अभिषेक का संदेश दिया जिसे सुनकर मारे आनन्द के उसने उस दासी को अपना एक आभूषण उतार कर दे दिया, पर उसने उसे उठाकर फेंक दिया और झुँझला कर कहा कि तुम अपनी भलाई बुराई कुछ नहीं समझतीं। भला जब सौत का लड़का राजगद्दी पर बैठेगा तब तुम्हारा लड़का उसका जन्म भर सेवक ही बना रहेगा। इस प्रकार से उसने बहुत-सी बातें सुनाकर रानी का मन फेर दिया। रानी पूछने लगी कि अब मुझे क्या करना चाहिये। मंथरा पुरानी बात की याद दिलाकर बोली कि राजा ने तुम्हें दो वर देने का वचन दिया था। इस समय एक तो यह माँगो कि राम को राज न हो,

भरत को हो और दूसरा यह कि राम चौदह वर्ष वन में रहें। कैकेयी इस उपदेश को मान गई। वह गुस्से में जा बैठी। जब राजा दशरथ आये तब बहुत कुछ मनाने पर उसने वही दोनों वर माँगे। यह सुनते ही राजा व्याकुल हो मूर्छित हो गये। मूर्छा दूर होने पर, विह्वल हो, विलाप करके रानी को समझाने लगे, पर उसने राजा के विलाप पर कुछ भी ध्यान न दिया, तब विवश हो उन्होंने राम को बुला भेजा और सब हाल कह सुनाया।

119. निदान रामचन्द्र माता कौशल्या तथा और लोगों से विदा होने गये। सबसे पहले लक्ष्मण से भेंट हुई जिनका मारे क्रोध से शरीर काँप उठा। रामचन्द्र ने अनेक प्रकार से उन्हें समझा कर शांत तो किया पर वे भी उनके साथ बन जाने को तैयार हो गये। धीरे धीरे यह समाचार सीता और कौशल्या तक पहुँचा। चारों ओर शोक का समुद्र उमड़ आया। अन्त में रामचन्द्र अयोध्या वासियों को रोते बिलबिलाते छोड़ लक्ष्मण और सीता को साथ ले बन को चले।

नगर उजार कीन्ह कैकेयी

120. पुत्रों के विरह से बहुत कातर हो दशरथ ने अपना शरीर छोड़ दिया। पिता के मरने का समाचार पाते ही भरत अपने मामा के यहाँ से अयोध्या आये और कैकेयी तथा मंथरा को अनेक कटु बचनों से धिक्कारा और रामचन्द्र को लौटाने के लिए प्रजावर्ग के साथ उनकी खोज में चले।

121. पहले दिन रामचन्द्र ने तमसा नदी के किनारे

निवास किया। अर्द्ध रात्रि के समय जब सब लोग सो ही रहे थे, रामचन्द्र ने वहाँ से रथ आगे बढ़ा दिया। दिन निकलने पर जब लोगों ने वहाँ पर उनको नहीं देखा तो सब हाय हाय करने लगे और सन्ताप में भरे हुए अयोध्या आये।

122. इस तरह पुरुजनों से पीछा छुड़ा रामचन्द्र शृंगवेरपुर होते हुए निषाद-पति गुह से मैत्री कर गंगा पार हुए। वहाँ से भारद्वाज मुनि का दर्शन करते, प्रयाग होते, रास्ते में और अनेक मुनियों को दर्शन देते और उनके दर्शन करते चित्रकूट पहुँचे और कुटी बनाकर वहीं रहने लगे।

123. इधर बन में रामचन्द्र को खोजते हुए भरत भी वहां पहुंचे और लौटा लाने के लिए बहुत कुछ कहा, परंतु रामचन्द्र ने उन्हें समझा बुझा कर विदा किया। भरत रामचन्द्र की खड़ाऊँ अयोध्या ले गए और राज्य सिंहासन पर रख, राम भजन करते हुए प्रजा पालन करने लगे।

124. एक बार इन्द्र के पुत्र शठ जयन्त ने कौए का वेषधर कर रामचन्द्र का बल देखना चाहा। वह सीता के चरणों में चोंच मारकर भागा। उसमें से खून बह चला, तब रामचन्द्र ने एक सींक का बाण अनुसंधान किया। जिस तरह सुदर्शन चक्र दुर्वासा ऋषि के पीछे फिरा उसी तरह वह सींक का वाण उस कौए के पीछे दौड़ा। किसी ने उसको शरण न दी, न रक्षा की तब दुःखी और भयभीत जयन्त ने रामचन्द्र के चरण पकड़ लिये और रक्षा के लिए प्रार्थना की। रामचन्द्र ने उसे काना करके छोड़ दिया।

125. रामचन्द्र ने ऐसा अनुमान किया कि मुझे सभी जान गये हैं, इससे यहाँ पर भीड़ भाड़ होगी। इसलिये वे चित्रकूट से चल दिये।

126. रामचन्द्र जहाँ जहाँ जाते थे, वहाँ आकाश में मेघ उन पर छाया करते थे, रास्ते में विराध नाम का दैत्य मिला। उसे आते ही रामचन्द्र ने पछाड़ दिया।

तुरतहि रुचिर रूप तेहि पावा।
देखि दुखी निज धाम पठावा ॥

127. इसके पीछे रामचन्द्र अगस्त्य मुनि से मिलने चले। रामचन्द्र का आना सुनते ही अगस्त्यजी उठकर दौड़े। रामचन्द्र का दर्शन कर उनके नेत्रों में जल आ गया। दोनों भाई अगस्त्य मुनि के चरणों में गिरे। मुनि ने बड़ी प्रीति के साथ उठाकर छाती से लगा लिया। फिर अगस्त्य मुनि की आज्ञा पाकर रामचन्द्र पंचवटी पहुँचे।

अन्तरी भेद

128. मन का स्थान त्रिकुटी है। त्रिकुटी पर पहुँचकर मन राजा बन जाता है अर्थात् घट घट में राज्य करने के योग्य हो जाता है। इसलिए छठा चक्र फ़तह कर लेने पर इसे युवराज अर्थात् आगे होने वाले राजा की पदवी दी जाती है। यही रामचन्द्र को युवराज बनाया जाना है।

129. छठे चक्र को फ़तह कर लेने के बाद ब्रह्माण्ड में

चढ़ाई शुरू होती है। यहाँ से सीता धार के साथ चलना होता है। यही राम और लक्ष्मण का सीता के साथ चलना है। छठे चक्र के ऊपर शिव यानी तमोगुण का स्थान है। यही कैकेयी है जो काल की ताकत है।

130. छठे चक्र पर पहुँचकर अभ्यासी का मन चंचलता छोड़ कर थिर हो जाता है। यही मन को थिर करने वाली शक्ति मंथरा है जो शिव के स्थान से आती है और उसकी दासी है।

131. देह और दुनिया में बर्तते बर्तते जब मन दुखी हो जाता है और उसकी थिरता जाती रहती है, तब उसे देह और दुनिया को छोड़ कर बनवास लेकर अभ्यास करने की चाह उठती है। उस वक्त मन को थिर करने वाली शक्ति वही मंथरा, शिव अर्थात् कैकेयी को उत्तेजित करके अभ्यासी को आगे चलाने का प्रबंध करती है।

132. दुनियादारों को यह देह और दुनिया बाग़ बग़ीचे के समान नजर आती है और इससे अलग होने को बनवास कहा जाता है परन्तु यथार्थ में बाग़ और बग़ीचे अन्तर में हैं और यह देश बन है। अभ्यासी इस देश को बन समझकर इसमें रहता है। यही इसका बनवास है।

133. दसों इंद्रियों और मन की चारों धारों को यानी इन चौदह को जीतकर जब तक त्रिकुटी पर नहीं पहुँचेगा तब तक बनवास की अवस्था रहेगी। इन्हीं चौदह धारों के चौदह भवन हैं और यही चौदह वर्ष का बनवास है। न कम,

न ज्यादा।

गुनष्टान चौधा कहे, जैन मते में जान।
तुरक तबक़ चौधा कहे, बाम्हन भवन बखान ॥
चौधा भवन बाम्हन कहें, तीनों मत इक सार।
आदि पार कोई ना कहे, लखा न रचने हार ॥

(घट रामायण)

134. छठे चक्र से ऊपर जब चढ़ाई होती है, तब शरीर यानी दशरथ की मृत्यु हो जाती है।

राम[1] राम[2] कहि राम[3] कहि राम[4] राम[5] कहि राम[6]।
तनु परिहरि रघुबर विरह राउ गयउ सुरधाम ॥

135. इस दोहे का आन्तरिक भेद, पिण्ड के छः चक्रों को बींध कर, छठे चक्र के पार पहुँचना है।

136. शरीर कायम रहने के लिए यह ज़रूरी है कि छठे चक्र पर बैठक रहे। छठे चक्र से हटा कि मृत्यु हुई। वैसे तो तमाम शरीर में रूह यानी सुरत अथवा जीव आत्मा फैली हुई है, मगर जिस जगह इस शरीर की रचना और कार्रवाई की प्रथम शक्ति पैदा हुई है और वहाँ से हटने में बेहोशी और मौत हो जाती है, वहीं सुरत की बैठक है। वह जगह दोनों आँखों के मध्य में है। उसको तीसरा तिल और नुक्ते सुवैदा कहते हैं। वह छठा चक्र है। वहाँ से एक लम्हे भी सुरत यानी जान हटी कि उसी वक्त मौत हुई।

137. छठे चक्र से ब्रह्माण्ड में चढ़ाई के लिए पहला

स्थान शिव का पड़ता है जो तमोगुण रूप है। यह तमसा नदी पार करके रामचन्द्र का निषाद से मिलना है, निषाद अर्थात् जो ग्रहण करने के योग्य नहीं है।

तमसा तीर निवासु किय प्रथम दिवस रघुनाथ

138. इस स्थान पर धनी शिव, नीचे की रचना का संहार करने वाला है और इस स्थान से जो शब्द अर्थात् नाद आता है, उसी के सहारे नीचे की सब रचना ठहरी हुई है। यही शिव का वाहन नादिया बैल है।

139. चैतन्य की धार जो सहसदल कँवल से आती है, गंगा कहलाती है। वह अपना केंद्र इस स्थान पर बनाती है। इसलिये यहाँ पर शिवजी की जटा में गंगा दिखलाई जाती है।

140. इस स्थान के आगे गंगा और जमना के संगम का स्थान प्रयाग है। गंगा जमना से मतलब यहाँ दाएँ बाएँ भाग तथा इड़ा पिंगला से है।

राम कीन्ह विश्राम निसि प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहित सिय लषन जन मुदित मुनिय सिर नाइ॥

141. यहाँ होता हुआ अभ्यासी रजोगुण अर्थात् ब्रह्मा के स्थान पर पहुँच जाता है। यह चित्रकूट अर्थात् रचना करने का स्थान है।

चित्रकूट रघुनन्दन छाये

142. यहीं से नीचे की कुल रचना की उत्पत्ति हुई है।

इस जगह पर पहुँच कर अभ्यासी का सब संसारी मोह टूट जाता है। भाई बन्धु कुटुम्ब परिवार नातेदार मित्र, किसी का मोह नहीं रहता। यही भरत और शत्रुघ्न और अयोध्या के लोगों का चित्रकूट तक राम के पीछे-पीछे दौड़ना और राम द्वारा उनको वापस कर देना है।

जथा जोगु करि विनय प्रनामा।
विदा किये सब सानुज रामा ॥

143. इस स्थान पर पहुँचने पर अभ्यासी में इतनी शक्ति आ जाती है कि उसका केवल भास ही देह और दुनिया की कार्रवाई करने के लिए काफी है। यह रामचन्द्र का अपनी खड़ाऊँ भरत को देना और उन्हें लेकर भरत का अयोध्या वापस जाना है।

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही।
सादर भरत सीस धरि लीन्ही ॥

144. चौदह वर्ष का बनवास जीव का पिण्ड से ब्रह्माण्ड तक की चढ़ाई का हाल है। पिण्ड की अयोध्या, जीव का पिण्ड में बैठक का स्थान है और ब्रह्माण्ड की अयोध्या दसवाँ द्वार है।

वही रावन को मार राम ने।
सीता सुमत सुधार ॥
आय अजुध्या तन के भीतर।
राज लिया दस द्वार ॥

पहले विपता बहुतक भोगी।
जब लग चढ़े न त्रिकुटी पार ॥

– राधास्वामी साहब

145. इस स्थान पर धनी ब्रह्मा सृष्टि रचने वाला, कामदेव रूप है। काम अंग सबमें प्रबल है। काम अंग की अन्त में सदा जै होती है। इसलिए इसको जयंत कहा गया है। जब यह अभ्यासी पर धावा करता है तो अभ्यासी इसके स्थूल अंग को नष्ट कर देता है यानी स्थूल देह से काम भोग की इच्छाएँ अभ्यासी इस स्थान पर छोड़ देता है। यही रामचन्द्र का जयंत को काना कर देने का मतलब है। "एक नयन करि तजा भवानी"। जयंत का पिता इंद्र है जिसने अहल्या का सतीत्व भंग किया था। वह और भी प्रबल काम का रूप है।

146. इस स्थान से ऊपर चलने के लिए एक दरजे का मान अंग छोड़ना पड़ता है। यह रामचन्द्र का विराध राक्षस को मारना है। विराध के मानी आराधना के विरुद्ध मान अंग का होना है।

मिला असुर विराध मग जाता।
आवत ही रघुबीर निपाता ॥

147. सतोगुण अर्थात् विष्णु के स्थान पर पहुँचना अगस्त्य ऋषि के आश्रम पर जाना है। चूंकि इस स्थान पर पापों का भार बहुत कुछ हल्का हो जाता है, इसलिये इसको

"अध+अस्त" अर्थात् अगस्त्य यानी पापों का नाश करने वाला कहा गया है।

148. इस जगह पहुँचने पर यहाँ का धनी अभ्यासी को पंचवटी में जाने की आज्ञा देता है।

है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ।
पावन पंचवटी तेहि नाऊँ ॥
बास करहु तहँ रघुकुल राया।
कीजिय सकल मुनिन्ह पर दाया ॥

— — — —

चले राम मुनि आयसु पाई।
तुरतहिं पंचवटी नियराई ॥



अध्याय 8

सहस दल कँवल की चढ़ाई

बाहरी चरित्र

149. अगस्त्य मुनि की आज्ञा पाकर रामचन्द्र चले और पंचवटी के पास पहुंचे। गोदावरी नदी के निकट पत्तों की कुटी छाकर रहने लगे।

150. रावण की एक बहन थी जिसका नाम शूर्पणखा था (सूप के से जिसके नख हों)। एक बार वह दोनों राज पुत्रों को देखकर आशिक हो गई। उसने राम से कहा कि मैं तुम्हारे साथ ब्याह करने आई हूँ। राम ने कहा कि मेरे पास तो स्त्री है, मैं विवाह नहीं कर सकता। तब उसने लक्ष्मण से कहा कि तुम्हीं मेरे साथ ब्याह कर लो। परन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि मैं तो सेवक हूं, मेरे यहाँ स्त्री का कैसे गुज़ारा हो सकता है। उनसे कोरा उत्तर पाकर दाँत कटकटा कर दौड़ी। स्त्री को मारना उचित न जान लक्ष्मण ने उसके नाक और कान काट लिये।

151. वह विलपती हुई खर और दूषण के पास गई और उनको सब समाचार सुना दिये। उन्होंने राक्षसों की फौज तैयार की और गरजते हुए आगे बढ़े और बहुत तरह के अस्त्र-शस्त्र बरसाने लगे। रामचन्द्र के तेज़ तीरों को

देखकर राक्षस मुंह फेरकर भाग चले। यह दशा देखकर तीनों भाई खर, दूषन और त्रिशरा क्रोध में भर आये। वे अच्छी तरह लड़ने भी न पाए थे कि रामचन्द्र द्वारा मारे गये।

मारे पछारे उर विदारे बिपुल भट कहरत परे।
अवलोकि निज दल बिकट भट तिसरादि खर दूषण फिरे॥

अन्तरी भेद

152. पंचवटी पाँच रास्तों अथवा पाँच धारों का स्थान है। यही सहस दल कँवल है। चूँकि पाँच तत्त्वों की पाँच धारें यहीं से निकली हैं, इसलिए इसको पंचवटी कहते हैं।

153. यहाँ से एक हजार धारें भी निकली हैं जो तीन लोक का काम दे रही हैं। इसे शेषनाग भी कहते हैं। इसी स्थान के सहारे नीचे की सब रचना ठहरी हुई है। इसीलिये इस पृथ्वी को शेष नाग के फण पर ठहरा हुआ कहा जाता है।

154. यह सच्चिदानन्द अर्थात् सत्+चित्+आनन्द का स्थान है। इसलिये इसको तीन सिर वाला त्रिशरा कहा गया है।

155. इस स्थान के सूर्य रूपी ब्रह्म के साथ माया मिली हुई है और यह दोनों मिलकर नीचे की सब रचना का प्रबंध करते हैं।

156. यह माया सर्वथा पोली है और इसका रूप वास्तव में बहुत भद्दा है। इसलिये इसको सूपनखा अर्थात् छाज

जैसी नाखूनों वाली कहा गया है। दिखावा करना इसका स्वभाव है।

सूपनखा रावण कै बहिनी।
दुष्ट हृदय दारुन जसि अहनी॥

157. तीनों गुणों के स्थानों को पार करके अभ्यासी इस स्थान की हद गोदावरी पर पहुँचता है।

गोदावरी निकट प्रभु रहे परन गृह छाई

158. यहाँ माया अपने मोहनी रूप को दिखा कर अपने में लिप्त करने की चेष्टा करती है।

रुचिर रूप धनि प्रभु पहिं जाई।
बोली बचन मधुर मुसुकाई॥
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी।
यह संयोग विधि रचा बिचारी॥
मम अनुरूप पुरुष जग माहीं।
देखिऊँ खोजि लोक तिहुँ नाहीं।
ता तें अब लगि रहउँ कुमारी।
मन माना कुछ तुम्हहिं निहारी॥

159. परन्तु चैतन्य धार (सीता) के साथ रहने से अभ्यासी पर माया का कोई दाँव नहीं चलता। अभ्यासी इसको कुरूप बनाकर इसका असली रूप ज़ाहिर कर देता है। यही सूपनखा के नाक और कान काटकर उसे भद्दा बना देना है।

नाक कान बिन भइ बिकरारा।
जनु स्रव सैल गेरु कै धारा ॥

160. यह नाक कान काटने की कार्रवाई चित्त अथवा लक्ष्मण द्वारा होती है क्योंकि मन तो जुगानजुग से माया के आधीन चला आ रहा है और अपने पुराने सम्बन्ध के कारण कुछ नहीं करता, परन्तु चित्त (यानी लक्ष्मण) को यह माया के चोचले पसंद नहीं आते। वह इसको भद्दा करके इसका असली रूप जाहिर कर देता है।

लछिमन अति लाघव सों नाक कान बिनु कीन्हि

161. माया द्वारा अभ्यासी को हानि पहुँचने का डर रहता है, इसलिये माया को मृत्यु दण्ड देना यानी उसका नाश करना उचित है। परन्तु उसका वध करने की चन्दाँ जरूरत नहीं है। उसके असली रूप को ज़ाहिर कर देने से ही वह अभ्यासी का रास्ता छोड़ देती है और अभ्यासी की चेरी बनकर उसकी आज्ञा में चलती रहती है। इसीलिए यहाँ पर पुरुष का स्त्री को वध करना या उस पर हाथ उठाना व्यावहारिक नीति के विरुद्ध कहा गया है।

162. इस स्थान से दो धारें अज्ञानता और विष की निकलती हैं जो खर और दूषण हैं। यही दोनों धारें नीचे की रचना में कर्मों का भुगतान कराती हैं।

163. जब माया लज्जित और खिसियानी हो जाती है तो अज्ञानता और विष की धारों को उसकी यह दशा

बर्दाश्त नहीं होती और वे अभ्यासी पर एक दम टूट पड़ते हैं। यही खर और दूषण का राम पर हमला करना है। अभ्यासी अपने इष्ट के भरोसे इन पर और इनकी सेना यानी तत्त्व, गुण, दूत, प्रकृति आदि पर विजय प्राप्त कर लेता है।

खर दूषन तिसिरा कर घाता

164. सहसदल कँवल के स्थान में अभ्यासी कुछ समय तक बड़े आनन्द से रहता है और उसे पंच हजारी का पद मिलता है।

पंचवटी बसि श्री रघुनायक।
करत चरित सुर मुनि सुख दायक॥



अध्याय 9

त्रिकुटी की चढ़ाई

बाहरी चरित्र

165. खर दूषण का धुआँ देखकर दुःख और क्रोध से विकल हो सूपर्णखा अपने भाई रावण को बुला लाई। वह मारीच को अपने साथ लिवा लाया। उस समय वह आप तो छिपा रहा, पर मारीच को सोने के रंग का बड़ा सुंदर मृग बनाकर सीता के सन्मुख किलोल करने को जाने को विवश किया। उसे देख सीता ने रामचन्द्र से उसे पकड़ लाने का बड़ा हठ किया। इस पर रामचन्द्र धनुष बाण लिये मृग के पीछे पीछे जब बहुत दूर चले गये तब उस मारीच ने कातर हो रामचन्द्र के से कण्ठ स्वर से लक्ष्मण को पुकारा जिसे सुनते ही सीता ने घबराकर लक्ष्मण से कहा कि तुम अभी जाओ। देखो, तुम्हारे भाई पर कोई बड़ा कष्ट पड़ा है। यह सुन लक्ष्मण ने उन्हें बहुत समझाया पर वह उनसे जाने के लिए बार-बार कहने लगीं। विवश हो लक्ष्मण उसी ओर चले जिधर से वह शब्द सुनाई दिया था। ज्योंही लक्ष्मण कुटी से बाहर हुए कि रावण भिखारी का भेष बना सीता के सामने आया और बलपूर्वक उन्हें उठा ले गया। विलाप करती हुई सीता अपने गहनों को चिह्न के लिए मार्ग में बराबर फेंकती चली गई। इस प्रकार रावण सीता को ले गया और अशोक

बन में जाकर रख दिया।

गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी।
कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी ॥
एहि विधि सीतहि सो लेइ गयऊ।
बन अशोक महुँ राखत भयऊ ॥

166. लक्ष्मण सहित रामचन्द्र जहाँ गोदावरी नदी के तीर पर उनका आश्रम था, वहाँ गये। आश्रम को सीता के बिना खाली देखकर वे विकल हो गये और विलाप करने लगे। फिर वे बेल, वृक्ष और पत्तियों से पूछते हुए चले। हे पक्षियों! हे मृगों! हे भौरों! क्या तुमने सीता को देखा है? खंजन, तोता, कबूतर, मृग, मीन, भौंरों के समूह, चतुर कोयल, कुन्द की कली, अनार के दाने, बिजली, कमल, शरद ऋतु के चन्द्रमा, नागिन, वरुण का पाश, कामदेव का धनुष, हँस, हाथी और सिंह, ये सब उस समय अपनी प्रशंसा सुनने लगे। नारियल, केला, सुवर्ण सब प्रसन्न होते थे।

167. दोनों भाई सीता को ढूँढ़ते हुए बहुत से जंगलों को देखते हुए चले। रामचन्द्र ने रास्ते में आते हुए कबन्ध राक्षस को मार डाला।

168. आगे चलकर उन्होंने शबरी के आश्रम में पदार्पण किया। रामचन्द्र को घर आये देखकर उसने अपने जी में मतंग ऋषि के सुहावने बचनों को कि तुझे राम दर्शन होगा, समझ लिया अर्थात् स्मरण कर लिया। राम ने उसे नवधा भक्ति का उपदेश दिया और कहा कि यदि सीता की खबर

कुछ जानती हो तो बताओ।

169. शबरी ने अर्ज़ किया, आप पंपा सरोवर पर जाइये, वहाँ सुग्रीव से आपकी मित्रता हो जायगी। सुग्रीव आपको सब कुछ कह देगा। आप तो सब जानते हैं। फिर भी पूछते हैं। फिर शबरी ने सब कथा (मतंग ऋषि से सुनी हुई, भविष्य कथा, रावण का वध, अयोध्या लौटकर राज्य तिलक पर्यन्त) सुनाई। रामचन्द्र उस (मतंग) बन से आगे चले।

170. रामचन्द्र पंपा सरोवर से आगे चलकर ऋष्यमूक पर्वत के पास पहुँचे जहाँ सुग्रीव रहता था। उसने दोनों भाइयों को बालि का चर मान, भयभीत हो, हनुमान को उनका भेद लेने भेजा। हनुमान राम लक्ष्मण को सुग्रीव के पास लिवा ले गये और बीच में अग्नि को रख दोनों ने शपथपूर्वक मित्रता की। फिर राम ने बालि को मार सुग्रीव को राजा बनाने और सुग्रीव को सीता की खोज लगाने की प्रतिज्ञा की।

171. प्रतिज्ञा के अनुसार रामचन्द्र ने बालि को मार सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा और बालि के पुत्र अंगद को युवराज बनाया।

172. तब रामचन्द्र ने प्रवर्षण पर्वत पर डेरा किया। वहाँ (प्रवर्षण पर्वत पर) रामचन्द्र कुछ दिन आकर निवास करेंगे, यह सोचकर देवताओं ने पर्वत में सुंदर गुफा पहले ही से बना रक्खी थी। जब से रामचन्द्र ने वहाँ निवास किया तब से वह पर्वत और बन मंगल रूप हो गया। वहाँ एक

बहुत ही सफेद और सुंदर पत्थर की शिला थी। उस पर दोनों भाई बैठकर सुखपूर्वक बातें किया करते थे।

173. वर्षा ऋतु बीत जाने पर शरद ऋतु आ गई, पर सीता की खबर नहीं पाई। रामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा कि देखो, सुग्रीव भी राज्य पाकर सब बातें भूल गया। जाओ उसको भय दिखलाकर बुला लाओ। उधर हनुमान ने भी कह सुनकर सुग्रीव को राज़ी किया। तब अंगद आदि वानरों को लेकर रामचन्द्र के पास आये। आज्ञा पाकर सब वानर चारों ओर चल दिये। फिर सुग्रीव ने नल नील अंगद हनुमान आदि को दक्षिण की ओर भेजा।

174. रामचन्द्र ने यह जानकर कि हनुमान से काम होगा उनको अपने पास बुलाया, उनके सिर पर हाथ रखा, अपने हाथ की अँगूठी दी और सीता के रूप का वर्णन करके परिचय दिया।

175. वे सब वानर सीता को बनों, नदियों, सरोवरों, पहाड़ों, खोहों आदि में खोजने लगे। दक्षिण समुद्र तट पर सँपाती गिद्ध से उन्हें सीता का पता मिला। हनुमान समुद्र पार करके लंका में जाने के लिए तैयार हो गये।

176. देवताओं ने हनुमान को जाते देखा। तब उनके बल और बुद्धि का महत्त्व जानने के लिए सर्पों की माता सुरसा को भेजा। उसने हनुमान को ग्रसने के लिए अपना मुंह एक जोजन लम्बा फैला दिया, तब हनुमान ने अपना शरीर इससे दूना कर लिया। सुरसा ने अपना मुंह सोलह

जोजन का किया तो हनुमान तुरन्त ही बत्तीस जोजन के हो गए। अंत में सुरसा ने अपना मुंह सौ जोजन का कर लिया। तब हनुमान ने बहुत छोटा रूप कर लिया और उसी छोटे रूप से उसके मुंह में घुसकर फिर बाहर निकल गये।

177. **हनुमान आगे चले। समुद्र के भीतर एक राक्षसी रहती थी। जो जीव-जन्तु आकाश में उड़ते उनकी छाया पानी में देखकर छाया को पकड़ लेती थी, जिससे वे आगे उड़ न सकते थे और वह उन्हें खा जाती थी। उस राक्षसी ने यही छल हनुमान से भी किया। हनुमान उसे मार कर समुद्र के पार गये। मच्छर के समान छोटा रूप धरकर लंका में चले। उसी समय लंकिनी नाम की राक्षसी दरवाजे पर थी। हनुमान ने उसको एक घूँसा मारा और वह खून की कै करती लड़खड़ाती हुई धरती पर गिर पड़ी। हनुमान ने बहुत ही छोटा रूप धरकर नगर में प्रवेश किया। फिर रावण के महल में प्रवेश किया। रानी मंदोदरी को देखकर सोचा कि यही कहीं सीता न हो। पर दूसरे क्षण उन्होंने सोचा कि सीता कभी इतनी निश्चिन्त होकर नहीं सो सकती है। यह कोई और स्त्री होगी।**

178. **फिर एक सुंदर घर दिखाई पड़ा जिसमें एक मन्दिर जुदा बना हुआ था। वे मन में सोचने लगे कि लंका तो राक्षसों का निवास स्थान है। भला यहाँ सज्जन का निवास कहाँ? इतने में विभीषण जागे। उन्होंने जब राम**

राम स्मरण किया, तब हनुमान बड़े प्रसन्न हुए। जिस तरह सीता वहाँ रहती थी, वह सब कथा विभीषण ने कही।

179. फिर हनुमान वही पहले का सा छोटा रूप करके अशोक वाटिका में गये और सीता को देखकर मन ही मन प्रणाम किया। वृक्षों के पत्तों में छिप गए। इतने में ही वहाँ रावण आया। उसने सीता को बहुत तरह समझाया। बहुत मीठी बातें की। पर सीता ने एक न सुनी। उत्तर में सीता ने उसे चोर दुष्ट निर्लज्ज आदि कहा जिसे सुनकर रावण को बड़ा क्रोध आया और सीता को मारना चाहा। तब मन्दोदरी ने नीति की बातें कहकर उसको समझाया।

180. फिर रावण ने सब राक्षसियों को कहा कि तुम जाकर सीता को तरह तरह से दुःख दो। उनमें एक त्रिजटा नाम की राक्षसी थी। उसने सब राक्षसियों को बुलाकर अपना स्वप्न सुनाया और कहा कि तुम सीता की सेवा कर अपना हित कर लो।

181. अकेली पाकर हनुमान ने पेड़ से रामचन्द्र की अंगूठी सीता की गोद में डाल दी। उसे देखते ही सीता पहचान गई। उस समय हनुमान बहुत ही छोटा रूप धरकर उतर आये और हाथ जोड़कर कहा कि मैं रामचन्द्र का दूत हूं और सब कथा कह सुनाई। चलते समय हनुमान ने कुछ चिह्न मांगा जिसको देखकर रामचन्द्र को विश्वास हो जाय। सीता ने मस्तक का चूड़ामणि उतार कर कर दे दिया।

मातु मोहिं दीजे कछु चीन्हा।
जैसे रघुनायक मोहिं दीन्हा ॥
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ।
हरष समेत पवनसुत लयऊ ॥

182. हनुमान बगीचे के भीतर घुस गए। फल खाये, फिर पेड़ों को तोड़ने लगे। बहुत से राक्षसों को मार डाला। बहुत से भाग गये और रावण से पुकार की। रावण ने अपने पुत्र अक्षयकुमार को भेजा। हनुमान ने उसे मार डाला। रावण बड़ा क्रोधित हुआ। मेघनाद को भेजा। मेघनाद ने हनुमान को पकड़ने के लिए ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। यह देखकर हनुमान ने मन में विचार किया कि जो मैं बह्मास्त्र को न मानूंगा तो इस अस्त्र की अपार महिमा मिट जाएगी। जब मेघनाद ने देखा कि बन्दर मूर्छित हो गया है, तब उनको नागपाश से बांध कर ले गया।

183. रावण और अन्य राक्षसों ने हनुमान से सैकड़ों बातें पूछीं। हनुमान ने निडर होकर सबके उत्तर दिये और रावण को बहुत समझाया कि सीता को लौटा दे और राम से मैत्री कर ले, मगर वह बहुत नाराज़ हुआ और हनुमान को मार डालने को कहा। सब राक्षस दौड़ पड़े। विभीषण ने उस समय कहा कि दूत को मारना नीति विरुद्ध है। तब रावण ने कहा तेल में कपड़ा डुबोकर इसकी पूँछ में बाँध दो और उसमें आग लगा दो। हनुमान ने उलट पलट कर सारी लंका जला दी और फिर समुद्र में कूद पड़े।

184. हनुमान ने रामचन्द्र को सीता का सन्देश सुनाया तथा सीता ने जो चिह्न स्वरूप चूड़ामणि दिया था, उसे दे, शीघ्र चढ़ाई करने की प्रार्थना की। तब रामचन्द्र ने अपने मित्र सुग्रीव और वानरों और रीछों को साथ ले यात्रा की। समुद्र के तट पर आकर डेरा डाला।

185. जब से हनुमान लंका जलाकर गये तब से राक्षस गण संशय युक्त रहने लगे कि न जाने क्या होने वाला है। मन्दोदरी ने रावण को बहुत समझाया, मगर उस पर कुछ असर नहीं हुआ। विभीषण ने भी बहुत समझाया, मगर रावण क्रोधित हो उठा और उसे एक लात मारी। तब उसने कहा कि अब मैं रामचन्द्र की शरण में जाता हूँ।

रामु सत्य संकल्प प्रभु, सभा काल बस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब, जाउँ देहु जनि खोरि ॥

186. रामचन्द्र ने बड़े प्रेम और आदर से विभीषण को अपना लिया और अभय दान दे लंका का राजा बनाया।

187. यह पूछने पर कि सेना कैसे समुद्र पार होगी, विभीषण ने कहा कि यदि रामचन्द्र समुद्र की स्तुति करें तो पार जाने देगा। यह सुनते ही उन्होंने पहले समुद्र को मस्तक नवा कर प्रणाम किया, फिर कुश बिछा कर उसके किनारे बैठ गये। तीन दिन बीत जाने पर भी समुद्र ने उनकी विनय को नहीं माना। तब राम बोले।

भय बिनु होय न प्रीति

188. और धनुष चढ़ाया। तब समुद्र ब्राह्मण का वेष धर सामने आया और क्षमा माँगी। समुद्र ने कहा कि नल और नील दोनों भाइयों ने लड़कपन में ऋषि का आशीर्वाद पाया था। उनके स्पर्श किये हुए भारी पहाड़ भी समुद्र में तैर जाएंगे। मैं भी अपनी शक्ति के अनुसार सहायता करूँगा। इस तरह समुद्र में पुल बँधवा दीजिये।

189. सेना सहित रामचन्द्र समुद्र के पार जा उतरे। समुद्र पर पुल बनने की सूचना पाकर रावण बड़ा व्याकुल हुआ। मन्दोदरी ने भी सुना कि रामचन्द्र खेल ही खेल में समुद्र पर सेतु बनाकर लंका में आ गये। तब वह अत्यन्त नम्र वाणी से बोली कि हे नाथ! रामचन्द्र के चरण कँवलों में मस्तक नवा कर उनको सीता सौंप दीजिये और वन में जाकर भजन कीजिये। मगर रावण ने जवाब दिया कि तू व्यर्थ ही डर रही है, जगत में मेरे बराबर योद्धा कौन है।

190. रावण के पुत्र प्रहस्त ने भी अनेक नीति युक्त वचनों से रावण को समझाया मगर बजाय हित की बात मानने के वह और भी क्रोधित हुआ।

191. राम की सेना जहाँ उतरी थी, उसके पास ही सुबेल नाम का एक पर्वत था। वानरों ने पहले दिन उसी पहाड़ पर रात काटी। सुबेल पर्वत से लंका के सब स्थान अच्छी तरह देख पड़ते थे। वहाँ से देखभाल कर राम ने युद्ध का सारा ढंग अपने सेनापतियों को समझा दिया।

192. युद्ध आरम्भ होने के पहले रामचन्द्र ने अंगद को

दूत बनाकर भेजा। अंगद ने सभा में पहुँच, रावण को सम्बोधित किया कि मैं रामचन्द्र का दूत हूं। मेरा नाम अंगद है। मेरे पिता का नाम बालि है। बालि की बात तो तुमको अब भी याद होगी। रामचन्द्र ने मुझे यह कहने के लिए भेजा है कि तुम या तो सीता को अभी लौटा दो या किले से बाहर निकलकर मैदान में कमर बाँध कर लड़ो। बालि का नाम सुनकर रावण पहले सकुचा गया क्योंकि बालि ने एक बार रावण को इस तरह नीचा दिखाया था कि जब वह सबको मारकर त्रिलोक जीतकर बड़े घमण्ड में घूमा करता था, एक दिन उसने देखा कि समुद्र के किनारे बालि आँखें बन्द कर संध्या कर रहा है। उसने समझा कि आँख मूँद कर बैठा है। मुझे देख न सकेगा। झट उसके पीछे जाकर लिपट गया। उसने भरसक ज़ोर लगाया पर बालि को अपनी जगह से हिला तक नहीं सका। तब बालि ने संध्या करके रावण को पकड़कर अपनी बगल में दबा लिया। बालि पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण चारों ओर समुद्र के किनारे बैठकर चार बार संध्या करता था। अभी उसने एक ही बार संध्या कर पाई थी, इसलिए रावण को बगल में दाबे ही दाबे उसने बाकी तीनों संध्याएँ कीं। इधर बगल के दबाव से रावण की बुरी हालत थी।

193. अंगद ने जब कहा कि बालि की बात तो अभी न भूले होंगे तो रावण को गुस्सा चढ़ आया। जब रावण ने रामचन्द्र की निन्दा की, तब अंगद ज़ोर से कटकटाया और

तमक कर अपने दोनों भुजदण्ड ज़मीन पर ऐसे ज़ोर से मारे कि पृथ्वी डगमगाने लगी। रावण गिरते गिरते सम्हला पर उसके अत्यन्त सुंदर मुकुट पृथ्वी पर गिर पड़े। उनमें से कुछ मुकुट तो लेकर रावण ने अपने मस्तकों पर रख लिये और कुछ अंगद ने रामचन्द्र के पास फेंक दिये। इस पर भी जब रावण ने अंट शंट बोलना बन्द न किया तो अंगद ने बीच सभा में अपना पाँव टेक दिया और कहा कि अगर तू मेरा पाँव हटा दे तो रामचन्द्र लौट जायेंगे और मैं सीता को हार जाऊँगा। रावण के सब योद्धाओं ने ज़ोर लगाया मगर किसी से पाँव न हटा। तब रावण स्वयं उठा। उस पर अंगद ने कहा कि मेरा पाँव पकड़ने से तेरा उद्धार नहीं होगा। रामचन्द्र के पाँव क्यों नहीं पकड़ता? यह सुनते ही रावण शरमा कर लौट पड़ा।

194. इसके पीछे दोनों दलों में भयंकर युद्ध छिड़ गया। सुग्रीव जाम्बवान और विभीषण ने वानरी दल की चार टोलियाँ बनाईं और उनमें यथायोग्य सेनापति चुन लिये। लंका को चारों ओर से घेर लिया। भारी कोलाहल मच गया।

195. हनुमान ने मेघनाद का रथ तोड़ दिया, सारथि को मार डाला और उसकी छाती में लात मारी। अंगद और हनुमान दोनों किले के भीतर घुस गये। शत्रु के दल का खूब मर्दन किया। पहले दिन राक्षसों की आधी सेना का संहार हो गया।

196. दूसरे दिन मेघनाद बाणों के समूह छोड़ने लगा। उस समय कोई सन्मुख नहीं हो सकता था। भय से व्याकुल होकर बन्दर और रीछ इधर-उधर भाग चले। मेघनाद रामचन्द्र के पास गया और अनेक तरह के खोटे बचन कहे। अनेक अस्त्र शस्त्र चलाये, पर रामचन्द्र ने वे सब खिलवाड़ ही में काटकर निवारण कर दिये। इस पर वह खिसिया गया और अनेक तरह की माया रचने लगा।

197. फिर लक्ष्मण ने धनुष बाण लेकर अनेक प्रकार के प्रहार किये जिनसे मेघनाद प्राणावशेष हो गया। उसने अपने मन में अनुमान किया कि अब मैं संकट में हूँ। यह सोचकर उसने वीर घातिनी शक्ति छोड़ी जो लक्ष्मण की छाती में जा लगी और वह मूर्च्छित हो गये।

198. रामचन्द्र ने बड़ा दुःख माना। जाम्बवान ने कहा कि लंका में एक सुषेण वैद्य रहता है, उसको लेने के लिए किसी को भेजना चाहिये। तब हनुमान छोटा रूप धरकर लंका में गये और बात की बात में वैद्य को घर समेत उठा लाये। उसने पर्वत तथा औषधि का नाम बतलाया, जिसे हनुमान लेने चले। वहाँ जाकर पर्वत देखा तो सही, पर औषधि नहीं पहचान पाये, तब हनुमान ने उस पर्वत को उखाड़ लिया। पर्वत को लिये रात ही रात आकाश मार्ग से दोड़े और अयोध्यापुरी के ऊपर पहुंचे। भरत ने कोई विशाल राक्षस अनुमान करके एक बाण मार दिया जिससे मूर्च्छित होकर राम राम कहते हुए हनुमान गिर पड़े। राम नाम

सुनकर भरत दौड़े और हनुमान के पास आये। हनुमान ने संक्षेप में सब समाचार सुनाया।

199. वहां लंका में रामचन्द्र, लक्ष्मण को देखकर मनुष्य के भावों का अनुसरण करते हुए विलाप करने लगे। इतने में हनुमान आ गये। सुषेण वैद्य ने तुरंत ही उपाय किया और लक्ष्मण प्रसन्न हो उठ बैठे।

200. रावण ने यह समाचार सुनकर बड़ा खेद माना। कुम्भकर्ण के पास आया और अनेक प्रकार के यत्न कर उसको जगाया। वह मदमाता लंका के किले को छोड़, साथ में सेना ले, रणभूमि को चला।

201. हनुमान ने एक घूँसा मारा। उसी समय वह व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिरा। फिर उसने उठकर हनुमान को ऐसा मारा कि वह तुरंत चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिर पड़े। फिर उसने नल और नील को पछाड़ दिया। वानरी सेना व्याकुल होकर भाग चली। कुम्भकर्ण, सुग्रीव समेत अंगद आदि बन्दरों को मूर्च्छित कर और वानरों के राजा सुग्रीव को अपनी बगल में दबाकर लंका को चल पड़ा। सुग्रीव को रास्ते में चेत हुआ। कुम्भकर्ण ने तो उसको मृतक समझा था। वह चट बगल से खसक पड़ा और अपने दाँतों से कुम्भकर्ण के कान और नाक काट कर, गर्जता हुआ, आकाश को चला।

202. मेरे नाक कान काटे गये, इस बात को जी में समझ कर कुम्भकर्ण मन में ग्लानि करता हुआ क्रोध में भर

कर रास्ते ही से लौट पड़ा। कुम्भकर्ण रण में ऐसा लड़ा गोया वह सारे जगत को खा जावेगा। तब रामचन्द्र शत्रु दल का मर्दन करने चले। उन्होंने पहले धनुष का टंकार शब्द किया। उसको सुनते ही शत्रु दल बहरा हो गया। फिर वह आगे बढ़े। कुम्भकर्ण की भुजाएँ काट डालीं। फिर एक तीक्ष्ण बाण लिया और उससे उसका मस्तक काट धड़ से अलग कर दिया। उसके धड़ के भी दो टुकड़े कर दिये। कुम्भकर्ण का तेज रामचन्द्र में समा गया।

203. दूसरे दिन फिर मेघनाद रणभूमि में आया और आकाश में युद्ध करने लगा। सभी वानरों को व्याकुल कर दिया। फिर वह रामचन्द्र से लड़ने लगा। वह जिन बाणों को छोड़ता था, वे नाग बनकर जा लगते थे। युद्ध की शोभा के लिये रामचन्द्र ने आप ही अपने को बँधा लिया। मेघनाद ने जाम्बवान पर एक त्रिशूल चलाया। जाम्बवान उसी त्रिशूल को पकड़ कर झपटा और मेघनाद की छाती में मार दिया। वह चक्कर खाकर धरती पर गिर पड़ा। जाम्बवान ने उसके पाँव पकड़ घुमाकर धरती पर पछाड़ दिया और फिर लंका में फेंक दिया।

204. वहाँ गरुड़ आ गये और उन माया रचित साँपों के झुँड को खा गये। उसी समय सबकी माया दूर हो गई और वानर प्रसन्न हो गये।

205. इधर जब मेघनाद को चेत आया वह बड़ा शर्मिन्दा हुआ और अजय यज्ञ करने के लिए गुफा में गया। विभीषण

ने इस बात की खबर रामचन्द्र को दी। लक्ष्मण उसका यज्ञ विध्वंस करने चले। उनके साथ अंगद, नल, नील और हनुमान थे। लक्ष्मण ने एक बाण छोड़ा जो मेघनाद की छाती में लगा और वह मर गया।

206. अब रावण को छोड़ लंका में और कोई बड़ा वीर न था। अन्त में बचे बचाये राक्षसों को लेकर वही मैदान में आया। इस बार राक्षस जितने प्रकार से लड़ना जानते थे, उनमें से एक भी बाक़ी न छोड़ा। रावण के साथ छोटे बड़े जितने वीर थे, सभी आये थे। थोड़ी देर में सभी मारे गये।

207. पर राम ने स्वयं बड़ा भयंकर युद्ध किया। वानर तो रावण के सामने खड़े ही न हो सके। जितनी उसकी लड़ाई हुई, राम लक्ष्मण से ही हुई। लक्ष्मण ने रावण के धनुष को काटकर सारथि को भी मार गिराया। घोड़ों को तो विभीषण ने पहले ही चूर कर दिया था।

208. रावण ने एक शक्ति छोड़ी जो ठीक लक्ष्मण की छाती में लगी इससे वह व्याकुल होकर गिर पड़े। रावण दौड़कर उठाने लगा पर उठा न सका। इतने में हनुमान कठोर वचन बोलते हुए दौड़े। रावण ने उनकी छाती में बड़े ज़ोर से एक घूँसा मारा। वह घुटने टेककर सम्हल गये। धरती पर गिरे नहीं। उन्हें बड़ा क्रोध हुआ। रावण को एक घूँसा मारा। इससे वह तुरंत ही धरती पर ऐसे गिरा जैसे कोई पहाड़ गिरा हो। जब मूर्छा मिटकर रावण को चेत हुआ, तब वह हनुमान के बल की बड़ाई करने लगा।

हनुमान लक्ष्मण को उठा लाये। यह देखकर रावण ने आश्चर्य किया। राम ने शक्ति को पकड़कर निकाल दिया और लक्ष्मण उठ बैठे।

209. लक्ष्मण फिर धनुष बाण लेकर झपटे और बड़ी फुरती से रावण के रथ को तोड़कर सारथि को मार उसको व्याकुल कर दिया। रावण घबराकर धरती पर गिर पड़ा। उस समय दूसरा सारथि उसे रथ पर डालकर तुरंत लंका में ले गया।

210. लंका में जब उसकी मूर्छा टूटी और चेत आया तब वह कुछ यज्ञ करने लगा। विभीषण ने सब खबर पा ली और तुरंत रामचन्द्र को सुना दी। रामचन्द्र ने अंगद हनुमान आदि वीरों को भेजा। उन्होंने यज्ञ का सत्यानाश कर दिया।

211. रावण फिर लड़ने आया। रावण ने अपने जी में सोचा कि राक्षसों का तो संहार हो गया। अब मैं अकेला रह गया और बन्दर रीछ बहुत हैं। इसलिये अब मैं अपार माया रचूँ। उधर इन्द्र ने तुरंत ही रामचन्द्र के लिए अपना रथ भेज दिया। रामचन्द्र ने अग्नि बाण छोड़ा जिससे क्षण मात्र में रावण के बाण जल गये। तब रावण ने खिसिया कर तीक्ष्ण शक्ति मारी। उसको रामचन्द्र ने बाण के साथ रावण ही की ओर लौटा दिया। रावण ने मातलि सारथि को सौ बाण मारे। वह रामचन्द्र की जय पुकारता हुआ गिर पड़ा। रामचन्द्र ने उसे उठा लिया।

212. रामचन्द्र ने तीस तीक्ष्ण बाण छोड़े उनसे रावण

की भुजाएँ और मस्तक कट कर पृथ्वी पर जा गिरे। कटते ही वे फिर नये हो गये। तब रामचन्द्र ने फिर भुजा और मस्तक काटे। कटते ही वे फिर नए हो आये। यों रामचन्द्र ने बहुत बार उसकी भुजाएँ और मस्तक काटे।

213. फिर रावण ने क्रोधित होकर विभीषण पर एक प्रचंड शक्ति छोड़ी। रामचन्द्र ने तुरन्त विभीषण को अपने पीछे कर लिया और आप आगे होकर शक्ति के प्रहार को सह लिया। वह शक्ति रामचन्द्र को जा लगी और उन्हें कुछ मूर्छा हो आई। उस अवसर पर विभीषण ने क्रोधित हो रावण की छाती में गदा मारी जिससे वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। फिर सँभल कर क्रोध में भरकर दौड़ा। दोनों मल्ल युद्ध में जुट गये। विभीषण को थका हुआ देखकर हनुमान पर्वत हाथ में लिये हुए दौड़े। उन्होंने रावण का रथ तोड़ डाला, घोड़ों और सारथि को मार गिराया और रावण की छाती में लात मारी। लात लगने से रावण काँप गया। रावण ने हनुमान को ललकार मारी तो वे अपनी पूँछ फैला कर आकाश में उड़ गये। रावण ने उनकी पूँछ पकड़ ली। हनुमान रावण समेत उड़ गये। दोनों योद्धा आकाश में लड़ने लगे।

214. रावण ने वानरों का दल प्रबल हुआ देखकर पाखण्ड प्रकट किया। एक क्षण को अन्तर्ध्यान हो गया। फिर अनेक रूपों में प्रकट हुआ। रामचन्द्र की सेना में जहाँ जितने रीछ और बन्दर थे वहाँ उतने ही रावण उन्हें दीखने

लगे। रामचन्द्र ने बन्दरों को बेहाल देखकर एक ही बाण से रावणों को मार डाला। जब एक रावण रह गया तब उसे देखकर देवता प्रसन्न हुए। उन्होंने रामचन्द्र पर खूब फूल बरसाये। देवताओं को रामचन्द्र की प्रशंसा करते देख रावण सोचने लगा कि इनकी समझ से मैं एक ही हो गया हूँ। फिर क्रोध कर वह आकाश मार्ग में दौड़ा। अंगद ने रावण का पाँव पकड़कर उसको धरती पर गिरा दिया और खूब लातें मारीं।

215. रावण सँभलकर उठा और दस धनुष ले घोर बाण वर्षा करने लगा। रामचन्द्र ने रावण के मस्तक और धनुष बाण समेत भुजाएँ काट डालीं। परन्तु वे फिर ज्यों की त्यों निकल आईं। हनुमान आदि बन्दरों को मूर्च्छित देखकर जाम्बवान ने दौड़कर रावण की छाती में एक प्रचण्ड लात मारी और वह व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। सारथि रावण को रथ में डालकर लंका में ले गया और उसको चेत में लाने का जतन करने लगा।

216. चेत आने पर रावण फिर चढ़ आया और एक पलक में राक्षसी माया फैला दी जिससे प्रचण्ड जीव प्रकट हुए। बन्दर और रीछ व्याकुल हो गये। लक्ष्मण और सुग्रीव समेत सब वीर अचेत हो गये। रामचन्द्र ने एक ही बाण से पलक भर में वह माया हटा दी।

217. बहुत बार मस्तकों और भुजाओं के काट डालने पर भी रावण मरता नहीं। विभीषण ने कहा कि इसके नाभि

कुंड में अमृत है, उसी के बल से यह जी रहा है और उसके कटे मस्तक आदि नए हो जाते हैं। रामचन्द्र ने इकत्तीस बाण छोड़े। एक बाण ने तो रावण का नाभिकुंड सुखा दिया, दूसरे बीसों भुजाओं और दसों मस्तकों में तेजी से जा लगे। वे बाण जब रावण के मस्तकों और भुजाओं को लेकर चले तब बिना भुजाओं और मस्तकों का उसका रुण्ड पृथ्वी पर नाचने लगा। तब रामचन्द्र ने बाण मार कर उस धड़ के दो टुकड़े कर दिये। रावण का तेज रामचन्द्र के मुख में प्रविष्ट हो गया।

218. रावण की भुजा और मस्तक मन्दोदरी के सम्मुख जा पड़े। मन्दोदरी व्याकुल होकर धरती पर गिर पड़ी। अन्य स्त्रियाँ और मन्दोदरी छाती कूट कूट कर रोने लगीं। विभीषण ने घर की सब स्त्रियों को रोदन करते देखा तो मन में बड़ा दुःख हुआ। रामचन्द्र की आज्ञा से लक्ष्मण ने विभीषण को समझाया। विभीषण ने रावण की अन्त्येष्टि क्रिया की।

219. फिर रामचन्द्र की आज्ञा से लक्ष्मण, सुग्रीव, अंगद, नल, नील, जाम्बवान, हनुमान आदि वानर लंका में गये और विभीषण को राजतिलक किया और आदरपूर्वक सीता को रामचन्द्र के पास लाये।

220. उस समय अन्तर साक्षी रामचन्द्र ने पहले अग्नि में रक्खी हुई सीता को प्रकट करना चाहा, इसलिये सीता को उन्होंने कुछ कटु वचन कहे जिनको सुनकर सीता बोली, हे लक्ष्मण! तुम धर्म के साथी बनो, जल्दी अग्नि प्रकट कर दो।

अग्नि में प्रवेश करते ही सीता का प्रतिबिम्ब और लौकिक कलंक उस प्रचण्ड अग्नि में जल गया। आकाश में देवता, सिद्ध, मुनि खड़े हुए देख रहे थे, पर किसी ने रामचन्द्र के चरित्र को नहीं जाना। फिर स्वयं अग्नि देव सीता को गोद में लेकर बाहर निकल आये। सोने सी सीता ऐसी निकली जैसे लाल-लाल आकाश में सबेरे के समय सूर्य निकल आया हो। अग्नि ने सीता को रामचन्द्र को समर्पण किया।

सीता प्रथम अनल महुँ राखी।
प्रकट कीन्ह चह अन्तर साखी ॥

221. रामचन्द्र ने सबकी ओर देखकर सब पर दया की और कोमल वचनों से बोले कि तुम लोगों के बल से मैंने रावण को मारा और विभीषण को राज तिलक दिया, अब तुम लोग अपने अपने घर जाओ। यह सुनकर बन्दर प्रेम में व्याकुल हो गये। उनको आनन्द और दुःख दोनों थे।

222. फिर जामवन्त, सुग्रीव, नल, नील, अंगद, हनुमान, विभीषण आदि की अत्यन्त प्रीति देखकर उन्हें भी पुष्पक विमान पर चढ़ा लिया।

223. रामचन्द्र को आते हुए जानकर अयोध्यापुरी सम्पूर्ण शोभाओं की खान बनी। भरत प्रसन्न होकर गुरु, कुटुम्बी जन, शत्रुघ्न समेत रामचन्द्र के सम्मुख चले। उनके मन में बड़ा ही प्रेम था। सब नगर निवासी प्रसन्न हुए। वियोग से उत्पन्न हुई सब विपत्तियों का नाश हो गया।

224. सूर्य के समान तेजस्वी दिव्य सिंहासन पर बैठा कर गुरु वशिष्ठ ने रामचन्द्र को राजतिलक किया।

225. सब बन्दर ब्रह्मानन्द में मगन हो गये। प्रभु चरनों में उनका परम प्रेम था। उनको वहाँ निवास करते छः महीने बीत गये। रामचन्द्र ने एक बार सब मित्रों को बुलाया और कहा कि हे सखाओं! अब तुम लोग अपने अपने घर जाओ। वे हाथ जोड़कर टकटकी लगाये हुए सम्मुख देखते रहे और मारे प्रेम के कुछ कह नहीं सके। उनका अत्यन्त प्रेम देखकर रामचन्द्र ने उनको अनेक प्रकार से विशेष ज्ञानोपदेश किया। वे सब हृदय में रामचन्द्र का रूप धारण कर, उनके चरणों में मस्तक नवा चल दिये।

अन्तरी भेद

226. सहसदल कँवल के ऊपर त्रिकुटी का स्थान है। यही लंका है। यहाँ से सत रज तम की सूक्ष्म रूप में उत्पत्ति हुई है। इसका धनी ब्रह्म है। उसी को रावण कहा है।

227. त्रिकुटी के मुक़ाम से माया प्रकट हुई और यह गुबार रूप यानी परमाणु स्वरूप थी जो चैतन्य पर दसवें द्वार के नीचे बतौर मलाई के दूध पर चढ़ी हुई थी। जब निरंजन और आद्या (जोत) की धारें इस मुक़ाम पर आईं, तब वह तह अलेहदा की गई और यह गुबार यानी परमाणु स्वरूप होकर फैली और इन तीनों की मिलौनी से निहायत सूक्ष्म धारें तीन गुन सत रज तम की त्रिकुटी से प्रकट हुईं।

228. सत्तलोक सत साहब साईं।
सत मिले सत नाम कहाईं ॥
चौथा पद सन्तन सोई भाखा।
सो सतनाम कीन्ह अभिलाखा ॥
सत्तनाम से निरगुन आया।
ता को वेद ब्रह्म बतलाया ॥
ता की अब मैं कहों लखाई।
त्रिकुटी रावन ब्रह्म कहाई ॥
माया कुमति ब्रह्म इक ठौरा।
भया राम मन चहुँ दिस दौरा ॥

— घट रामायण

229. इसके अतिरिक्त रावण का अर्थ राव+अन्य यानी दूसरा राजा है। शाहंशाह तो सत्त पुरुष हैं और यह उनके मातहत नीचे की रचना का राजा है। इसी को ओम् या ओंकार पुरुष कहते हैं। त्रिकुटी ब्रह्म का स्थान है। इसी स्थान से चारों वेदों की उत्पत्ति हुई है। जीव पर जो कर्म चढ़े हुए हैं, उनके भुगताने का प्रबन्ध इसी स्थान से हुआ है। जड़ और चैतन्य की पहली गाँठ इसी स्थान पर लगी है। जड़ता अर्थात् अज्ञानता इसी स्थान से आरम्भ हुई है। इसी अज्ञानता का चिह्न यहाँ पर रावण के दस सिरों के ऊपर गधे का सिर लगाया जाना है।

230. इस स्थान पर दो धुनें हो रही हैं। एक बादल की गरज और दूसरी मृदंग बाजे की आवाज़। यह मेघनाद और

कुम्भकर्ण हैं। मेघनाद बादल की गरज और कुम्भकर्ण कुम्भ अर्थात् मटके या मृदंग की आवाज है।

231. इस स्थान का रूप सबेरे के उदय होते हुए लाल रंग के सूर्य के समान है। यही कारण है कि इसको सोने की लंका कहा गया है। यह ब्रह्म का हिरण्यगर्भ रूप है। हिरण्य मानी सोना।

232. यहाँ का धनी दसों दिशाओं में सर्वत्र व्यापक है। इसलिये इसको दशानन (दश+आनन) अर्थात् दस मुख वाला (रावण) कहा है।

233. इसी स्थान से प्राणों की सूक्ष्म धार निकली। इसलिये यहाँ के धनी को प्राण पुरुष या प्रणव भी कहा जाता हैं। प्राणायाम के अभ्यासियों का यही इष्ट है और इस जगह उनका अभ्यास समाप्त होता है।

234. चूँकि मालिक की कुदरत से हर एक स्थान का धनी नीचे की कुल रचना का करता हरता है, इसलिये जो अभ्यासी जिस स्थान पर पहुँचा उसने वहीं के धनी को ख़ुदा और परमेश्वर बतलाया और अपने अनुयाइयों को उसी धनी का इष्ट बँधवाया और आगे का भेद न जाना, क्योंकि आगे का भेद सिवाय सन्त सतगुरु के कोई नहीं जानता है और सन्त सतगुरु उनको मिले नहीं, जो मिलते तो भेद आगे का बतलाते और उनका रास्ता चलाते। अब मालूम करना चाहिये कि साध और ज्ञानी और भक्त और अवतार और पैगम्बर और सब महात्मा जो कि असली और निज स्थान पर न

पहुँचे, उनका दरजा सन्तों से नीचा और बहुत कम है और चूँकि वे राह में न्यारे-न्यारे स्थानों पर रह गये, इसी सबब से न्यारे न्यारे मत संसार में जारी हो गये।

235. जिस तरह जीव के तीन रूप जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था में हैं, उसी प्रकार ब्रह्म के भी तीन रूप हैं। हर स्थान पर वहाँ के रूप के साथ माया मिली हुई है। ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ते जाते हैं, माया स्थूल से सूक्ष्म होती चली जाती है।

236. जब सहसदल कँवल की माया अभ्यासी को आगे जाने से नहीं रोक सकती और लज्जित हो जाती है तो पहले वह सहसदल कँवल के धनी को सहायता के लिए खड़ा करती है, परन्तु जब वह पराजित हो जाता है तो उससे ऊपर के धनी को सहायता के लिए खड़ा करती है। यह सूर्पनखा का रावण को सीता हर लाने के लिए उत्तेजित करना है।

सभा माँझ परि व्याकुल बहु प्रकार कह रोइ।
तोहि जियत दसकंधर, मोरि कि असि गति होई॥

(शूर्पणखा बीच सभा में व्याकुल होकर गिर पड़ी और बहुत प्रकार से रोकर कहने लगी कि हे दसकंधर (रावण), क्या तेरे जीते जी मेरी ऐसी (नकटी बुच्ची होना) गति होनी चाहिये?)

237. जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, उद्धार करने वाली चैतन्य की धार ऊपर से आई है मगर स्थान स्थान पर इसका रूप और शब्द जुदा जुदा है। इसलिये अभ्यासी का इष्ट तो वही चैतन्य की धार रहती है मगर हर एक स्थान

पर उसका रूप बदलता जाता है। जब अभ्यासी सहसदल कँवल के स्थान पर पहुँच जाता है तो वहाँ के इष्ट को वहीं छोड़ देता है, और उससे ऊपर के स्थान त्रिकुटी पर जो रूप है, उसका इष्ट धारण करता है। यही रामचन्द्र का सहसदल कँवल की सीता को अग्नि में सौंप, दूसरी सीता को अपने साथ लेना है।

लछिमनु गये बनहिं जब लेन मूल फल कन्द।
जनक सुता सन बोले बिहंसि कृपा सुख बृन्द ॥

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला।
मैं कछु करबि ललित नर लीला ॥
तुम्ह पाबक महुँ करहु निबासा।
जौं लगि करउँ निसाचर नासा ॥
जबहिं राम सबु कहा बखानी।
प्रभुपद धरि हिय अनल समानी ॥
निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता।
तैसइ सील रूप सुबिनीता ॥
लछिमनहूँ यह मरमु न जाना।
जो कछु चरित रचेउ भगवाना ॥

(जब लक्ष्मण मूल, फल, कन्द लेने के लिए बन में गये तब रामचन्द्र सीता से बोले कि मैं जब तक राक्षसों का नाश करूं तब तक तुम अग्नि में निवास करो। सीता अग्नि में समा गईं। वह अपने प्रतिबिम्ब (छाया रूपणी सीता) को वहाँ रख गई जिसका शील और रूप वैसा ही था और जो वैसी ही विनीत भी थीं। रामचन्द्र ने जो कुछ चरित्र रचा, इसका मर्म लक्ष्मण ने भी नहीं जाना।)

238. इष्ट अभ्यासी की जान और प्राण है। अभ्यासी उसे कदापि अपने से अलग करना नहीं चाहता। पर चूँकि इष्ट अभ्यासी को आगे और ऊपर चलाना व चढ़ाना चाहता है, इसलिये वह काल और माया की आड़ लेकर उसकी विरह जगाकर उसकी आगे की तरक्की का बन्दोबस्त करता है। यह बन्दोबस्त सूक्ष्म माया द्वारा किया जाता है जो अभ्यासी को कुछ काल के लिए अपने में लिप्त कर लेती है और इसी बीच में इष्ट अभ्यासी को छोड़ ऊपर खिंच जाता है, परन्तु रास्ते में ऐसे चिह्नों का पहले से ही गुरु द्वारा संकेत कर दिया जाता है कि जिनसे अभ्यासी को इष्ट तक पहुँचने के लिए ठीक रास्ते का निश्चय हो सके। यही रावण का मारीच की मदद से सीता को हर ले जाना और सीता का रास्ते में वस्त्र और आभूषण गिराते हुए जाना है।

दसमुख गयऊ जहाँ मारीचा।
नाइ माथ स्वारथ रत नीचा ॥
होहु कपट मृग तुम छलकारी।
जेहि बिधि हरि आनउँ नृप नारी ॥

— — — —

सून बीच दस कंधर देखा।
आवा निकट जती के बेखा ॥

क्रोधवन्त तब रावन लीन्हेसि रथ बैठाइ।
चला गगन पथ आतुर भय रथ हाँकिन जाइ ॥

239. उद्धार करने वाला अन्तरी शब्द 'उलटा नाम' है कि जिसको पकड़कर अभ्यासी लौटकर ब्रह्म हो जाता है।

उलटा नाम जपत जगु जाना।
बालमीकि भये ब्रह्म समाना ॥

— रामचरित मानस

240. 'उल्टा नाम' जपने का मतलब अन्तर में उलट कर चलना है।

उलटा चलै गगन को धाई।
ता से काल रहै मुरझाई ॥

— घट रामायण

241. राम की जगह 'मरा मरा' कहने से बाल्मीक को ब्रह्म की प्राप्ति हुई, यह किसी लाल बुझक्कड़ की सूझ है। इस साधारण अर्थ में 'उल्टा शब्द' का महत्त्व जाता रहता है।

242. जब अभ्यासी सहसदल कँवल से आगे चलता है तो इष्ट के वियोग के कारण उसमें बेहद विरह जाग उठती है और यही विरह उसको आगे बढ़ाती है। इस दशा में अभ्यासी को सिवा अपने इष्ट से मिलने के और कोई विचार मुख्य करके नहीं रहता है। बाहर संसार में लोगों के देखने में वह कुछ पागल सा नजर आता है।

एहि विधि खोजत बिलपत स्वामी।
मनहुँ महा विरही अति कामी ॥

243. परन्तु उसका यह पागलपन इस संसारी घाट की अज्ञानता के कारण नहीं होता है बल्कि वह ज्ञान सहित होता है। इसी कारण अभ्यासी को इस दशा में सब दुनिया पागल नजर आती है। दुनिया अपने दृष्टिकोण से अभ्यासी को पागल समझती है और वह अपने दृष्टिकोण से दुनिया को पागल ख़याल करता है।

244. मन के घाट से ज्यों ज्यों अभ्यासी अन्तर में चलता जाता है, त्यों त्यों उसकी निगाह पलटती जाती है। इस घाट पर जो दुनिया अभ्यासी को पहले रंग बिरंगी सुहावनी मालूम होती थी, वह धीरे धीरे फीकी पड़ने लगती है और अन्त में स्वप्नवत हो जाती है। सहसदल कँवल के ऊपर से विरह की दशा में अभ्यासी अपनी काया से बहुत कुछ बे-परवाह हो जाता है और उसमें बन्धन बहुत ढीला हो जाता है। यही रामचन्द्र का कबन्ध राक्षस को मारना है। कबन्ध यानी काया का बन्धन

'आवत पंथ कबन्ध निपाता'

245. ज्यों ज्यों अभ्यासी आगे चलता है, माया का दबाव हलका होता जाता है और अन्त में वह ऐसी जगह पहुँच जाता है जहाँ माया उससे तंग होने लगती है। माया को तंग करने वाले मतंग ऋषि हैं जिनके आश्रम में पहुँच कर सतसंग प्राप्त होता है।

246. विरह के साथ साथ इष्ट का प्रेम भी अभ्यासी में काफ़ी बढ़ जाता है। विरह का मारा हुआ अभ्यासी मुर्दे के

समान है जिसको प्रेम ज़िन्दा करने लगता है।

अज़ मोहब्बत मुर्दा जिन्दा मीशवद।
अज़ मोहब्बत शाह बन्दा मीशवद ॥

(मौलाना रूम)

अनुवाद —

प्रेम छिन में मुर्दे को जिन्दा करे।
प्रेम पल में शाह को बन्दा करे ॥

247. इस स्थान से अभ्यासी में प्रेम की नई नई उमंगें उठनी शुरू हो जाती हैं। यह रामचन्द्र का शबरी से मिलना है।

सबरी के आश्रम पगु धारा

248. शबरी अर्थात् शव+अरि यानी मुर्दे की शत्रु। यह अभ्यासी की मृतक दशा को दूर करने वाली प्रेम रूप शबरी है।

249. इससे आगे अभ्यासी एक बहुत ही रमणीक स्थान पर पहुँचता हैं जहाँ चैतन्य रूपी जल का एक सरोवर है जिसमें स्नान करने से उसके पापों का भार बहुत हल्का हो जाता है। इसी का नाम पम्पासर या पम्पा सरोवर है।

पम्पासरहि जाहु रघुराई

250. कुछ समय तक यहाँ ठहर कर अभ्यासी आगे चलता है और उसमें अच्छे अच्छे गुण उत्पन्न होने लगते हैं।

सबसे पहले दीनता अथवा सच्ची ग़रज़मंदी आती है। दीनता भक्ति का आभूषण है। दीनता मान का नाश करने पर आती हैं। मान का हनन करने वाला हनुमान है।

251. अभ्यासी के अन्य गुण कम बोलना, कम खाना और कम सोना है। किसी ने प्रेमियों के नौ लक्षण बताये हैं :--

आहे सर्दो रंगे ज़र्दो चश्मे तर।
इन्तज़ारी, बे-क़रारी, बे सबर ॥

कम गुफ़्तनों कम खुर्दनो ख़्वाबे हराम।
आशिकांरा नौ निशां बाशद पिसार ॥

(ठण्डी आह, पीला रंग, आँखें तर, प्रतीक्षा, बेचैनी, अधीरता, कम बोलना, कम खाना और सोना तो हराम है।)

252. कम बोलने की आदत होने पर अभ्यासी की बोली मीठी भी हो जाती है। चुप रहना और मीठा बोलना दोनों साथ साथ हैं। मीठी बोली सुग्रीव है। सुग्रीव (सु+ग्रीव) के मानी अच्छे गले वाला है।

253. कम बोलना ऋष्यमूक पर्वत है। मूक मानी गूँगा।

आगे चले बहुरि रघुराया।
रिष्यमूक पर्वत नियराया ॥
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवाँ।
आवत देख अतुल बल सीवाँ ॥
अति सभीत कह सुनु हनुमाना।
पुरुष जुगल बल रूप निधाना ॥

धरि बटु रूप देखु तैं जाई।
कहेसु जानि जिय सैन बुझाई ॥

(रामचन्द्र आगे चले और ऋष्यमूक पर्वत के पास पहुँचे। वहाँ मंत्रियों समेत सुग्रीव रहता था। उसने अतुल बल की सीमा रामचन्द्र को आते देख बहुत ही भयभीत होकर हनुमान से कहा कि ये दोनों पुरुष बल और रूप के ख़जाने हैं। तुम ब्रह्मचारी का वेष धर, जाकर देखो। अपने जी में ठीक समझ मुझे सैन से समझा कर कह देना।)

तब हनुमन्त उभय दिशि की सब कथा सुनाई।
पावक साखी देय करि जोरी प्रीति दृढ़ाई ॥

(तब हनुमान ने दोनों ओर का सब समाचार (रामचन्द्र का सुग्रीव को और सुग्रीव का रामचन्द्र को) सुना कर और अग्नि की साक्षी देकर दोनों की मित्रता दृढ़ता पूर्वक जोड़ दी।)

254. दीनता आने पर अभ्यासी को इष्ट की तरफ से ऐसे परचे यानी परिचय मिलते हैं जिससे उसकी प्रीति प्रतीत बढ़ती है और ठीक रास्ता निश्चित कर लेता है। यह सीता के आभूषण और वस्त्र हैं जो उसने लंका जाते समय मार्ग में डाल दिये थे।

मन्त्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा।
बैठ रहेऊँ मैं करत विचारा ॥
गगन पंथ देखी मैं जाता।
परबस परी बहुत विलपाता ॥
राम राम हा राम पुकारी।
हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी ॥

माँगा राम तुरत तेहि दीन्हा।
पट उर लाइ सोच अति कीन्हा ॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा।
तजहु सोच मन आनहु धीरा ॥
सब प्रकार करिहऊँ सेवकाई।
जेहि विधि मिलिहि जानकी आई ॥

(सुग्रीव ने कहा कि मैं एक बार मन्त्रियों के साथ यहाँ बैठा हुआ विचार कर रहा था, इतने में आकाश मार्ग से मैंने सीता को जाते देखा। वह परवश पड़ी हुई बहुत विलाप करती थी। राम! राम! हा राम! पुकारती जाती थीं। उन्होंने हम लोगों को देखकर कपड़ा फेंका। यह सुनकर रामचन्द्र ने वह कपड़ा मांगा। सुग्रीव ने तुरंत ही दे दिया। उस वस्त्र को हृदय से लगाकर रामचन्द्र ने बड़ा सोच किया। सुग्रीव कहने लगा, हे रघुवीर! सुनिये, आप सोच न करें, मन में धैर्य रक्खें। जिस तरह सीता आ मिलेगी मैं वैसी ही सब प्रकार से आपकी सेवा करूंगा।)

255. बाली बल वाले को कहते हैं जो कि काम है। काम अंग बड़ा बलवान है। कामी पुरुष को मीठा बोलने की आदत होती ही है। इसलिये काम का अंग और मीठी बोली अर्थात् बाली और सुग्रीव दोनों भाई हैं।

नाथ बालि अरु मैं दोउ भाई।
प्रीति रही कछु बरनि न जाई ॥

256. काम का ऐसा मोहनी रूप होता है कि अव्वल तो कोई उसका मुकाबला कर ही नहीं सकता और अगर कोई करे तो सन्मुख आते ही उसकी आधी शक्ति कम हो जाती

है। इसलिये काम यानी बाली का जीतना महा कठिन बल्कि असम्भव सा है।

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा।
बालि महाबल अति रनधीरा ॥

257. काम अंग की उत्पत्ति त्रिकुटी के ऊपर सुन्न से है इसलिये यह त्रिकुटी के ब्रह्म पर भी अपना असर रखता है। यही बाली का कुछ समय तक रावण को अपनी बगल में दबा रखना है। इस काम अंग अथवा बाली को वही जीत सकता है जो सहसदल कँवल के पार हो गया हो और जिसका इष्ट त्रिकुटी के स्थान से ऊपर का हो। मन के घाट से सहसदल कँवल तक सात स्थान हैं। जो कोई छिन भर में इन सात स्थानों को पार कर सकता हो, वही इस काम अंग यानी बाली को मार सकता है। यही रामचन्द्र का एक बाण से ताल के सात वृक्षों को बींधना और इस प्रकार सुग्रीव को अपने बल की परीक्षा देना है।

258. यद्यपि काम अंग और मीठी बोली दोनों भाई हैं, परन्तु कामी पुरुष अपने स्वार्थ के लिए मीठा बोलता है, उसे मुनासिब ना-मुनासिब का खयाल नहीं रहता। अभ्यासी काम अंग को यानी बाली को तो मार डालता है और मीठी बोली यानी सुग्रीव को अपने साथ ले लेता है।

मारा बालि राम तब हृदय मांझ सर तानि

259. काम के सूक्ष्म अंग विरह और तड़प हैं। अभ्यासी

काम के स्थूल अंग को मारकर उसके सूक्ष्म अंग विरह और तड़प को ले लेता है। यही रामचन्द्र का बालि पुत्र अंगद को अपने साथ लेना है। अंग अर्थात् देह को दाहने वाली विरह और तड़प को अंगद (अंग+द) कहते हैं।

यह तनय मम सम विनय बल कल्यान प्रद प्रभु लीजिये।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिये ॥

(रामचन्द्र ने एक बाण तानकर बाली के हृदय में मारा। वह विकल होकर धरती पर गिर पड़ा। फिर उठकर बैठा और रामचन्द्र से कहा कि हे कल्याणप्रद चरण वाले! यह मेरा पुत्र अंगद विनय और बल में मेरे समान है, इसको आप लीजिये। हे देवों और मनुष्यों के नाथ! आप इसकी बाँह पकड़कर इसको अपना दास कीजिये।)

260. सहसदल कँवल के आगे जो विरह अभ्यासी में जागती है, वह इस जगह पक्की हो जाती है और एक तौर से अभ्यासी के हृदय में थाना गाड़ लेती है। दीनता के बाद अभ्यासी में यह दूसरी मुख्य शक्ति काम करने वाली है। इस जगह अभ्यासी में उत्साह और उमंग भी बहुत उत्पन्न हो जाती है। गंभीरता और धीरज भी आ जाता है। उत्साह और उमंग बानरों की सेना है, गंभीरता और धीरज रीछ हैं।

261. अपने इष्ट का विश्वास और भरोसा इस जगह पक्का हो जाता है। विश्वास और भरोसा नल और नील हैं।

262. काम अंग अर्थात् बाली को मार डालने पर अभ्यासी ऐसे स्थान पर पहुँचता है, जहाँ उस पर इष्ट की

तरफ से दया की वर्षा खूब होने लगती है। यह रामचन्द्र और लक्ष्मण का प्रवर्षण पर्वत अर्थात् बहुत वर्षा के स्थान पर पहुँचना है।

जब सुग्रीव भवन फिर आये।
राम प्रबरषन गिरि पर छाये ॥

263. विरह अग्नि में दया रूपी वर्षा पड़ने से अभ्यासी की आँख से तुरन्त पानी निकल पड़ता है। हर समय आँखें तर रहती हैं, यह इष्ट यानी सीता के वियोग में अभ्यासी अर्थात् राम का रोना और विलाप करना है।

आश्रम देखा जानकी हीना।
भये विकल जस प्राकृत दीना ॥
हा गुन खानि जानकी सीता।
रूप सील ब्रत नेम पुनीता ॥
किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं।
प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं ॥
एहि विधि खोजत बिलपत स्वामी।
मनहुँ महा विरही अति कामी ॥

264. बहुत काल तक अभ्यासी इस दया रूपी वर्षा का अनुभव करता है।

265. यहाँ अभ्यासी कुछ काल गुफा में रहता है।

प्रथमहि देवन्ह गिरि गुहा राखी रुचिर बनाइ।
रामु कृपानिधि कछुक दिन बास करहिंगे आइ ॥

266. गुफा से मतलब बंकनाल से है। यहीं फटिक सिला है। रामचरितमानस की चौपाई यह है :–

फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई।
सुख आसीन तहाँ दोउ भाई ॥

267. घट रामायण में परम सन्त तुलसी साहब ने इसका ज़िक्र इस तरह किया है–

पुनि ताके परे दल सहस कँवल।
सो जल में जानि निर्बान के ठाईं ॥
ताके परे जल कोर के धोर।
सो अविगति काल ने जाल बिछाईं ॥
ता पै फटिक सिला पै मिला।
नभ स्याम को बास बसै येहि माईं ॥
आगे चली सुनि साखि अलि।
सो आतम ताल के तट में आई ॥
ताके परे दल दोई कँवल।
सो सुन्न प्रमातम बास कराई ॥
ताके परे सत शब्द का बास।
सो चढ़ी सत सूरति शब्द में आई ॥

268. वर्षा ऋतु समाप्त होने पर अर्थात् दया खिंच जाने पर अभ्यासी फिर अपने साथी गुणों की ओर ध्यान देता है। दीनता, विरह, शोक, धीरज आदि को साथ लेकर अभ्यासी अपने घट में चैतन्य धार से मिलने का प्रयत्न करता है। यही

हनुमान, अंगद, वानर और रीछों को साथ लेकर सीता की खोज में निकलना है।

बरषा गत निर्मल ऋतु आई।
सुधि न तात सीता कै पाई ॥
सुग्रीबहु सुधि मोरि बिसारी।
पावा राज कोस पुर नारी ॥

— — — —

इहाँ पवनसुत हृदय बिचारा।
राम काजु सुग्रीव बिसारा ॥
निकट जाइ चरनन्हि सिरुनाबा।
चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा।
सुनि सुग्रीव परम भय माना।
विषय मोरि हरि लीन्हेउ ग्याना ॥
अब मारुत सुत दूत समूहा।
पठवहु तहँ तहँ बानर जूहा ॥

— — — —

हरषि चले सुग्रीव तब अंगदादि कपि साथ।
रामानुज आगे करि आये जहँ रघुनाथ ॥

— — — —

ठाढ़े जहँ तहँ आयसु पाई।
कह सुग्रीव सबहि समुझाई ॥
राम काजु अरु मोर निहोरा।
बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा ॥

जनक सुता कहूँ खोजहु जाई।
मास दिवस महुँ आयहु भाई ॥

— — — —

सुनहु नील अंगद हनुमाना।
जामवन्त मति धीर सुजाना ॥
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू।
सीता सुधि पूछेहु सब काहू ॥

269. दीनता का अंग यानी हनुमान इन सब में मुख्य है। वही सबसे पहले इष्ट से मिल सकता है और अभ्यासी के वियोग की दशा का वर्णन करता है। अभ्यासी की प्रीति का चिह्न इष्ट के पास पहुँचाता है और इष्ट की निशानी, परिचय (परचा) अभ्यासी के पास लाता है।

270. दीन अधीन अभ्यासी अपने को बलहीन समझता है। परन्तु वास्तव में दीनता अर्थात् हनुमान में बड़ा बल है। मगर हनुमान अपने बल को जानता नहीं है। इसलिये अभ्यासी की तरह उसकी दीनता की यानी हनुमान की परीक्षा होती है।

271. अभ्यासी में जब तक इतनी दीनता न आ जाय कि वह लंका को घेर कर जला सके, खाक कर दे, तब तक वह त्रिकुटी पर चढ़ाई करने के योग्य नहीं समझा जाता। त्रिकुटी पर चढ़ाई करने से पहले काल और माया की शक्तियाँ जो बड़ी प्रबल हैं, अभ्यासी के मार्ग में अनेक रुकावटें डालती हैं। परंतु दीनता का अंग यानी हनुमान इन सबको दूर कर देता है।

तहँ संखनी करें पुकारा।
और डंकनी अमल पसारा ॥

— राधास्वामी साहब

272. सफलता दीनता के साथ मिलकर अभ्यासी की इष्ट से मिलने की आशा दृढ़ कर देती है। यह हनुमान को सम्पाति गिद्ध का मिलना है। सम्पाति अर्थात् सम्पत्ति सफलता का चिह्न है।

273. पहली रुकावट विषय भोग की धार है जिसका रस बड़ा मीठा है, लेकिन विष से भरा हुआ है। यह सरपों की माता सुरसा (सु+रसा) है जो समुद्र पार करते समय हनुमान को मिलती है।

274. दूसरी रुकावट माया की मोह की धार है जिसका आकर्षण बड़ा जबरदस्त है। यही सिंहिका राक्षसी है जो हनुमान को मिलती है। सिंहिका का अर्थ काल की धार हिंसा का है। हिंसा का मुख्य तत्त्व अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को सताना है जिसमें मुख्य कारण मोह है। मोह की धार इतनी प्रबल है कि चाहे कोई वस्तु आँखों के सामने हो या न हो, उसका ख़याल आते ही अभ्यासी उसमें लिप्त हो जाता है। यही इस राक्षसी का छाया के द्वारा जीवों को खींच कर खा जाना है।

निसचर एक सिन्धु महि रहहि।
करि माया नभ के खग गहई ॥

जीव जन्तु जे गगन उड़ाहीं।
जल बिलोकि तिन्ह कै परछाहीं ॥
गहइ छाँह सक सो न उड़ाही।
एहि विधि सदा गगनचर खाई ॥
सोइ छल हनुमान कहँ कीन्हा।
तासु कपट कपि तुरतहिं चीन्हा ॥
ताहि मारि मारुत सुत वीरा।
बारिध पार गयउ मति धीरा ॥

275. तीसरी रुकावट खुद सूक्ष्म माया की अंस है जो त्रिकुटी के स्थान यानी लंका की रक्षा के लिए नियत है। अभ्यासी चाहे जितना छोटा यानी दीन अधीन होकर इससे बचकर निकलना चाहे तो भी नहीं जा सकता। दीनता से पराजित होने पर ही यह रास्ता छोड़ती है। यह हनुमान का मच्छर रूप धारण कर लंकनी से बचकर निकलना और उसके न निकलने देने पर हनुमान का उसको पराजित करना है।

276. इन रुकावटों के दूर होने पर अभ्यासी दीनता को साथ लेकर घट में इष्ट यानी सीता की खोज करता है।

277. पहले काल नकली रूप दिखाकर अभ्यासी को अपनी ओर खींचने की चेष्टा करता है। परन्तु इष्ट के असली चिह्नों से भिन्न होने के कारण अभ्यासी एक बार भ्रम में तो पड़ जाता है मगर तुरन्त उससे दूर हो जाता है। यह हनुमान का रावण के महल में मन्दोदरी को देखकर भ्रम में पड़ जाना है।

278. इसके पीछे अभ्यासी को दया की धार मिलती है जो विभीषण है। विभीषण का मतलब भीषण अर्थात् भय अथवा कठोरता को दूर करने वाली दया है। यही अभ्यासी को अभय करने वाली धार है। इसी कारण इस स्थान को अभय पद भी कहा जाता है। इस दया की धार से अभ्यासी को इष्ट का स्थान मालूम होता है अर्थात् अभ्यासी के दीनता के अंग को ठीक जगह पर पहुँचा देती है।

पुनि सब कथा विभीषण कही।
जेहि विधि जनकसुता तहँ रही ॥

279. यह इष्ट का स्थान दुःख और शोक से सर्वथा रहित है। यही अशोक वाटिका है।

बन असोक सीता रह जहवाँ

280. इसी जगह से तीन गुण सूक्ष्म रूप में निकले हैं। यही त्रिजटा राक्षसी है जो अशोक वाटिका में सीता के पास रहती है।

त्रिजटा नाम राक्षसी एका

281. ब्रह्म नहीं चाहता कि कोई भी उसके आधीन जीवों को उसके राज्य से निकाल कर ले जावे। इसलिये वह अपने स्वभावानुसार उद्धार करने वाली धार यानी इष्ट को भी भय दिखला कर अपने आधीन करने की चेष्टा करता है। परंतु इष्ट पर उसका कोई असर नहीं होता है। यह रावण का धमकी दिखला कर सीता को अपने आधीन करने की चेष्टा है।

बहु बिधि खल सीतहिं समुझावा।
साम दाम भय भेद दिखावा ॥

282. जब अभ्यासी की दीनतापूर्वक पुकार और प्रार्थना इष्ट के पास बिना किसी रुकावट के पहुँचने लगती है और वहाँ का कुछ चैतन्य अहार उसे मिलने लगता है तो काल यानी ब्रह्म को यह बात बिल्कुल नहीं सुहाती और वह अभ्यासी के दीनता के अंग को नष्ट करने का प्रयास करता है। तरह तरह के दुःख भय, चिन्ता, निन्दा, अत्याचार, इत्यादि प्रबल रूप में अभ्यासी पर काल की तरफ से आते हैं क्योंकि काल नहीं चाहता कि उसके राज्य से कोई निकल जावे और उसकी अमलदारी में फर्क आवे मगर अभ्यासी सबको सहन करके काल की धारों को बेकार कर देता है। जब किसी प्रकार भी अभ्यासी काबू में नहीं आता तो जिस कायदे कानून से काल ने सारे संसार को बाँधा है, उसी कायदे कानून रूपी नागफाँस की सहायता लेकर अभ्यासी की दीनता को काल अपनी क्रोधाग्नि से भस्म कर देना चाहता है।

'नाग फाँस डाली जहाँ काला'

— राधास्वामी साहब

283. अभ्यासी यहाँ के कानून कायदों को तोड़ना मुनासिब नहीं समझता और दीनता को नष्ट करने के लिए जो प्रयत्न नागफाँस की सहायता से काल काम में लाता है उनको अभ्यासी अवहेलना न कर, स्वीकार कर लेता है यानी उसके अत्याचारों को खुशी से झेलता है और नागफाँस में

बँध जाता है। मगर अभ्यासी की दीनता प्रेम का रूप धारण करती है और उस प्रेम के खिंचाव में यह नागफाँस उसका कुछ बिगाड़ नहीं कर सकती। बल्कि उसे पक्का करती है। वह संसार के अन्य मनुष्यों की तरह कुछ छिपाता नहीं है बल्कि संसार की रीति के अनुसार ही उस में बरतना शुरू कर देता है और कभी अत्याचारों के कारण विचलित नहीं होता। अभ्यासी के ऐसे निष्कपट बरताव से सारा संसार दुःखी होकर तंग आ जाता है और काल जल भुनकर और थक कर बैठ जाता है और अभ्यासी की दीनता की महिमा उसके हृदय में समा जाती है। यही हनुमान का बगीचे में फल खाना, राक्षसों को मारना, नागफाँस में बँध कर रावण के पास जाना, रावण का उनकी पूँछ में आग लगाना और फिर उसी आग में लंका को जलाना है।

284. इस प्रकार काल के थककर बैठ जाने पर अभ्यासी की दशा ऐसी हो जाती है कि इष्ट के वियोग से दुःखी होकर जैसे ही वह दीन अधीन होकर इष्ट से पुकार और प्रार्थना करता है, वैसे ही तत्काल इष्ट की ओर से प्रेम की धार आकर उसको शान्ति देती हे। यह हनुमान का सीता से चूड़ामणि लेकर रामचन्द्र के पास लौट आना है।

285. माया में सहन करने की योग्यता बिल्कुल नहीं है। वह बड़ी तुनक मिज़ाज है। छिन-छिन में बदलने वाले स्वभाव की है। वही मन्दोदरी है। मन्दोदरी यानी मन्द+उदरी अर्थात् हलके पेट वाली, जिसमें न सहन शक्ति है और जो

न किसी बात को अपने अन्दर छिपाकर रख सकती है। माया यानी मन्दोदरी को भय भी बहुत जल्दी व्यापता है। वह जानती है कि यह अभ्यासी रोके नहीं रुकेगा। क्योंकि वह पहले ही उसके रोकने के सब प्रयत्न करके लज्जित हो चुकी है। इसलिये वह काल को बहुत समझाती है कि मेल कर ले। यही मन्दोदरी का रावण को समझाना है।

दूतिन्ह सन सुनि पुर जन बानी।
मन्दोदरी अधिक अकुलानी ॥
रहसि जोरि कर पति पद लागी।
बोली बचन नीति रस पागी ॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हे।
हित न तुम्हार सम्भु अज कीन्हे ॥

286. मगर काल अपने स्वभाव के अनुसार माया की कुछ नहीं सुनता है और पहले की तरह ही अभ्यासी का विरोध करने पर डटा रहता है। काल में नम्रता आदि लेशमात्र नहीं है। अभ्यासी के बल की महिमा जानते हुए भी वह अपने स्वभाव के अनुसार अन्त घड़ी तक अभ्यासी से विरोध करता रहता है।

287. इस प्रकार गौण अंग से चढ़ाई हो जाने और काल व माया के विघ्नों से रास्ता साफ हो जाने के बाद अभ्यासी मुख्य अंग से चढ़ाई करने के योग्य होता है और अपने सद्गुणों को सेना के साथ लेकर आगे बढ़ता है। यह सद्गुण दीनता, विरह, धीरज, मीठी बोली, शौक़, उमंग

इत्यादि हैं। यही राम और लक्ष्मण का हनुमान, अंगद, जामवन्त, सुग्रीव और बानरों व रीछों की सेना लेकर लंका पर चढ़ाई करना है।

288. शुरू में अभ्यासी अन्य जीवों की तरह भवसागर के जल में डूबा रहता है। जैसे जैसे उसकी तरक्की होती जाती है, वह जल में से निकलता जाता है। मन के अभ्यास के अनुसार छठे चक्र पर आकर इसका सिर जल से बाहर निकलता है। यह इसका निस्तार है। सहसदल कँवल में पहुँच कर यह जल के ऊपर आ जाता है जो इसका उबार है। त्रिकुटी में यह जल से अलग होने लगता है। यह उसके उद्धार का आरम्भ है। उद्धार योगीश्वरों के हिसाब से सुन्न स्थान प्राप्त करने पर होता है।

289. ऊपर वर्णन की हुई दशाओं के प्राप्त होने पर अभ्यासी भवसागर के किनारे पर आ जाता है अर्थात् इसके ऊपर आकर इससे बिलकुल अलग होने को तैयार हो जाता है। तब इष्ट की दया आकर मिलती है और हर समय उसके साथ रहती है। यह राम और लक्ष्मण का सेना सहित समुद्र के किनारे पर पहुँचना है और वहाँ विभीषण का रामचन्द्र से आकर मिलना है।

290. अनुनय विनय व सेवा पूजा से अभ्यासी इस भवसागर के धनी को रास्ता देने के लिए राज़ी करने का प्रयत्न करता है। मगर जब वह किसी तरह नहीं राज़ी होता तो वह अपने इष्ट के भरोसे उसको आँख दिखाता है जिससे

वह डरकर अभ्यासी को पार होने का प्रयत्न बतला देता है।

आँख दिखाऊँ और झुँझलाऊँ।
सतगुरु के बल जोर चलाऊँ ॥

—राधास्वामी साहब

291. उसी के अनुसार दृढ़ विश्वास और भरोसे का पुल बाँध कर अभ्यासी सद्गुणों की सेना सहित उसके पार हो जाता है। भवसागर की विष रूप लहरें अभ्यासी के नीचे से निकल जाती हैं। उस पर उनका लेश मात्र भी कोई असर नहीं होता। यह रामचन्द्र का नल और नील द्वारा समुद्र पर पुल बँधवा कर उस पर से सेना सहित पार होना है।

292. नल और नील में 'न' और 'नी' का मतलब है 'नीचे' और 'ल' से मतलब 'आलम्ब' अथवा 'सहारे' से है। इस प्रकार नल और नील नीचे का सहारा अर्थात् विश्वास और भरोसा है।

293. इस प्रकार भवसागर पार करने पर अभ्यासी को अंतर की चैतन्य धार का सहारा मिलता है अर्थात् बाहर के सब सहारे टूटकर अन्तर का सहारा प्राप्त होता है। यह समुद्र पार करके रामचन्द्र का सुवेल पर्वत पर ठहरना है। सुवेल का मतलब सु+वेल यानी अच्छी अथवा सुख देने वाली धार है। यह अन्तर में चैतन्य की, आनन्द देने वाली धार है।

इहाँ सुवेल सैल रघुवीरा।
उतरे सेन सहित अति भीरा ॥

294. जब अभ्यासी भवसागर पार कर इस तरह चैतन्य धार के आधार पर रहने लगता है तो ब्रह्म की सूक्ष्म माया मन्दोदरी को भय होता है कि जब यह मेरे रोके नहीं रुका तो फिर ब्रह्म को भी अवश्य जीत लेगा। इसलिये वह ब्रह्म यानी रावण को अभ्यासी से विरोध छोड़ देने के लिए बार बार कहती है परन्तु ब्रह्म अपने स्वभाव से लाचार है। वह कभी किसी को आगे जाने देने के लिए राज़ी नहीं हो सकता। अन्त में परास्त हो जाने पर अभ्यासी को तीन लोक का राज दे देना मंजूर है, परन्तु खुशी से अपने अधिकार से जाने देना उसके स्वभाव के बिलकुल विरुद्ध है। इस स्वभाव के कारण वह माया की कोई समझौती की बात नहीं मानता है और अभ्यासी की महिमा को जानते हुए भी युद्ध करने पर तैयार रहता है।

295. अपने मातहत रचना के लिए ब्रह्म नीति व न्याय का बादशाह है। उसका यह न्याय का अंग भी उसको अभ्यासी से विरोध छोड़ने के लिए समझाता है। परंतु उसका यह न्याय उसके अधिकार में रहने वालों के लिए है। अधिकार से निकलकर जाने वालों के लिए वह पूरा अन्यायी बन जाता है।

जो जो गये वहाँ उन्हें उलटावता रहा।
सबकी कमाई आप खड़ा खोसता रहा ॥
क्या क्या कहूँ अनर्थ बहुत भाँत कर रहा।
बिन सन्त सतगुरु वह सभी को निगल रहा ॥

आगे न कोइ जाय इसी में भुला रहा।
माया का झूला डाल मुनन को झुला रहा ॥
द्वारे के पार काहू को जाने न दे रहा।
बिन सन्त उसके पार कोई भी न जा रहा ॥

— राधास्वामी साहब

296. यह न्याय का अंग रावण का पुत्र प्रहस्त है। प्र (बड़ा) और हस्त (हाथ)। यह ब्रह्म का बड़ा हाथ यानी मुख्य काम है।

बचन सबहि के स्रवन सुनि कह प्रहस्त कर जोरि।
नीति विरोध न करिय प्रभु मन्त्रिन्ह मति अति थोरि ॥

297. किसी के समझाने पर वह नहीं मानता और तब अभ्यासी के विरह अंग को नष्ट करने की चेष्टा करता है। काल या ब्रह्म के पास जीव को रोकने के लिए चार औज़ार हैं — साम, दाम, दण्ड, भेद। जब इन चारों औज़ारों का अभ्यासी पर कोई असर नहीं होता तो वह खिसियाना और भयभीत हो जाता है। यह अंगद का रावण को समझाना और उसके चार मुकुटों को रामचन्द्र के पास फेंक देना है।

सुनु सर्वग्य प्रनत सुख कारी।
मुकुट न होहिं भूप गुन चारी ॥
साम दाम अरु दण्ड विभेदा।
नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा ॥
नीति धर्म के चरन सुहाये।
अस जिय जानि नाथ पहिं आये ॥

298. इस जगह अभ्यासी की अपने इष्ट के लिए लगन इतनी प्रबल हो जाती है कि काल की कोई शक्ति उसको डावाँडोल नहीं कर सकती है। यह अंगद का रावण की सभा में पाँव टेकना और किसी का उसको न डिगा सकना है।

सभा मांझ पन करि पद रोपा

— — — —

भूमि न छाँड़त कपि चरन, देखत रिपु मद भाग

299. अभ्यासी के सब अंगों को खास कर दीनता और विरह को पक्का करने के लिए काल और माया की रुकावटें और विरोध अति आवश्यक हैं। जैसे बिना आग में तपाये सोना कुंदन नहीं बन सकता, उसी तरह बिना काल और माया के विघ्नों के अभ्यासी के अंग भी पक्के नहीं होते। इस तरह जब अभ्यासी के सब अंग सर्वप्रकार से पक्के हो जाते हैं तब वह ब्रह्म से युद्ध करने के योग्य हो जाता है।

300. अभ्यासी का अन्तर में ब्रह्म अथवा काल के साथ यही युद्ध है कि ब्रह्म अपनी नाना कलायें दिखला कर व लुभा और भुला कर उसको अपनी हद से बाहर नहीं जाने देता है पर सच्चा अभ्यासी सतगुरु की कृपा प्रसाद व अपने शौक , उमंग, धीरज, गम्भीरता, दीनता और विरह इत्यादि से उनके ज़ोर को सहन करता रहता है। इस खैंचातानी में अभ्यासी नम्र, उदासीन, शिथिल, दुःखी और अधीर होता रहता है। परन्तु काल और माया की सब शक्तियाँ धीरे धीरे

बेकार हो जाती हैं। तब अभ्यासी में इस स्थान के शब्दों के सुनने और उनको बर्दाश्त करने की ताकत आ जाती है और बहुत ही सुहावनी बादल की गरज जो हर समय वहां होती रहती है, सुनने लगता है। आरंभ में यह शब्द हल्का रहता है मगर ज्यों ज्यों अभ्यासी की बर्दाश्त की ताकत बढ़ती जाती हैं त्यों त्यों यह तीव्र होता जाता है। और अंत में पूरे तौर पर उसमें समा जाता है।

301. अभ्यासी के दो मुख्य अंग दीनता और विरह ही आरम्भ में शब्द को सुनते हुए और बर्दाश्त करते हुए इस स्थान के अंदर घुस जाते हैं और काल की बहुत सी शक्तियों को बेकार कर देते हैं। यह हनुमान और अंगद का मेघनाद को मूर्छित करके लंका में घुस जाना और उत्पात मचाना है।

अब दुइ कपि आये उत्पाती

302. काल की काफी शक्तियाँ क्षीण हो जाने पर शब्द बड़े ज़ोर से गाजने लगता है, जिसको सुनकर अभ्यासी अपने होश गँवा देता है। वैसे अभ्यासी अन्तर में अभ्यास में बा-होश और बा-खबर रहता है, परन्तु शब्द का आनन्द और ज़ोर इस कदर भारी है कि पूरे तौर पर शब्द के सन्मुख होने पर एक बार होश जाते रहते हैं यानी होशियारी अथवा चित्त को खो बैठता है। यह लक्ष्मण का मेघनाद की शक्ति से मूर्च्छित होना है।

मुरुछा भई शक्ति के लागे

303. चूँकि इस प्रकार अभ्यासी में शब्द समा जाने अथवा शब्द में अभ्यासी के समा जाने से उसकी आगे की तरक्क ी बन्द हो जाने का भय है, इसलिये इष्ट की दया से तुरन्त अभ्यासी में 'निरत' जाग जाती है जिससे अभ्यासी अपनी अवस्था पर दुःखी व चिंतित होकर दोबारा होशियार होने के लिए विलाप करने लगता है। यह रामचन्द्र का लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर विलाप करना है।

अनुज देखि प्रभु अति दुःख माना

304. 'निरत' की धार सुखैन वैद्य है जो अभ्यासी को कमतर दरजे के सुख और आनन्द में लय होने से बचाती है। सुखैन का मतलब (सुख+अयन) सुख देने वाला है। यह सुख में ज्ञान उत्पन्न करने वाली धार है। इसी को 'निरत' कहते हैं। 'निरत' का मतलब नि+रत यानी नीचे घाट के सुख और आनन्द में रत न होकर ऊँचे घाट के सुख और आनन्द को प्राप्त करना या कराना है।

305. चूँकि अभ्यासी दीन अधीन होता है इसलिये इष्ट की ओर से जो कुछ कार्रवाई उसके लिए होती है, उसको वह खुशी से मन्ज़ूर और ग्रहण करता है। अभ्यासी के अन्दर दीनता के कारण किसी धार के आने में कोई रुकावट नहीं होती। इस प्रकार 'निरत' की धार आने में भी दीनता ही सहायक होती है। यह हनुमान का सुखैन वैद्य को लंका से लाना है।

जामवन्त कह वैद सुखेना।
लंका रह कोउ पठइय लेना ॥
धरि लघु रूप गयऊ हनुमन्ता।
आनेहु भवन समेत तुरन्ता ॥

306. विष इस मन का अहार है। इसी से यह ज़िंदा और होश में रहता है। अगर विष का अंग बिल्कुल बन्द कर दिया जावे तो मन उसी समय मुर्दा हो जाता है। शब्द चूँकि अमृत रूप है, उसको सुनते ही यह बेहोश अथवा मुर्दा हो जाता है।

307. इसको फिर बा-होश करने के लिए थोड़ी सी विष की घुट्टी देना जरूरी है। यह विष यहाँ (इस देश) की संजीवनी बूटी है जो लक्ष्मण को होश में लाने के लिए अथवा ज़िन्दा करने के लिए दी जाती है।

308. यह घुट्टी थोड़ी देर के लिए बहुत नीचे घाट पर उतार कर दी जाती है। इस विषय को देखकर अभ्यासी को अहंकार द्वारा भ्रम उत्पन्न होता है कि कहीं यह (विष) उसे हानि न पहुँचावे। लेकिन जब उसको निश्चय हो जाता है कि यह उसको दवा की तरह उसी के फायदे के लिए दी जा रही है तो ख़ुशी से ग्रहण कर लेता है।

अगर शहद गर जहर बख़्शद ख़मोश।
बिगीरो बिबोसो बिनोशो बिजोश ॥

— सरमद

अर्थ —

कभी मेहर से शहद देवें तुझे।
मुनासिब समझ ज़हर देवें तुझे ॥
तू चुप होके ले और सिर पर चढ़ा।
तू खुश होके पी और कह यह सदा ॥
कि धन धन हैं धन धन हैं सतगुरु मेरे।
उतारेंगे भौजल से बेशक परे ॥

— राधास्वामी साहब

309. यह हनुमान का संजीवनी बूटी लाना, रास्ते में भरत का उसको रोकना और सही बात मालूम होने पर पछताना और हनुमान को खुशी के साथ भेज देना है।

310. जब अभ्यासी मेघनाद यानी बादल की गरज के शब्द का आनन्द हज़म कर लेता है तब उससे ऊपर का और अधिक बलवान शब्द यानी मृदंग की आवाज से उसका सामना होता है। चूँकि अभ्यासी होशियारी के साथ इसके सन्मुख आता है इसलिये इसके ग्रहण करने में उसको कोई विशेष आपत्ति या देर नहीं लगती।

तासु तेज प्रभु बदन समाना

311. यह कुम्भकरण का मारा जाना है।

312. इसके बाद फिर मेघनाद से अभ्यासी की खैंचातानी होती है। अब वह अभ्यासी पर अपनी पूरी शक्ति का

विकास कर देता है। जब अभ्यासी इस शब्द की सारी शक्ति को सहन कर लेता है तो यह अभ्यासी को अपने कानून कायदे की नागफाँस में बाँध लेता है ताकि आगे न जाने पावे। अभ्यासी ब्रह्म के कानून कायदे को तोड़ना उचित नहीं समझता और उसकी नागफाँस में बँध जाता है। परन्तु इष्ट को अभ्यासी की चढ़ाई मंजूर है। वह अपनी चैतन्य धार से अभ्यासी के सब बँधन काट देता है। यही नागफाँस में बाँधा जाना और गरुड़ का आकर उसको काट देना है।

नागफाँस डाली जहाँ काला।
गरुड़ शब्द से काटा जाला ॥
फिर सत गुरु जब भये सहाई।
बिघन अनेकन दूर कराई ॥

—राधास्वामी साहब

313. अभ्यासी की इतनी सहन शक्ति देखकर शब्द वापस लौट जाता है और ऊपर की शक्ति से सहायता लेने का जतन करता है। इष्ट की दया (विभीषण), अभ्यासी (मन, राम) को होशियार कर देती है और वह (चित्त, लक्ष्मण) उस (मेघनाद) के इस जतन (यज्ञ) को पूरा नहीं होने देता। यह जामवन्त का मेघनाद को मूर्च्छित करने लंका में फेंक देना, होश आने पर उसका लज्जित होना, अजय जज्ञ करने की चेष्टा करना, विभीषण का रामचन्द्र से यह सब भेद कहना और वानरों का मेघनाद के यज्ञ को बिगाड़ देना है।

जामवन्त कह खल रहु ठाढ़ा।
सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा॥
मारेसि मेघनाद कै छाती।
परा धरनि घूमति सुर घाती ॥
पुनि रिसान गहि चरन फिरावा।
महि पछारि निज बल देखरावा ॥
बर प्रसाद सो मरइ न मारा।
तब गहि पद लंका पर डारा ॥
मेघनाद कै मुरछा जागी।
पितहिं बिलोकि लाज अति लागी ॥
तुरत गयेउ गिरि वर कन्दरा।
करउँ अजय मख[1] अस मन धरा ॥
सो सुधि पाई विभीषन कहई।
सुनु प्रभु समाचार अस अहई ॥
मेघनाद मख[1] करइ अपावन।
खल मायावी देव सतावन ॥
सुनि रघुपति अतिसय सुख माना।
बोले अंगदादि कपि नाना ॥
लछिमन संग जाहु सब भाई।
करहु बिधंस जग्य कर जाई ॥

314. फिर इस शब्द से अभ्यासी की मुठभेड़ होती है और अभ्यासी पूरी होशियारी रखते हुए इसको अपने अन्दर

---

(1) यज्ञ।

समा लेता है अथवा इस शब्द के आनन्द और बल को हजम कर जाता है। यह लक्ष्मण का मेघनाद की बाँह व सिर काटकर रामचन्द्र के पास फेंक देना है और मेघनाद को मार डालना है। बाँह बल का और सिर आनन्द व ज्ञान का चिह्न है जो अभ्यासी के अन्दर समाता है।

315. जब यह शब्द अभ्यासी में समा जाता है तो इसका तेज और प्रकाश अभ्यासी के माथे व आँखों से प्रकट होने लगता है। यह मेघनाद की स्त्री सुलोचना का रामचन्द्र के पास आकर अपने पति का सिर मांगना और उसके साथ सती[1] होना है। चूँकि शब्द की सत्ता और आनन्द उसके तेज और प्रकाश से अलग नहीं रह सकती, इसलिये सुलोचना का मेघनाद के साथ सती[1] होना आवश्यक है। सुलोचना का मतलब अच्छे नेत्रों वाली अर्थात् शब्द के तेज और प्रकाश से है। बादल की गरज और मृदंग बाजे की आवाज इन दोनों धुनों को अपने अन्दर समा लेने के बाद अभ्यासी इस कदर आनन्द में मस्त हो जाता है कि अगर कुछ समय के वास्ते नीचे न लाया जाय तो वह आनन्द हज़म न हो।

316. नीचे लाने में भी आनन्द के न्यून और अधिक होने का हिसाब रहता है। त्रिकुटी का आनन्द मन के लिए बढ़कर आनन्द की अवस्था है। इसलिये अभ्यासी को मन के साधारण घाट से भी नीचे उतार दिया जाता है। अभ्यासी की अन्तरी चढ़ाई में पेंग अथवा झूले का सा हिसाब रहता

---

(1) सती प्रथा अब दंडनीय अपराध है।

है। जितनी पेंग आगे को बढ़ती है, उतनी ही पीछे को भी जाती है और बीच में आने पर ही उसमें आगे बढ़ने के लिए जोर लगाया जाता है। कुछ समय तक नीचे के घाट पर रहने से जो आनन्द अभ्यासी ने ऊपर के घाट पर लिया है, वह सब हज़म होकर साधारण हो जाता है और उससे अधिक आनन्द लेने की चाह पैदा हो जाती है जिससे वह बार बार दीनता पूर्वक पुकार और प्रार्थना करता है। इस प्रकार वह आगे चलने के योग्य हो जाता है।

317. जब तक अभ्यासी नीचे के घाट पर है, तब तक काल उसको माया में लिप्त करने का भय दिखलाता रहता है। मगर दीनता और इष्ट की सहायता से वह फिर ऊपर के घाट पर चला जाता है। यही विष की धार (अहि-रावण) का राम और लक्ष्मण को पाताल में ले जाना, देवी को बलिदान चढ़ा देने का भय दिखलाना और हनुमान का उनको वहाँ से छुड़ा कर वापस लंका में लाना है।

318. ऊँचे घाट का आनन्द पाकर अभ्यासी को कुछ अहंकार हो जाता है। अहंकार को झाड़ने के लिए अभ्यासी का नीचे घाट पर उतारा जाना जरूरी है। जब तक अहंकार न झड़ ले, दीनता अलग रहती है। अहंकार और दीनता एक दूसरे के प्रतिकूल हैं। इसलिये अहंकार के रहते हुए दीनता साथ में नहीं रह सकती। यही कारण है जो हनुमान बाद में राम और लक्ष्मण के पास पहुँचे और उनको पाताल से निकालकर लाये।

319. फिर अभ्यासी का युद्ध खुद ब्रह्म के साथ होता है। ब्रह्म अभ्यासी के एक एक अंग की, चित्त, दया, दीनता, धीरज, विरह इत्यादि सब की बारी बारी से परीक्षा करता है।

320. सबसे पहले विशेष रूप से चित्त की परीक्षा करता है। जब अपना सब बल लगाकर भी चित्त (लक्ष्मण) को साधारण सा मूर्च्छित कर पाता है तो रावण अपने बल की कमी को पूरा करने के लिए ऊपर की शक्ति की सहायता लेने का प्रयत्न करता है। मगर अभ्यासी उसको यह प्रयत्न नहीं करने देता। यही रावण के यज्ञ का बन्दरों द्वारा विध्वंस करना है।

321. फिर ब्रह्म अन्य अंगों की परीक्षा करता है। जब वह अभ्यासी के सर्व अंग पक्के पाता है तो स्वयं उससे युद्ध आरम्भ करता है।

322. ब्रह्म अथवा काल बहिरमुख शक्ति है। उसकी सब धारें जो कि बहिरमुख हैं, एक केन्द्र से निकली हैं। जब तक अभ्यासी इस केन्द्र पर अपना अधिकार नहीं कर पाता, उस समय तक काल की बहिरमुख धारों को काट देने का कोई परिणाम नहीं। जैसे फव्वारे से पानी की धारें निकलती हैं तो जब तक उसकी टोंटी को न मरोड़ दिया जावे उसकी बाहर की धारों को काटना बेकार होता है, इसी तरह ब्रह्म की बहिरमुख धारों को काट देने से कोई नतीजा बरामद नहीं होता, वह ज्यों की त्यों जारी रहती हैं। यह रामचन्द्र का रावण के अंगों को बार-बार काट देना और उनका फिर निकल आना है।

काटत ही पुनि भये नवीने।
राम बहोरि भुजा सिर छीने ॥
कटत झटिति पुनि नूतन भये।
प्रभु बहु बार बाहु सिर हये ॥

323. काल अथवा ब्रह्म अपनी माया के चमत्कारों का भी अभ्यासी पर प्रभाव डालना चाहता है परन्तु माया अभ्यासी से पहले ही लज्जित हो चुकी है। इसलिये उसका कोई प्रभाव अभ्यासी पर नहीं होता। मगर फिर भी ब्रह्म को जीतना महा कठिन है।

324. अब इष्ट की दया (विभीषण) अभ्यासी की सहायता करती है और ब्रह्म के केन्द्र का भेद बतलाती है। उसके अनुसार जब अभ्यासी उस केन्द्र पर पहुँचकर उसके अमृत पर अपना अधिकार कर लेता है तो वह ब्रह्म रूप हो जाता है और ब्रह्म की कुल बहिरमुख धारें और शक्तियाँ अभ्यासी के अधीन हो जाती हैं। यह रामचन्द्र का रावण के मारने में कठिनता का अनुभव करना, विभीषण का रामचन्द्र को रावण की नाभि के अमृत का भेद बतलाना और रामचन्द्र का उसके अनुसार रावण की नाभि के अमृत को सोख कर उसको मार डालना है।

सुनु सर्वग्य चराचर नायक।
प्रनत पाल सुर मुनि सुख दायक ॥
नाभी कुण्ड सुधा बस या के।
नाथ जियत रावन बल ता के ॥

सुनत बिभीषन बचन कृपाला।
हरषि गहे कर बान कराला ॥
सायक एक नाभि सर सोखा।
अपर लगे सिर भुज करि रोखा ॥

— — — —

तासु तेज असमान प्रभु आनन

रावण का तेज रामचन्द्र के मुख में प्रविष्ट हो गया यानी अभ्यासी ब्रह्म रूप हो गया।

325. ब्रह्म के परास्त हो जाने पर माया बहुत रोती और विलाप करती है।

हाथ झाड़ माया तब रोती

— राधास्वामी साहब

326. जब दोनों के घेर से अभ्यासी निकल जाता है, तब चार नाचार वे धीरज धरते हैं और बजाय अटकाने के अभ्यासी के मददगार हो जाते हैं अब अभ्यासी जो कुछ करता है, उसमें ब्रह्म और माया कोई रुकावट नहीं डालते हैं बल्कि उसकी आज्ञा को खुशी से मानते हैं। ब्रह्म की तरह अभ्यासी भी घट घट में व्यापक हो जाता है।

एक राम दशरथ का बेटा,
एक राम घट घट में पैठा।
एक राम का सकल पसारा,
एक राम इन सबसे न्यारा ॥

327.

(1) यह राम अवतार स्वरूप है।
(2) यह राम मन है, पिण्डी यानी जिस्मानी।
(3) यह राम त्रिलोकी नाथ माया सबल ब्रह्म है।
(4) यह राम निर्गुन या पार-ब्रह्म है।

यह चारों स्वरूप काल पुरुष के हैं।

328. बजाय काल की कठोरता के वहाँ अभ्यासी की दया का राज्य हो जाता है अर्थात् अभ्यासी अब जिस पर दया करना चाहता है, उसमें ब्रह्म भी सहायक होता है। यह रावण के मरने पर मन्दोदरी का रोना और विलाप करना तथा रामचन्द्र का विभीषण को राज्य देना है।

329. इस स्थान को विजय करने पर अभ्यासी की अज्ञानता का सर्वांग करके नाश हो जाता है और यहाँ से उसको सच्चे मालिक की कार्रवाई का थोड़ा बहुत ज्ञान होने लगता है। सब कर्म भी अभ्यासी के यहां खत्म हो जाते हैं और अपने इष्ट से मिल जाता है। यह रामचन्द्र का सीता से मिलना है।

330. अभ्यासी इस स्थान के इष्ट को यहीं छोड़ देता है और अगले स्थान का इष्ट धारण करके आगे चलता है। यह रामचन्द्र का सीता को अग्नि में सौंप देना और उससे दूसरी सीता को लेना है।

331. अभ्यास में चाल धीरे-धीरे चलती है। जिस कदर

नीचे के घाटों में है, चाल उसी कदर धीमी है। ज्यों ज्यों ऊपर चढ़ता जाता है, तेजी बढ़ती जाती है। छठे चक्र तक अभ्यासी की चाल चींटी की सी रहती है। उससे ऊपर त्रिकुटी तक बन्दर की तरह उछल कर चलता है। और उससे ऊपर परी की तरह उड़कर अथवा विमान द्वारा चलता है।

332. अभ्यासी को इतनी शक्ति प्राप्त हो जाती है कि जिस समय चाहे ऊपर रहे और जिस समय चाहे नीचे मन के घाट पर उतर आवे। अन्तर की चढ़ाई में जो सद्गुण अभ्यासी में उत्पन्न होते हैं, वह मन के घाट पर उतर आने पर सब साथ आते हैं मगर ज्यों ज्यों अभ्यासी मन के घाट पर बैठकर संसार की कार्रवाई करता है, त्यों त्यों यह गुण साधारण होकर धीरे धीरे गुप्त हो जाते हैं। यह रामचन्द्र का लक्ष्मण, विभीषण, हनुमान, अंगद, सुग्रीव, जामवन्त इत्यादि सहित विमान द्वारा अयोध्या को लौट जाना और धीरे-धीरे सब मित्रों को विदा करना है।

अतिसय प्रीति देख रघुराई।
लीन्हे सकल विमान चढ़ाई ॥

— — — —

अब गृह जाहु सखा सब, भजेहु मोहिं दृढ़ नेमु।
सदा सर्वगत सर्वहित जानि करेहु अति प्रेमु ॥

333. इस प्रकार अभ्यासी के वापस आने पर मन के घाट के अहंकार (भरत) और बुद्धि (शत्रुघ्न) और तन का एक एक रोम आनन्दित और हर्षित हो जाता है। यह भरत,

शत्रुघ्न और अयोध्या वासियों का रामचन्द्र के लौट आने पर खुशी मनाना और मंगल गीत गाना है।

334. अब अभ्यासी में ज्ञान का प्रकाश हो जाने से अंधेरा नहीं रहता है। यही अयोध्या वासियों का राम के लौटने की खुशी में दीप मालिका मनाना है।

335. इस जगह त्रिकुटी की चढ़ाई समाप्त हुई। अब आगे की चढ़ाई का हाल कहा जावेगा।



अध्याय 10

सुन्न की चढ़ाई

बाहरी चरित्र

336. एक धोबिन को, रात के समय किसी दूसरी जगह रहने के कारण, धोबी ने क्रुद्ध होकर घर से निकाल दिया और रामचन्द्र का सीता को अपने घर रखने पर कुछ व्यंग बचन कहे। दूत द्वारा यह बात रामचन्द्र के पास पहुँच गई।

इक रजक[1] पत्निहि कहत डाटत व्यंग बचन सुनावही

337. धर्म की मर्यादा रखने के हेतु रामचन्द्र ने सीता को वन में छोड़ देने का विचार किया जिसको सीता पर इस प्रकार प्रकट किया।

निज छाया धरि यहाँ विनीता।
रहहु जाइ निज धाम पुनीता ॥
प्रभु पद वन्दि गई नभ सोई।
जीव चराचर लखी न कोई ॥

338. अयोध्या से वन में जाते समय जो वरदान सीता ने रामचन्द्र से वन में रहने की बाबत माँगा था, उसको पूरा

(1) धोबी।

करने के लिए अब सीता ने रामचन्द्र से कहा। रामचन्द्र ने उसे स्वीकार कर लिया।

तेहि सन प्रभु अस कहा बुझाई।
मन भावत मांगहु वर गाई ॥

339. सीता को वन में छोड़ आने के लिए रामचन्द्र ने भरत और शत्रुघ्न से कहा मगर उन्होंने टालमटूल कर दिया।

सुनि लघु भाई कहेउ रघुनाथा।
ले बन जाहु जानकिहिं साथा ॥
सूखि सहमि सुनि बचन कराला।
जरेउ गात उपजी उर ज्वाला ॥
हँसति कि साँच कहत रघुराई।
असमंजस मन दुख अधिकाई ॥

340. अन्त में लक्ष्मण सीता को ब्रह्मावर्त वन में छोड़ आये।

सुनि सौमित्रि[1] छाँड़ि हठ शोचू।
जग भल कहैं कहौ किन पोचू ॥
जनक सुता रथ तुरत चढ़ाई।
गंग समीप फिरहु पहुँचाई ॥
अति गह्वर वन जहाँ न कोई।
छाड़हु तात यतन कर सोई ॥

(1) लक्ष्मण।

फेरहु तुम मति बचन उदासा।
मरण ठान कर चलेउ निरासा ॥
सुभग विमान सीय बैठारी।
भूषण पट बहु धरे सँभारी ॥
अति अनन्द मन चली जानकी।
अतिशय प्रिय करुणा निधान की॥

341. उस वन में वाल्मीकि ऋषि गये। वह सीता को अपने आश्रम में ले आये। कुछ समय पीछे सीता के गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न हुए जिनके नाम लव और कुश रक्खे गये। यह दोनों बालक ऋषि की निगरानी में पले। ऋषि ने इनको सब प्रकार की विद्या पढ़ाई। दोनों बालक ऋषि मुनियों के बालकों के साथ बन में खेलते थे और निडर होकर इधर उधर फिरते थे।

342. इधर रामचन्द्र को एक रोज रावण के साथ युद्ध करने का स्वप्न हुआ। उन्होंने वशिष्ठजी की सलाह से अश्वमेध यज्ञ की तैयारी की।

जनक नगर चर तुरत पठाये।
देश देश के नृपति बुलाये ॥
जाम्बवन्त सुग्रीव विभीषण।
अरु नल नील द्विबिद कुलभूषण ॥
आये सब जहँ राम कृपाला।
वरुण कुबेर इन्द्र यम काला ॥
आये मुनिवर यूथ घनेरे।
देहि कृपानिधि सुन्दर डेरे ॥

विश्वामित्र संग मुनि झारी।
सहस सात ऋषि इच्छाचारी ॥

343. घोड़े के गले में पत्र बाँध कर छोड़ दिया। शत्रुघ्न को सेना देकर उसे चारों ओर फिराने को कहा और आज्ञा की कि जो राजा नम्रता के साथ बर्ताव करे उसको क्षमा करना और जो हठ के साथ घोड़े को बाँध ले उसके साथ युद्ध करके उसको हराना और घोड़े को ले आना। इस प्रकार घोड़े को आगे करके शत्रुघ्न ने सेना सहित अयोध्या से कूच किया।

344. सब देशों के राजों को आधीन करके अयोध्या को लौटते समय घोड़ा वाल्मीकि आश्रम की बगीची में चला गया। लव कुश ने घोड़े को बाँध लिया।

सिय सुत युगल वीर बरबण्डा।
भुज बल अमित दिनेश प्रचण्डा ॥
बीर बली हय देख्यो आई।
पत्र बँध्यो शिर बाँच्यो ताई ॥
घोड़ा तिन तुरन्त तरु बाँध्यो।
नेकु विचार न उर में साध्यो ॥

345. दोनों बालकों ने सेना का संहार कर डाला। शत्रुघ्न युद्ध में मारे गये।

मुनि बालक दोउ सेन सँहारा।
रिपुहन आदि समर महँ डारा ॥

346. रामचन्द्र ने तब लक्ष्मण को भेजा। कुश और लक्ष्मण का युद्ध हुआ। कुश के बाणों से लक्ष्मण अकुला गये।

सुनि कुश कठिन बाण संधाने।
कांपी पुहुमि शेष अकुलाने ॥

347. तब लक्ष्मण ने झपट कर एक गदा मारी जिससे कुश मूर्छित हो गया। यह देख लव दौड़ता हुआ आया और लक्ष्मण के साथ मल्ल युद्ध में जुट गया। लक्ष्मण भी युद्ध में मारे गये। सब सेना भाग गई। रामचन्द्र को सब हाल सुनाया।

बय किशोर दोउ बाल अनूपा।
तब प्रतिबिम्ब मनहु सुर भूपा ॥

348. तब भरत, जामबन्त, सुग्रीव, विभीषण, नल, नील, हनुमान आदि भेजे गये। बन्दरों और दोनों बालकों में खूब युद्ध हुआ। बन्दर और रीछ सब घायल हो गये। तब भरत से युद्ध हुआ और वह भी मारे गये। दूतों से खबर पाकर अब रामचन्द्र स्वयं युद्ध करने को आये।

चले सकोप कृपालु उदारा।
आये जहँ प्रभु कटक संहारा ॥

349. सुन्दर और सुहावने बालकों को देखकर रामचन्द्र ने उनसे पूछा कि कहो, तुम्हारे माता, पिता, देश, ग्राम आदि का क्या नाम है?

माता सीय जनक की ताता।
बाल्मीकि पाल्यो मुनि ताता ॥

पिता वंश नहिं जानहिं आजू।
लव कुश नाम सुनहु रघुराजू ॥

350. रामचन्द्र ने यह सुनकर सब कथा अपने मन में रख ली। बालकों को मारना उचित नहीं। हमारे वीर योद्धा आकर तुमसे लड़ेंगे। ऐसा कहकर रामचन्द्र ने नल, नील, अंगद, जामवन्त इत्यादि को उठाया। विभीषण को मूर्छा आ गई। जामवन्त और हनुमान पकड़े गये। रामचन्द्र भी मूर्छित हो गये। लब और कुश ने रामचन्द्र के मुकुट मुद्रिका और वस्त्र आभूषण उतार लिये। सबको अपनी माता सीता के पास ले गये।

351. सीता ने सबको पहचान लिया। वह सहम गईं। इसी बीच बाल्मीकि अपने आश्रम में आ गये।

इति बीच मुनिवर सदन आये सियहि अति विनती करी ॥
हनुमान भालुहिं छोड़ि वेगहिं त्याग बहु समझायऊ ॥
रिपुदमन लछिमन सहित भरतहिं राम समर सुवायऊ ॥
सुत कीन्ह कर्म कलंक कुल महँ मोहिं बिधि विधवा करी ॥
तजि सोच चन्दन अगर आनहु जाउ पिय संग अब जरी ॥
मुनि धीर जानकि देह लव कुश संग लै सादर चले ॥
रण देखि बालक चरित देखत बिहँसि मन प्रमुदित भले ॥
रथ देखि हय पहिचान प्रभु कहँ जाय मुनि आगे भये ॥
उठि बैठु कौशलनाथ आरत तनय तब आगे छये ॥

सुनि मुनिवर वर बैन, जागे रघुपति भय हरन।
बिहँसि उघारे नैन, लीन्हें हृदय लगाय मुनि ॥

352. बाल्मीकि ने सीता का सब वृत्तान्त सुनाकर दोनों पुत्रों को रामचन्द्र के सुपुर्द किया। अमृत से सबको जिला दिया। रामचन्द्र ने लक्ष्मण द्वारा सीता के पास गुप्त हो जाने का संदेशा भेजा। रामचन्द्र अपने भाइयों, पुत्रों और सब सेना सहित वापस अयोध्या में आ गये और कुछ दिन राज्य करके प्राण त्याग दिये और अपने लोक को चले गये।

अन्तरी भेद

353. त्रिकुटी का स्थान फतह कर लेने पर जब अभ्यासी अपने सद्गुणों सहित मन के घाट पर उतर आता है और कुछ समय तक इस संसार की कार्रवाई कर लेता है तो ऊपर का सब आनन्द साधारण सा होकर उसमें आगे चलने की चाह व अधिकार उत्पन्न होता है। तब इष्ट अभ्यासी से फिर अलग होने का प्रबंध करता है।

354. अपने इष्ट को अलग करने के लिए अभ्यासी आप अपनी मर्जी से तैयार हो जाता है। अलग होने के संयोग सब इष्ट मिलाता है। इष्ट को भविष्य का ज्ञान होता है। इसलिये वह अभ्यासी से पहले ही उससे किसी समय अलग होने का इकरार करा लेता है ताकि उस समय उनके निजी सम्बन्ध में कोई फर्क न आने पावे। यह सीता का रामचन्द्र से बनवास के समय किसी मौके पर बन में आकर रहने का वरदान ले लेना है।

355. यह आलमे-असबाब यानी **Cause and Effect**

सबब और नतीजे का देश है। इस देश में बिना सबब के नतीजा नहीं निकलता है। किसी कारण से कोई कार्य होता है। बिना कारण के कोई काज नहीं होता है। इसलिये इष्ट को जब अभ्यासी के परमार्थी लाभ के लिए कोई काम करना होता है तो उसका कारण भी वैसा ही पैदा कर देता है ताकि अभ्यासी के सांसारिक जीवन में किसी प्रकार की गड़बड़ न हो बल्कि लोग उसे आदर्श समझ कर उसकी महिमा करें। यह धोबी का रामचन्द्र पर कटाक्ष करके धोबिन को घर से निकाल देने का कारण उत्पन्न होना है।

356. बुद्धि और अहंकार तो फिर भी यही चाहते हैं कि इष्ट अलग न हो, परन्तु अभ्यासी अपने परमार्थी लाभ को निगाह में रखकर जान बूझकर होशियारी के साथ इष्ट को अपने से अलग कर देता है। यह शत्रुघ्न (बुद्धि) और भरत (अहंकार) का सीता को वन में छोड़ आने के लिए बहाना करना और लक्ष्मण (चित्त) का इस काम के लिए तैयार होना है।

357. त्रिकुटी के ऊपर सुन्न है। यह ब्रह्म की सुषुप्ति अवस्था है। इसी को पार-ब्रह्म, अक्षर, नेति अथवा अव्याकृत कहते हैं। इस स्थान के बासी 'हंस' कहलाते हैं जिनके अलग अलग दीप अथवा लोक हैं। इन्हीं लोकों में एक राम लोक अथवा अजुध्या है जहाँ से रामचन्द्र का अवतार हुआ।

358. इस स्थान पर मन और माया का बहुत ही सूक्ष्म, बारीक और झीना रूप है, जो मन का अभ्यास करने वालों

को, जोगेश्वरों को नजर नहीं आया और इसलिये इसी को शुद्ध चैतन्य समझकर इसमें लय हो गये। जिस तरह नमक पानी में घुल जाता है, इस तरह गुम हो गये। केवल सन्तों ने यह भेद दिया है कि इसमें भी सूक्ष्म मन और माया मौजूद हैं और निर्मल चैतन्य देश, दयाल देश, सत्तदेश, इसके परे, पार और ऊपर है।

359. यही स्थान यानी सुन्न, ब्रह्म का निज देश तथा ब्रह्मावर्त वन है जहाँ अभ्यासी का इष्ट उससे अलग होकर पहुँचता है। सीता का बाल्मीकि ऋषि के साथ उनके आश्रम में ठहरना इसी से मतलब रखता है। बाल्मीकि ऋषि का आश्रम ही रामलोक है। राम की गति अथवा पहुँच इस स्थान तक है, इसलिये इसको रामलोक कहते हैं, वैसे इस लोक का धनी बालमीक है। बालमीक का मतलब 'बालम+इक' अर्थात् 'एक प्रीतम' है। इस स्थान की कलाओं में से एक कला यहाँ अवतार लेकर आई और राम कहलाई।

एक राम दशरथ का बेटा।
एक राम घट घट में पैठा ॥
एक राम का सकल पसारा।
एक राम इन सबसे न्यारा ॥

360. त्रिकुटी में पहुंच कर मन सन्तुष्ट जरूर हो जाता है तथा जड़ और चैतन्य की प्रथम ग्रन्थि जो इस स्थान पर लगती है, उसके खुल जाने के कारण वह चैतन्य इष्ट को अपनी मर्जी से अलग करने के लिए भी तैयार हो जाता है,

परन्तु उसका मूल अथवा बीज रूप सुन्न यानी रामलोक में रहने के कारण, वह चैतन्य इष्ट के साथ रामलोक तक जाता है। यह सीता का गर्भवती होकर बालमीक आश्रम में जाना है।

361. रामलोक में पहुँच कर इसी बीज रूप मन से दो वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं, अनुराग और बैराग।

362. नीचे की रचना के किसी विषय भोग में किसी प्रकार का राग अथवा खुशी का उत्पन्न न होना, बैराग है और इष्ट के चरनों में गहरा प्यार उत्पन्न होना, अनुराग है। बैराग और अनुराग का सदा जोड़ा रहता है। जोड़ा क्या है, वास्तव में एक चीज के ही दो रूप हैं। अनुराग एक ओर होने से दूसरी ओर से बैराग आप ही आ जाता है। यह बालमीक आश्रम में पहुँच कर सीता के गर्भ से लव और कुश का पैदा होना है।

दुइ सुत सुन्दर सीता जाये।
लव कुश बेद पुरानन्हि गाये ॥

— उत्तर काण्ड

363. सुन्दर यानी सुन्न+दर यानी सुन्न स्थान में सीता ने लव और कुश दो पुत्र उत्पन्न किये।

364. लव अनुराग और कुश बैराग है। कुश एक तुच्छ और नीरस घास होती है। सन्तों ने बैराग को तुच्छ बतलाया है। खाली त्याग और बैराग नीरस और फीके हैं। अनुराग

सहित बैराग यानी इष्ट के प्रेम और अनुराग के प्रताप से जो बैराग उत्पन्न हो, उसकी महिमा सन्तों ने की है।

365. घर बार और जोरू लड़के बच्चे छोड़ देने का नाम त्याग और बैराग नहीं है और न इस त्याग व बैराग से परमार्थ मिलेगा। अगर घर बार छोड़ने से ही परमार्थ मिलता होता तो मौत के वक्त तो सब छूट जाता है। मौत से परमार्थ और मालिक नहीं मिल जाता। मालिक के सत्य अनुराग के बिना कोई त्याग और बैराग काम नहीं देगा। जब तक इस दुनिया का शौक और जौक और चाह व आसा मौजूद है, तब तक त्याग और बैराग का कोई ऐतबार नहीं है। मालिक के चरनों में राग और अनुराग पैदा होकर जो बैराग आवेगा, वह फलदायक होगा।

366. असल में इस देश की चाह और आसा त्याग करना है। जब तक इस देश की आसा मौजूद है, बार-बार जन्मेगा और मरेगा। जो आसा और चाह अन्तर में होती है, उसी के ब-मूजिब बासा मिलता है, यानी जीव उस चोले में जाता है जिसमें कि वह आसा पूर्ण हो सकती है। कहने का मुद्दआ यह कि चाह की जड़ काटनी चाहिये।

367. यह दोनों अंग अथवा वृत्तियाँ चैतन्य इष्ट व स्थान के धनी का संग पाकर धीरे-धीरे महा बलवान हो जाती हैं और नीचे की कोई शक्ति इनको नहीं जीत सकती। यह लव और कुश का बालमीक आश्रम में पलना है।

368. अब अभ्यासी मन के घाट से फिर त्रिकुटी के

स्थान पर पहुँच जाता है। यह रामचन्द्र को रावण के साथ युद्ध करने का स्वप्न आना है।

369. त्रिकुटी का स्थान फ तह कर लेने पर अभ्यासी के सब कर्म खत्म हो जाते हैं और उसमें बहुत से सद्गुण आ जाते हैं। परन्तु मन की सूक्ष्म चंचलता का दोष अभी तक उसमें बाकी रहता है। अब इष्ट की प्रेरणा से अभ्यासी अपने इस दोष को दूर करके स्थिर अवस्था प्राप्त करने के लिए तैयार हो जाता है। परन्तु इस स्थिर अवस्था के प्राप्त करने से पहले वह इस चंचलता द्वारा अपनी विजय का ढिंढोरा तीन लोक में फिरा देता है। बुद्धि उसकी रक्षा के लिए साथ-साथ जाती है ताकि उसको कोई रोक न सके। यह वशिष्ठजी की सलाह से रामचन्द्र का अश्मवेध यज्ञ करने के लिए तैयार होना, घोड़े को सब भूमण्डल में फिरने के लिए भेजना और शत्रुघ्न (बुद्धि) का सेना सहित उसकी रक्षा के लिए भेजा जाना है।

370. मन की चंचलता का अंग ही घोड़ा है। मन की चंचलता का नाश होना, अश्वमेध यज्ञ का पूरा होना है।

371. जब यह घोड़ा यानी मन की चंचलता, बुद्धि सहित तीन लोक में सब जगह घूमकर वापस त्रिकुटी पर आती है तो अपने स्वभाव के अनुसार इस स्थान से आगे भी निकल जाती है और वहाँ भी अभ्यासी की विजय का ढिंढोरा पीटना चाहती है। जब यह चंचलता और बुद्धि आदि रामलोक के समीप पहुँचते हैं तो वहां अनुराग और बैराग इस चंचलता

को झट पकड़ लेते हैं और जो कोई उसको छुड़ाने के लिए आता है उसको अपनी शक्ति से मुर्दा कर देते हैं। यह शत्रुघ्न, लक्ष्मण और भरत का युद्ध में मारा जाना है।

372. जैसा कि ऊपर कहा गया है, बिना अनुराग के बैराग फीका है। यही कारण है कि कुश, लक्ष्मण द्वारा मूर्छित हो जाता है। जब अनुराग यानी लव को सूचना मिलती है तो वह दौड़ता हुआ आता है। बैराग यानी कुश की मूर्छा दूर हो जाती है और दोनों मिलकर यानी अनुराग और बैराग अथवा लव और कुश, सबका नाश कर देते हैं यहाँ तक कि मन यानी राम को भी मूर्छित कर देते हैं। इस प्रकार एक एक अंग करके त्रिकुटी के मन का यहाँ नाश हो जाता है।

373. जब सूक्ष्म मन की वृत्तियाँ स्थूल मन का नाश करती हैं तो इस स्थूल मन का स्थूल ज्ञान और प्रेम आदि वृत्तियाँ अपने साथ ऊपर ले जाती हैं और चैतन्य इष्ट को भेंट कर देती हैं।

374. दीनता और गम्भीरता को नाश करने की आवश्यकता नहीं, उनको तो वैसे ही चैतन्य इष्ट के पास पहुँचा देने से उनका सूक्ष्म अंग निकल आता है। यह लव और कुश का रामचन्द्र को मूर्छित करके उनके मुकुट मुद्रिका आदि को सीता के पास ले जाना है। हनुमान और जामवन्त को सिर्फ पकड़कर ही सीता के पास लाते हैं।

375. अब चैतन्य इष्ट व स्थान के धनी की कृपा से

अमृत पाकर अभ्यासी के सब अंग फिर जीवित हो जाते हैं अर्थात् अभ्यासी नीचे का स्थूल रूप छोड़कर सूक्ष्म रूप धारण कर लेता है और अब अनुराग और बैराग अभ्यासी के आधीन हो जाते हैं। यह मन के अभ्यास का अन्तिम स्थान है। अब इसका चैतन्य इष्ट भी सदैव के लिए गुप्त हो जाता है यानी इसका और इष्ट का रूप एक हो जाता है। यह बालमीक ऋषि का अमृत छिड़क कर रामचन्द्र के सब भाइयों व सेना को जिन्दा करना, लव और कुश को रामचन्द्र को सौंप देना और सीता का विमान में बैठकर गुप्त हो जाना है।

376. इस गति को पाकर अभ्यासी अपने सब अंगों सहित फिर मन के घाट पर उतर आता है और अधिकारी जीवों को अपने साथ लगाकर और उनका उद्धार करके फिर अपने लोक को वापस चला जाता है। यह रामचन्द्र का अपने भाइयों व सेना सहित अयोध्या में लौट आना है और अधिकारी जीवों को उपदेश करके और उनका उद्धार करके वापस रामलोक में चला जाना है।

377. इस जगह रामायण का गूढ़ भेद समाप्त हुआ। सिर्फ उतना ही अन्तरी भेद कहा गया है जितना कि रामायण से सम्बन्ध रखता है। सच्चे मालिक के धुर धाम तक पहुँचने के लिए रामलोक से आगे और कई स्थान बीच में पड़ते हैं। वह मार्ग ही दूसरा है। वह सन्त शरण प्राप्त हो तो मिल सकता है।



अध्याय 11

रामायण के कुछ अन्तिम छन्दों की सन्तदासजी द्वारा व्याख्या

378. सन्तदासजी ने रामायण का आन्तरिक भेद, हिन्दी में ''रामायण का गूढ़ रहस्य'' नाम से सन् 1952 ईसवी में लिखा था। उसके बाद के प्रकाशनों में उन्होंने समय समय पर रामायण के कई दृष्टांतों व छन्दों की व्याख्या की।

379. अपने निजधाम सिधारने से पहले सन्तदासजी ने सन् 1982 ईसवी में प्रतीत की स्मृतियाँ, भाग 6 पुस्तक हिन्दी में प्रकाशित की थी। इस पुस्तक में उन्होंने रामायण के अंतिम अंश के कुछ विशेष छन्दों की व्याख्या की थी। कुछ ऐसी व्याख्याएँ नीचे दी जा रही हैं :—

380. गिरि सुमेरु उत्तर दिसि दूरी।
नील सैल एक सुन्दर भूरी ॥
तासु कनकमय सिखर सुहाये।
चारि चारु मोरे मन भाये ॥

—उत्तर काण्ड

अर्थ—सुमेर पर्वत के उत्तर दिशा में कुछ दूर पर एक बड़ा ही सुंदर नील पर्वत है। उसके सोने से सुहावने सुन्दर चार शिखर हैं जो मुझे प्रिय लगे।

भावार्थ – मेरु, सुमेरु और कैलाश, इन तीन शिखरों का स्थान त्रिकुटी है। तुलसीदासजी ने केवल सुमेरु लिखा है। कनक मानी सोना। यह ब्रह्म की हिरण्यगर्भ या स्वर्ण पूर्ण अवस्था है। हिरण्य मानी सोना। नील पर्वत का मतलब बंकनाल से है। पूर्व मानी पहले। उत्तर मानी पश्चात् या बाद में। त्रिकुटी की रचना पहले हुई। उसके बाद बंकनाल की। इसलिये सुमेर पर्वत यानी त्रिकुटी के उत्तर में नील पर्वत कहा है।

381. तिन्ह पर एक एक बिटप बिसाला।
बट पीपर पाकरी रसाला ॥

– उत्तर काण्ड

अर्थ – उन चारों शिखरों पर क्रमशः बड़, पीपल, पाकर और आम का एक एक सुन्दर वृक्ष है।

भावार्थ – **बड़** – शिवलोक का प्रतीक है।
पीपल – विष्णुलोक का प्रतीक है।
पाकर – ब्रह्मा के लोक का प्रतीक है।
आम – सहसदल कँवल का प्रतीक है।

382. त्रिकुटी, सहसदल कँवल, विष्णु लोक, ब्रह्मा का लोक और शिव लोक का इशारे में वर्णन करके तुलसीदासजी अब सुन्न और मानसरोवर का जिक्र करते हैं।

सैलोपरि सर सुन्दर सोहा।
मनि सोपान देखि मन मोहा ॥

– उत्तर काण्ड

अर्थ – पर्वत के ऊपर एक सुहावना तालाब है जिसमें मणियों की सीढ़ियां लगी हैं। उसको देखकर मेरा मन मोहित हो गया।

भावार्थ पर्वत यानी सुमेरु पर्वत के ऊपर यानी त्रिकुटी के ऊपर सुन्न में मानसरोवर है।

383. सीतल अमल मधुर जल जलज बिपुल बहुरंग।
कूजत कलरव हंसगन गुंजत मंजुल भृंग ॥

— उत्तर काण्ड

अर्थ —उसका ठण्डा स्वच्छ और मीठा जल है। उसमें बहुत रंगों के कमल खिले हैं। उसमें हंस मीठे शब्दों में बोलते और मनोहर भँवर गूँजते हैं।

भावार्थ — तालाबे-जुलाली व हौजे-कौसरी पुर-अज -आबेहयात यानी मानसरोवर जा-ब-जा मौजूद है। हर एक जगह झिरने आबे-हयात के जारी हैं यानी अमी सरोवर भरे हैं। अमृत की धारा चल रही है। वहाँ की रूहों या सुरतों को हंस या हंस मण्डली करके बयान किया है।

(राधास्वामी साहब : सार वचन छन्द बन्द; हिदायतनामा)

384. तेहि गिरि रुचिर बसइ खग सोई।
तासु नास कल पांत न होई ॥
मायाकृत गुन दोष अनेका।
मोह मनोज आदि अविवेका ॥
रहे ब्यापि समस्त जग माहीं।
तेहि गिरि निकट कबहुँ नहिं जाहीं ॥

— उत्तर काण्ड

अर्थ उस मनोहर पर्वत पर वह पक्षी रहता है जिसका कल्पान्त में भी नाश नहीं होता। माया के किये हुए अनेक गुण, दोष, मोह, कामदेव और अविचार आदि सारे संसार में व्याप्त हो रहे हैं, पर उस पर्वत के पास वे कभी नहीं जाते।

भावार्थ पक्षी वही सुर्त पक्षी। वह सुन्न में जो दरख्त ना-पैद है उसकी शाख का बैठने वाला है।

मुर्ग शाखे दरख़्त लाहूतेम

(बचन बाबूजी महाराज, चौथा भाग, पैरा 441)

सुन्न सूरत का स्थान है। उसको वहां तूती कहा है। त्रिकुटी मन का थाना है, उसको वहां तोता कहा है।

385. भँवरगुफा में हंस मीठे शब्दों से बोलते और मनोहर भँवर गूँजते हैं। भँवर से मतलब भँवरगुफा लगाया जाय तो ठीक ही है क्योंकि रामायण का इष्ट असल में सोहंग राम है यानी भँवरगुफा का सोहं है।

386. तुलसीदासजी सन्त थे। आइन्दा जन्म में तुलसी साहब के रूप में प्रकट हुए। सन्त कभी ब्रह्माण्ड का इष्ट नहीं दृढ़ावेंगे। उनका इष्ट निर्मल चैतन्य देश, दयाल देश, सत्तदेश है, भँवरगुफा सत्तदेश का सबसे निचला भाग है। वहाँ के धनी सोहंग पुरुष हैं। इसलिये राम से मतलब सोहं पुरुष से है। देखिये श्री सन्तदास माहेश्वरी की ''जपजी'' पेज 145 पर सबसे नीचे की लाइन में स्वामीजी महाराज ने राम को सोहं राम कहा है।

387. घट रामायण दूसरा भाग में तुलसी साहब ने कहा है :—

जग अबूझ कारन हम गाई।
जो करै इष्ट राम से भाई ॥

जो हम न्यारा भेद सुनावें।
तो जग माहिं रहन नहिं पावे ॥
ता से न्यारा भेद न भाखा।
सन्त भेद हम गुप्तै राखा ॥
भेद ग्रन्थ में गुप्त लखावा।
पुनि काहू की दृष्टि न आवा ॥
हमने भाखा अगम अलेखा।
जाकौ मरम न जानै भेखा ॥
हम सतपुरुष अलख लखवावा।
वेद न भेद भेष नहिं पावा ॥

388.

सत पंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरहिं।
दारुन अविद्या पंच जनित विकार श्रीरघुपति हरिहं ॥

— उत्तर काण्ड

अर्थ—इन पाँच सात अर्थात् थोड़ी सी मनोहर चौपाइयों को जानकर, समझकर जो मनुष्य हृदय में धारण करते हैं, उनके घोर अविद्या से उत्पन्न विकारों को रघुनाथ जी हरते हैं।

389. इस 'सात पाँच' का अर्थ अनेक लोग अनेक तरह से लगाते हैं। कोई 75, कोई 105, कोई 500 और कोई 5100 इसका अर्थ लगाते हैं।

390. सत मानी सात मुकाम, यथा—(1) सहसदल कँवल, (2) त्रिकुटी, (3) सुन्न, (4) भँवरगुफा, (5) सत्तलोक, (6) अलख लोक और (7) अगम लोक।

391. पंच मानी पाँच शब्द, यथा (1) सहसदल कँवल का शब्द निरंजन, (2) त्रिकुटी का ओं, (3) सुन्न का रारं, (4) भँवरगुफा का सोहं और (5) सत्तलोक का सत्तनाम।

392. इन 'सात पाँच' का भेद सन्त सतगुरु से लेकर और उनका इष्ट धारण करके जो कोई अभ्यास करेगा उसके अविद्या से उत्पन्न अन्धकार और विकार दूर हो जावेंगे।

393. यह छन्द रामायण के अन्त में आया है। इसमें तुलसीदासजी ने अगम लोक तक का भेद दिया है मगर इस ढंग से कोई समझ नहीं सकता। इसलिये कहा है –

बाल का आदि उत्तर का अन्त।
जो समझे सो पूरा सन्त ॥

394. बाल काण्ड के शुरू के हिस्से में और उत्तर काण्ड के अन्त वाले हिस्से में अन्तर का भेद मौजूद है मगर उसे सिवा सन्त के कोई नहीं समझ सकता।

(प्रतीत की स्मृतियाँ, भाग 6, गुरुसाखी 311 से 412)



अध्याय 12

परम सन्त तुलसी साहब के ग्रन्थ घट रामायण पर किये गये आक्षेप

395. "माधुरी" मासिक पत्रिका, फरवरी सन् 1942, में "घट रामायण की अप्रामाणिकता" नाम से एक लेख छपा था जिसके लेखक श्री रामदत्त भारद्वाज एम.ए.एल.एल.बी. नाम के कोई व्यक्ति थे। उसके अनावश्यक अंशों को छोड़ कर बाकी नीचे दिया जाता है।

"घट रामायण" नामक पुस्तक हाथरस वाले तुलसीसाहब की कृति बताई जाती है। इसका सर्वप्रथम प्रकाशन मुंशी देवीप्रसाद साहब उर्फ देवी साहब ने, तत्पश्चात् 'अधम' नाम से स्व. राय बहादुर बालेश्वर प्रसाद महोदय ने कतिपय प्रतियों के आधार पर उसे संशोधित कर बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से सन् 1911 ई. में प्रकाशित किया। तब से इसके तीन संस्करण और हो चुके हैं। मेरे सामने 1932 का चौथा संस्करण है।

उक्त संस्करण में तुलसी साहब का जीवन चरित्र भी सम्मिलित है। इससे पता चलता है, इनके पिता ने इनका नाम श्यामराव रक्खा था, इनके छोटे भाई थे पेशवा बाजीराव द्वितीय और इनकी स्त्री का नाम था लक्ष्मीबाई। यद्यपि इनके पिता इन्हें ही गद्दी देना चाहते थे, तथापि स्वभावतः विरक्त होने के कारण गद्दी पर बैठने के एक दिन पहले ही यह घर छोड़कर भाग गये। इनकी बड़ी खोज हुई, पर जब कहीं पता न लगा तो अति उदास व निराश होकर पिता ने राज्य को त्याग किया

और अपने कुंअर बाजीराव को गद्दी पर बैठाया। तुलसी साहब कितने ही बरस तक जंगलों, पहाड़ों और दूर-दूर शहरों में घूमे और हजारों आदमियों को उपदेश देकर सत्य मार्ग में लगाया और कई बरस पीछे जिला अलीगढ़ के हाथरस शहर में आकर पक्के तौर पर ठहरे और वहाँ अपना सत्संग जारी किया। घर से निकलने के बयालीस बरस पीछे वह अपने छोटे भाई राजा बाजीराव से बिठूर (जिला कानपुर) में मिले थे, जहाँ कि बाजीराव गद्दी से उतारे जाने पर सम्वत् 1876 में भेज दिये गये थे। तुलसी साहब के उत्पन्न होने का सम्वत् 'सुरत विलास' में नहीं दिया गया है, पर यह लिखा है कि उन्होंने अनुमान अस्सी बरस की अवस्था में जेठ सुदी 2 विक्रमी सम्वत् 1899 या 1900 में चोला छोड़ा। इससे उनके देह धारण करने का समय सम्वत 1820 के लगभग ठहरता है। हाथरस में उनकी समाधि मौजूद है और बहुत से लोग वहाँ दर्शन को जाते हैं और साल में एक बार भारी मेला लगता है। डॉक्टर रामकुमार वर्मा लिखते हैं "इनका जन्म सम्वत् 1845 में माना जाता है। अस्तु! एक बात अधिक विचारणीय है। इतिहासकारों की कथा कुछ भिन्न है। विसेंट स्मिथ ने सातों पेशवाओं की वंशावली में श्यामराव अथवा तुलसी साहब का उल्लेख नहीं किया है। इस वंशावली के अनुसार बाजीराव द्वितीय के बड़े भाई थे अमृतराव, किंतु वे दत्तक भाई ये। पूना युद्ध (1802) के पश्चात् बाजीराव द्वितीय भाग गये थे और जब जसवन्तराव होलकर ने उन्हें गद्दी पर पुनः बैठाने के लिए बुलाया और वह न आये, तब दत्तक भाई अमृतराव को ही गद्दी पर बैठा दिया। किन्तु आर्थर वैलेजली ने होलकर के आदमी अमृतराव को हटाकर बाजीराव द्वितीय को गद्दी पर बैठाया। अमृतराव को मुकाबला करने की इच्छा न हुई और उसे पेन्शन लेकर बनारस रहना ही सन्तोषप्रद प्रतीत हुआ। इस वृतान्त से पता चलता है कि बाजीराव द्वितीय का श्यामराव अथवा तुलसी साहब नामक कोई बड़ा भाई नहीं था और न वह स्वेच्छा से ही विरक्त हुआ। सम्भव है, श्याम राव नामक

कोई व्यक्ति बाजीराव द्वितीय का रिश्तेदार हो। यदि ऐसी बात थी तो बाजीराव के पिता रघुनाथराव (राघोबा) को क्या आवश्यकता थी कि वह अपने दो और पुत्रों को छोड़ किसी कुटुम्बी या अन्य सम्बन्धी को गद्दी पर बैठाता और गद्दी पर बैठाने का उसे अधिकार ही क्या था; क्योंकि सई बई की सन्धि (1875) के अनुसार तो उसे पेन्शन लेनी पड़ी थी और बाजीराव को भी उसने गद्दी पर नहीं बैठाया। अस्तु!"

'घट रामायण' कब बनी, इस विषय में इसी पुस्तक में कई स्थल पर आभ्यन्तर साक्ष्य के अनुसार इसका प्रारम्भ भाद्रपद शुक्ला एकादशी मंगल सम्वत् 1618 को हुआ। तुसली साहब लिखते हैं —

सम्वत सौलासै अट्ठारा, उठी मौज ग्रन्थ कियौ सारा।
भादौ सुदी मंगल एकादसी, आरम्भ किया प्रथम मन भारा ॥

प्रश्न उठता है कि यदि यह पुस्तक तुलसी साहब ने गोस्वामी तुलसीदास के रूप में 1618 सम्वत् में लिखी तो गोस्वामीजी की अन्य पुस्तकों की भाँति इसका पता लोगों को क्यों न था? इस शंका का समाधान भी स्वयं तुलसी साहब ने इसी ग्रन्थ में करने का प्रयत्न किया है। आपका कथन है कि आपने घट रामायन 1618 में बना तो ली थी, किन्तु काशी में लोगों ने इसका बड़ा विरोध किया। जब इसका बड़ा शोर मचा तो स्वयं गोस्वामीजी ने इसको गुप्त कर दिया और तुलसी साहब का जन्म धारण कर पुनः प्रकट कर दिया।

जग अबूझ कारन हम गाई, जो करै इष्ट राम से भाई।
जो हम न्यारा भेद सुनावैं, तो जग माहिं रहन नहिं पावैं।
तासे न्यारा भेद न भाखा, सन्त भेद हम गुप्तै राखा।
भेद ग्रन्थ में गुप्त लखावा, पुनि काहू की दृष्टि न आवा।

— — — —

घट रामायन सुनि भौ सोरा, कासी नगर भया घनघोरा।
पंथ भेष जग लड़न खखारा, घट रामायन परी पुकारा।

असमुन सोर भयो जग माही, सहर मुलक गंवई गाँई।
भेष पंथ में अचरज भइया, दरसन भेष लखन को अइया।

— — — —

कासी में चोल उड़ाई, तब हमने गुप्त छिपाई।

— — — —

पण्डित हिरदे से भयो झगरा, और भेष जग कासी सगरा।
तब तुलसी मन कियो बिचारा, घट रामायन गुप्त करि डारा।
सुनि कासी में अचरज कीन्हा, सारे नगर में भयो अलीना।
पण्डित जग्त जैन और तुरका, भयौ झगरा आई कासी पुर का।
पण्डित भेष जग्त मिली सारा, घट रामायन परी पुकारा।
जो कुछ झगरा रीति जस भाँती, जस जस भया दिवस अरु राती।
तासे ग्रन्थ गुप्त हम कीन्हा, घट रामायन चलन न दीन्हा।

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि घट रामायन ने बड़ी खलबली मचा दी और दिन रात झगड़ा होने की आशंका रहती थी। अतएव गोस्वामीजी ने उसे गुप्त कर दिया। किन्तु यह बात विचारणीय है कि घट रामायन का नाम क्या शहर, क्या गया बीता ग्राम सभी जगह फैल गया था और लोग गोस्वामीजी के दर्शन के लिए आते थे, जैसा कि पृष्ठ 386 के उद्धरण से स्पष्ट है। प्रसिद्धि तो अच्छी बात थी, पुस्तक तो विचार-प्रसार की दृष्टि से ही लिखी जाती हैं। यदि घट रामायन के कारण गोस्वामीजी के पास लोग दूर-दूर से दर्शन करने वास्तव में आते थे, तो वे काशी छोड़कर अन्यत्र जा सकते थे। साधु के लिए क्या काशी, क्या मथुरा, क्या प्रयाग, क्या मगहर, सभी बराबर हैं। गोस्वामी जी काशी के शोर से इतने डर गये कि उन्हें घट रामायन गुप्त कर देनी पड़ी। कबीर का भी बड़ा विरोध हो चुका था, किन्तु वह महापुरुष तो अड़ा ही रहा। गोस्वामीजी इतने भीरु निकले कि भक्तों के दर्शनार्थ आने पर भी काशी वालों के डर से घट रामायण उन्हें गुप्त करनी पड़ी।

बात यहीं समाप्त नहीं होती। यहाँ तक की गनीमत थी। उन्होंने एक जघन्य काम और किया उन्होंने घट रामायण के पश्चात् 1631 में ऐसा रामचरित्र बनाया, जिससे सारा संसार भ्रम में पड़ जाए। वाह रे सन्त, तू संसार को ज्ञान-ज्योति देने आता है अथवा उसे भ्रमांधकार में धक्का देने? ठीक है, गोस्वामीजी ने झगड़ालू काशी वालों से खूब बदला लिया! किंतु बाहर वाले भक्तों ने क्या बिगाड़ा था कि उन्हें रामचरित्र मानस रचकर भ्रम में डाल दिया। तुसली साहब के वचन हैं —

तासे ताहि गुप्त हम कीन्हा, घट रामायन चलन न दीन्हा।
यासे सन्त मते की रीती, जग्त अजान न जाने रीती।
सम्मत सौलासै इकतीसा, रामचरित्र कीन्ह पद ईसा।
ईस कर्म औतारी भावा, कर्म भाव सब जगहि सुनावा।
जग में झगरा जाना भाई, रावन रामचरित्र बनाई।
पण्डित भेष जग्त सब झारी, रामायन सुनि भये सुखारी।
अन्धा अन्धे बिधि समझावा, घट रामायन गुप्त करावा।

— — — —

रावन राम कीन्ह सम्वादा, तब कासी में चली अगाधा।
तुलसी मता कोइ नहिं चीन्हा, गुप्त भेद सब जग से कीन्हा।
ये भौसागर जगत असारा, तुलसी मता मते की लारा।
जग में वस्तु कोई नहिं चीन्हा, जासे ग्रन्थ गुप्त कर दीन्हा।

गोस्वामी तुलसीदास ने तो और भी अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, जिन सबमें उनका दार्शनिक सिद्धान्त प्रायः एक सा ही है और राम में उनकी अटल भक्ति सभी में लक्षित होती है।

यदि वास्तव में गोस्वामीजी ने घट रामायन नाम की कोई पुस्तक लिखी भी, तो क्या वह यही घट रामायन है? इस प्रश्न का कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिलता। पुस्तक में कहीं कहीं तो वर्तमानकाल की क्रियाओं का प्रयोग हुआ है और कहीं कहीं भूतकाल की। भूतकाल

की क्रियाओं को देखकर यह सन्देह होता है कि गोस्वामीजी ने घट रामायन लिखी थी और तुलसी साहब ने कुछ उनका और कुछ अपना मिला दिया हो। कम से कम भाषा का ही परिवर्तन हो गया हो।

कभी कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसी साहब गोस्वामीजी की घट रामायन नहीं कह रहे हैं, किन्तु उसका सार मात्र कह रहे हैं—

काल करै जिव हानि, तुलसीदास तत सम रह्यौ।
घट रामायन सार, मथि काया बिच घट कह्यौ।

— — — —

घट रामायन सार, यह घट माहिं घटाइया।
घट का मथन विचार, भिन्न भिन्न कर डारिया।

— — — —

रामायन घट सार, सुरति सब्द से लखि परै।
गगन कंज कर बास, ऊपर चढ़ि जिन देखिया।

— — — —

घट रामायन सार, ये अगार गति यों कहीं।
बूझे बूझनहार, बिन सतगुरु पावै नहीं।

यदि यह पुस्तक वास्तव में गोस्वामीजी की घट रामायन नामक किसी कृति का सार है तो इसका नाम 'घट रामायन सार' होना चाहिए था। 'घट रामायन' नाम से तो भ्रम फैलता है, क्योंकि जो कृति वास्तव में गोस्वामीजी की नहीं है, वह उनकी बताई जाती है। यह गोस्वामीजी के विचारों का सार है भी या नहीं—यह तो पाठक सम्पूर्ण लेख को पढ़कर ही अनुमान और गोस्वामीजी के ग्रन्थों का मनन और मंथन कर ही निश्चय कर सकते हैं।

'घट रामायन' का विषय क्या है? इस पुस्तक में भेद पिण्ड और ब्रह्माण्ड, नीर भेद, गगन भेद, सूक्ष्म त्रिकुटी भेद, नाल भेद, सुन्नि भेद,

जोग भेद, सिद्धों के नाम, प्रकृति भेद आदि कई प्रकरण है। इसमें कुछ विरोधी पुरुषों के शुभ नाम और विवाद सम्वाद भी सम्मिलित हैं, जिन्होंने सन्त मत स्वीकार कर लिया था, यथा तकी मियाँ मानगिरि संन्यासी, फूलदास कबीर पंथी, गुसाईं प्रियेलाल, पलकराम नानकपंथी आदि। सांप्रदायिक संकीर्णता और अन्धविश्वास का उल्लेख कर मैं पाठकों का समय नहीं लेना चाहता। अनेक विचित्र बातें पुस्तक में अनेक स्थलों पर भरी हैं, किंतु पृष्ठ 44 से 59 तक उनकी विशेष चर्चा की गई है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने तुलसी साहब को आवा पन्थ का प्रचारक बताया है। तुलसी साहब ने 'साध' शब्द का अनेक बार प्रयोग किया है। और एक स्थल पर गोस्वामी तुलसीदास के लिए काशी के पण्डितों से कहलाया है 'तुम्हरा साध मता तब जानी' पृष्ठ 127। इनके दार्शनिक विचार का सार उस सम्वाद से अच्छा विदित होता है, जो मानगिरि संन्यासी के साथ हुआ था। उसका एक अंश इस प्रकार है—

स्वामीजी— तीन लोक बैराट नाश हो कहाँ समाते हैं?

"ब्रह्म निराकार जोति तीन लोक बैराट नाश हो सुन्न में समाता है। सुन्न नाश होकर महासुन्न में समाता है। महासुन्न के परे सत्तलोक है जहाँ सत्त साहब रहता है। यहाँ प्रलय और महाप्रलय की गम नहीं।

"सत्त साहब की लहर से महासुन्न होता है, महासुन्न से सुन्न, सुन्न से शब्द, शब्द से ब्रह्म, ब्रह्म से जोति निराकार, निराकार जोति से मन, मन से जक्त, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, वेद, सब उत्पन्न होते हैं।"

अगले पृष्ठ पर इसी विषय को स्पष्ट करते हुए तुलसी साहब कहते हैं—

ब्रह्मा विस्नु और महादेवा, नास भये मन मत के भेवा।
मन को नास सुनो पुनि भाई, मन नसि गया निरंजन पाई।
नास निरंजन ब्रह्म समाना, ब्रह्म जो नसा शब्द में जाना।
शब्द नास जो सुन्न समाना, सुन्न नास महासुन्न में जाना।

यहँ से उत्पत्ति परलय होई, आगे भेद न जाने कोई।
वहँ से आवे यहँ लै जावै, आगे भेद न कोई पावै।
सत्तलोक महासुन्न कहाई, तीन लोक सब सुन में जाई।
तीन लोक करता नहीं जावै, वा पद को कोई सन्त समावै।

पहले कहा था कि "महासुन्न के परे सत्तलोक है" और "सत्त साहब की लहर से महासुन्न होता है।" पीछे कहा है "सत्तलोक महासुन्न कहाई।" इनमें से कौन-सी बात ठीक है सो तो तुलसी साहब की जानें। हाँ, महाशून्य के परे सत्त की कल्पना की तुलना किसी सीमा तक शंकर की परमार्थ सत्ता अथवा काण्ट के न्यूमिनन से हो सकती है। फिर भी शंकर की सी विशद व्याख्या और तर्क का नितान्त अभाव है।

तुलसी साहब को कदाचित वेद, शास्त्र, पुराण, अवतार एवं राम कृष्ण के नाम से चिढ़ थी, जैसा कि आगे निर्देश किया जायेगा। वे मूर्ति पूजा के भी विरोध में थे और उन्होंने जैनियों पर इस विषय में इस प्रकार आक्षेप किया है।

जैनी जो जैन नैन सूझै नाई, आतम को छाँड़ि पूजे पाहन जाई

हाँ, आपने एक बड़ी गहरी बात बताई है। गुरु गरिमा तो सबने गाई है, किन्तु शिष्य-गरिमा-गान का सौभाग्य आप जैसे बिरलों को ही प्राप्त है। आप लिखते हैं –

तुलसी तू मैं जो तजै, भजै दीन गति जोई।
गुरु नवे जो शिष्य को, साध कहावे सोई ॥

ठीक भी है। पारमार्थिक दृष्टि से यह बात सोलह आने संगत है, क्योंकि परमार्थ में तो सभी असंगत बातें भी संगत है। "निस्त्रैगुण्ये पथि विचारतां को विधिः को निषेधः।" हाँ व्यवहार में गुरु का आसन सदा से ऊँचा रहा है और सदैव ऊँचा रहेगा।

पुस्तक की भाषा प्रधानतः खड़ी बोली और ब्रजभाषा है, किन्तु पंजाबी और फारसी शब्दों का मिश्रण है। मैं भाषा पर गंभीर विचार नहीं करना चाहता।

तुलसी साहब की भाषा बड़ी लचर है, कभी कभी भाव भी अस्पष्ट हो जाता है। आश्चर्य है कि यद्यपि गोस्वामीजी राजापुर में जन्मे और काशी में रहे, जैसा कि इस पुस्तक 'घट रामायन' के अन्त में लिखा है, तथापि उन्होंने इस कृति में अवधी का अभाव रहने दिया! शब्दों के तोड़-मरोड़ का तो कुछ कहना ही नहीं। कदाचित आपको संस्कृत का ज्ञान न था अथवा था तो कम, क्योंकि आपने पुस्तक भर में केवल तीन पुराने श्लोक उद्धृत किये हैं और उनमें से दो को पुनः उद्धृत किया है, वे भी अशुद्ध।

हमें तुसली साहब के संस्कृत ज्ञान का विशेष आग्रह भी नहीं है। यों उन्हें संस्कृत से तो चिढ़ थी, जैसा कि आगे विदित होगा। हाँ, आप में भाषा-विज्ञान की लटक थी। देखिए, नीचे के उद्धरणों में वृंदावन और दशरथ, लक्ष्मण, कौशल्या, कैकेयी, मंथरा, मन्दोदरी, भरत, शत्रुघ्न, आदि रामचरित मानस के पात्रों की कैसी-कैसी अश्रुत पूर्ण व्युत्पत्तियां की हैं

बिन्द से बना **बिन्द्रावन** होई, जग के माहीं रहा मसोई
बिन्द्रावन विन्द कीन्ह सोई साँचा, गुसाई गोपी के साथ वन वन नाचा

— — — —

इन्द्रजीत जीते मन ही को, सो इन्द्रजीत कहाई।
राबन ब्रह्म बसै मन दौरी, ताको **मन्दोदरी** बनाई।
मन की दौर को दूर बहावे, त्रिकुटी ब्रह्म कहाई।
दस इन्द्री रत **दसरत** कहिए, राम रमा मन जाई।
सत की सीता असत सिया को, कुमति कौसल्या बसाई।
मन थिर सुरति करै थिर कोई, सो मन मन्थ्रा कहाई।

वहाँ की बात कहौ कौन सुनाई, कर्म न थिर केकाई।
ले छै रस मन ही को भाई, लछमन वीर बड़ाई।
गौ में रूढ़ गरूड़ गिनाई, भय ले भसुण्ड भुलाई।
भय रत भरम भरत है सोई, चाह **त्रिगुन** गिनाई।
ताको नाम चतुरगुन कहिए, ये सब भेद बताई।

इन एवं कुछ नीचे लिखे उद्धरणों से स्पष्ट है कि रामचरित मानस के पात्रों और स्थानों को घट के भीतर भरने का प्रयत्न किया गया है।

हरि संग्रह दसवीं दरसाई, लछमन राम बसे जेहि माई
बाइस नाल सत अंकित होई, बन असोक सीता जहँ होई
सताइस नाल त्रिकुट पर लंका, जहँ रावन बसै ब्रह्म निसंका
कागभुसुण्ड काया के माहीं, राम रमा मुख पैठा जाई
भरत शत्रगुन लछिमन भाई, यहि घट माहिं कहेउ समझाई।
सुमिंतरा केकई कौसिल्या, ये तन भीतर घट में मिलिया।
सीता दशरथ राम कहाये, ये सब घट भीतर दरसाये।
सरजू सुरति अवध दस द्वारा, ये घट भीतर देखि निहारा।
रावन कुंभ लंकपति राई, त्रिकुटी ब्रह्म बसे तेहि माही।
रावन ब्रह्म कहा हम जोई, त्रिकुटी लंक ब्रह्म है सोई।
मन्दोदरी भभीषन भाई, इन्द्रजीत सुत त्रिकुटी माही।
ये सम्वाद कहा घट माही, रामायन घट माहिं बनाई।

— — — —

"घट में राजा है बलि बावन, घट में सीता रघुपति रावन"

इस घट के भीतर रामायण के पात्र और स्थान ही नहीं, किन्तु धरमदास और कबीर को भी भर दिया है। 'धरमदास मनहीं को जानौ, काया बीर कबीर बखानौ।' जिन व्यक्तियों से गोस्वामी तुलसीदास का—नहीं, नहीं, तुलसी साहब का—सम्वाद हुआ वे भी सब घट के भीतर ही समा गये हैं।

कासी काया भाखि बखानो, बिधि बिधि दरसाई कै।
हिरदे अहीर बखाना, हिरदे में हेर समाना।
— — — —

गुनवां मन गुन संग खेला, ताको कही गाई कै।
नैनूं पण्डित नैन कहाये, तामें स्यामा स्याम कहाये।
जहँ **माना** मन लै बैठा, पण्डित पिण्ड आइ कै।
कर्मा करि करि कर्म कहाये, **धर्मा** सब धर्म चलाये।
करिया पुतरी लै जाना, भाखूँ समझाई कै।
तकी तकि तकि नैन निहारा, सैनू सैने सुरत संवारा।
रहै मन इत रेवती दासा, याकौ कही गाई कै।
फूलदास फूल गयो कंवला, जहँ सूर दल पर सम्हला।
प्रिय प्रीति सुरति चढ़ि आई, ये ही **प्रिये लाल** के।

पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि घट में जिन जिन व्यक्तियों और स्थानों को भर दिया है, वे किसी क्रम से भरे गये हैं अथवा यों ही।

तुलसी साहब ने कुछ विचित्र बातों का भी उल्लेख किया है। वेदों की संख्या दस तक पहुँच गई है।

वेद चारि ब्रह्मा निज कीन्हा, पंचम सुषम वेद को चीन्हा।
छठवाँ प्रसंगे वेद कहाई, वा की विधि सुनौ हो भाई।
चारि वेद जो गुप्त रहाई, तामें कागद लगै न स्याही।
ताको भेद वेद नहीं जाने, ताके परे कहै को माने।
वेद दसौ विधि गाइ, का की पूछै आदि तुम।
सौ मैं देउँ बताई, नैनू स्यामा भाखिए।

वेदों का संख्या क्रम इस प्रकार है—

चारि वेद की आदि बताई, जो ब्रह्मा से उपजे भाई।
ताकर नाम गती गुन गाऊँ, पिरथम सामवेद तिहि नाऊँ।
ऋग्ग जजुर कौ भाखि सुनाऊँ, चौथा अर्थ अथरबन गाऊँ।

तुलसी साहब को शुकदेव, व्यास, जनक, नारद, वेद, शास्त्र, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ज्ञानी, व्रत, तीर्थ, अवतार और संस्कृत में आस्था न थी।

काया खोज किया नहिं भाई, **सुकदेव** रहे भूल के माई।
व्यास जनक नारद नहिं पाई, कथि पुरान आतम गति गाई।
ज्ञानी भूले भर्म में, परम हंस ब्रह्म चार।
सास्तर संघ विचारिया, बहे कर्म की धार।
तिन में रहे त्रिभवनी घाटा, **ब्रह्मा विस्नु** न पावै बाटा।
संकर जोगी सिद्ध अनूपा, उनहुँ न पायो आपन रूपा।

— — — —

ब्रह्मा **वेद** नसाय, विस्नु सिव ना बचै।
बचें नहीं वैराट, कहनि कहौ को पचै ॥

— — — —

पानी नहिं पवना अगिन न भवना, वेद भेद गति नाहिं लई।
ब्रह्मा नहिं **बिस्ना** राम न क्रिस्ना, सिव सिद्धी नहिं पार लई।
ब्रह्मा बिस्नु भये महादेवा, इनकी उत्पत्ति मन मत भेवा।
सास्तर वेद **संस्कृत** बानी, ये सब मन मत गत उतपानी।
दस औतार जगत जग माया, यह मन और अनेक उपाया।
ऋषि मुनी जोगी सुर ज्ञानी, मन करता कर सब मिली मानी।
तीरथ वरत वेद व्यौहारा, जग भूला मन जाल पसारा।

ठीक भी है गीता कहती है 'त्रैगुण्य विषया : वेदाः' और गोस्वामी तुलसी दास ने भी कहा है 'बिधि हरि संभु नचावन हारे।' किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि गोस्वामीजी को 'राम' शब्द कितना प्यारा था, उनको 'दशरथ सुत' कितने प्यारे थे और तुलसी साहब का राम कृष्ण के प्रति क्या भाव था

"जिनकी रज पावन राम और रावण, निःअच्छर सार सही"

— — — —

नहिं राम अरु रावन यह गति पावन, अगुन सगुन गुन नाहिं कहीं

— — — —

जासे नाम भेद नहिं जानै, मनहिं राम को नाम बखानै।
नाम गती है अगम अपारा, ब्रह्म राम दोउ पावें न पारा।

— — — —

रावन राम सकल परिवारा, ये घट भीतर चुनि चुनि **मारा**

— — — —

राम राम जो जपै अघाई, ताकौ जनम अकारथ जाई

— — — —

राम करम बस भौ के भाई, सन्त अगम घर नित प्रति जाई

— — — —

राम काँच सम की मत जाना, सन्त गती हीरा परमाना।
वो पैसे में जग ले आवै, राम काँच मन जग को भावै।
सन्त अगम हीरा गति न्यारी, केहि विधि पावै जगत भिखारी।

— — — —

राम आप कर्मन बस परिया, कहो तासे जग कस कस तरिया।

— — — —

बोल राम रित चेला थापा, बुद्धि गई तुम बूड़े आपा।
राम कृष्ण दोऊ बटमारा, सिव ब्रह्म मिलि फांसी डारा।

— — — —

त्रेता रामचन्द्र भये राजा, भुले वोहू देह सुख काजा।
तिरिया काज कीन्ह संग्रामा, बन बन फिरे लछन अरु रामा।
कुल आतम रावन को मारा, आतम हति लीन्हा सिर भारा।
आतम पाप अनीती कीन्ही, बालिही मार काल गति लीन्ही।
ये अधर्म कीन्हा अन्याई आतम मारि दया नहिं आई।

— — — —

करता राम भया मति हीना, कपट मिरग उनहुँ नहिं चीन्हा।
तिरिया काज कीन्ह सब कामा, लीन्हा भोग कीन्ह सोई रामा।

— — — —

राम कृष्ण जग हाथी जाना, सोऊ गहे कर्म लपटाना

गोस्वामी तुलसीदास क्या राम को 'बटमारा', 'मतहीना' बताकर मार सकते थे, अथवा उन्हें कांच समझकर उनकी अवहेलना कर सकते थे? क्या वे रावण को राम से अधिक अथवा बराबर मान सकते थे? तुलसी साहब की तो रावण पर राम से कहीं अधिक आस्था है। उनकी 'घट रामायन' में रावण ब्रह्म है और त्रिकुटी लंका है। वे लिखते हैं

"रावण ब्रह्म कहा हम जोई, त्रिकुटी लंक ब्रह्म है सोई"

— — — —

'रावन ब्रह्म बसै त्रिकुटी में, लंक त्रिकूट बनाई'

— — — —

रावण के परिवार तक की सुन्दर व्याख्या है, रावण की पत्नी, मन्दोदरी तो 'मन की दौर को दूर बहाने वाली' किन्तु रामपत्नी सिया 'असत', राम-माता कौशिल्या 'कुमति' और राम-पिता विषयी हैं

रावन ब्रह्म बसै मन दौरी, ताको मन्दोदरी बनाई।
मन की दौर को दूर बहावै, त्रिकुटी ब्रह्म कहाई।
दस इन्द्री रत दसरत कहिए, राम रमा मन जाई।
सत की सीता असत सिया को, कुमति कौशिल्या बसाई।

— — — —

यह सब तुलसी साहब की विपरीत रुचि का उदाहरण है। गोस्वामी तुलसीदास को अवश्य इस रुचि से असंतोष होगा। किन्तु तुलसी साहब ने ठीक ही किया। नीति है। पटं छिन्द्यात् घटं भिन्द्यात् कुर्याद्रास भरोहणम् येन केनाप्युपायेन प्रसिद्धः पुरुषों भवेत्।

कदाचित् प्रसिद्धि की प्रबल भावना ने ही तुलसी साहब को निम्नांकित पंक्तियों के लिए बाध्य किया –

फूलदास कबीर पंथी कहता है—

फूलदास कह स्वामी सूझा, है कबीर तुलसी नहिं दूजा
जो कबीर सो तुम हो स्वामी, दया करहु मोहिं अन्तरजामी

कदाचित फूलदास का तात्पर्य यह हो कि गोस्वामी तुलसीदास (और रूपान्तर से तुलसी साहब) पूर्व जन्म में कबीर ही थे। तुलसी साहब को पूर्वजन्म में यह गौरव भी प्राप्त था कि स्वयं गुरु नानक ने उनसे वार्तालाप किया—

साहिब नानक सन्त निदाना, जो कछु कहनि कही परमाना।
खुद साहिब नानक मुख बानी, कही अगम कोई बिरला जानी।

तुलसी साहब अपने मत का प्रतिपादन करने में तर्क से काम न लेते, किन्तु अन्य मतों के खण्डन में तर्क का प्रदर्शन खूब करते थे। यह बात दूसरी है कि उनका वह तर्क भी सोना न होकर पीतल ही सिद्ध हो, उनकी तर्क शैली के कुछ उदाहरण विनोदपूर्ण प्रतीत होते हैं। वह राम-नाम के विरोध में युक्ति देते हैं।

राम लिखो पत्थर के माई, पानी डारि देखि लो भाई।
जो पत्थर पानी नहिं बूढ़ा, तौ तुम जानौ राम अगूढ़ा।
पत्थर डूबे राम लिखे से, तो तुम बुड़िहौ राम कहे से।
ध्रुव की मुक्ति का प्रतिवाद इस प्रकार होता है -
और तुमने ध्रुव मुक्ति बतावा, सो त गगन दृष्टि में आवा।
ध्रू तारे की मुक्ति बतावौ, सब तारे की विधि समझावौ।
तारा गगन मुक्ति जो होती, तारा टूट गिरै भुँइ जोती।
जो तुम ध्रू को अटल बताया, गगन फूटि ध्रू कहाँ समाया।

कदाचित् तुलसी साहब को भूगोल और नक्षत्र-मण्डल का ज्ञान कम था। क्या यह आवश्यक है कि यदि ध्रुव टूटे तो इस जमीन पर ही गिरे? पृथ्वी और ध्रुव का अनुपात क्या? अस्तु।

और लीजिये। यदि कृष्ण भगवान थे तो पाण्डवों और उद्धव को मोक्ष मिल जानी चाहिए थी। फिर उद्धव को तप क्यों करना पड़ा और पाण्डवों को गलने के लिए हिमालय क्यों जाना पड़ा?

कृष्ण समीपी पण्डवा, गरें हिवारे जाय।
लोहे को पारस मिलै, तो काहे काई खाय ॥
जो कृष्ण पारस हुते, लोहा पण्डो मान।
कृष्ण दरस मुक्ती मिलत, गरें हिवार केहि काज ॥
पण्डौ चारौ नर्क को, गये युधिष्ठर धाम।
मित्र प्रीति भगवान की, आई कौने काम ॥
कृष्ण मित्र ऊधौ हुतै, कही एकादस माहिं।
कृष्ण दरस मुक्ती हुती, तप कीन्हा क्यों ताहिं ॥

तर्क तो अकाट्य-सा प्रतीत होता है। पर तुलसी साहब से पूछा जा सकता है कि पूर्व जन्म में उनका जिन तेरह व्यक्तियों से सम्वाद हुआ, उन्हें तो परम पद मिला पर स्वयं उपदेष्टा तुलसी साहब को वह पद क्यों नहीं मिला? उन्हें क्यों जन्म धारण करना पड़ा?

तेरह तोल अपार, लखा सार सतगुरु मिले।
तुलसी कहै निहार, उतरि पार पद को मिले।

— — — —

तेरह भये पारा अगम निहारा, सत मत सारा लार लये।
पहुँचे वोहि धामा अगम अनामा, पार सार रस जाइ पियो ॥

— — — —

मैं अब अपनी आदि बताओं

— — — —

भया जन्म सोई कहौ सुझाई, बाल बुद्धि सुधि दरसाई

— — — —

तुलसी साहब अर्वाचीन अनुसंधाताओं (रिसर्च स्कॉलरों) की भाँति सम्वतों के द्वारा ऐतिहासिक आधार पर तथ्यातथ्य का विवेचन इस प्रकार करते हुए मिलते हैं

अब सोलह सै सोलह जाना, बावे बिधी कहूँ परमाना।
जेते दिन बावे को बीता, सो विधि वरनि कहूँ सत रीता।
पन्द्रह सौ अस्सी के माहीं, अब सोलह से सोलह भाई।
छत्तिस बरस बावे विधि जाना, पन्द्रह से पांच गोरख परमाना।
पंद्रह सै बरस गोरख भये आगे, बावे विधि गुष्टि नहिं लागै।
छत्तिस बरस बावे विधि साँचा, गोरख भये पंद्रह से पाँचा।
ये तो विधि मिली नहिं स्वामी, ग्रन्थ माहिं कस गुष्ठि बखानी।
गोरख पन्द्रह से भये आगे, छत्तिस बरस बावे को लागे।
इनकी गुष्ठि कौन विधि भइया, तुलसी के मन संसय रहिया ॥

विपक्ष का खण्डन बड़ा अच्छा हुआ, किन्तु जब आपने अपने बारे में सम्वतों का उल्लेख किया, तब स्वयं धोखा खा गये। डा. माता प्रसाद गुप्त लिखते हैं कि तुलसी साहब ने सात मितियों का उल्लेख किया है, जिनमें से केवल तीन में वार दिया हुआ है, अतः अन्य चार के तथ्यातथ्य के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। जिन मितियों के तथ्यातथ्य का विवेचन हो सकता है, वे हैं जन्म तिथि, काशी में आगमन की तिथि और घट रामायन निर्माण तिथि। किन्तु खेद है, जन्म तिथि को छोड़कर और कोई भी ज्योतिष गणनानुसार ठीक नहीं उतरती। पाठक समझ सकते हैं कि तुलसी साहब के तर्क का क्या मूल्य है।

श्री लक्ष्मी नारायण सिंह 'सुधांशु' एक असंगत बात की ओर इंगित करते हैं, जो इस प्रकार है 'जो राग गोस्वामी तुलसीदास ने घट

रामायन में अलापा है, उसी का स्वयं ही अच्छी तरह रामचरित मानस में विरोध किया है। ऐसी दशा में एक मनुष्य का दो परस्पर विरुद्ध मतों का समर्थक होना इस ईश्वरीय सृष्टि में सचमुच अनोखी बात है। एक स्थान पर घट रामायन में लिखा है —

तुलसी नाम एक साध गुसाई, ग्रन्थ कीन एक भाव बनाई।
तामें बेद कितेब न राखा, दस औतार कछू नहिं भाखा।
तीरथ बरत एक नहीं माने, वो कछु और और विधि ठाने।
पण्डित हिरदे से भयो झगरा, और भेष जग कासी सगरा।

यह अवतरण भेद 'रामरामायण' प्रकरण का है। इस प्रकरण में घट रामायन और रामरामायन का पारस्परिक भेद वर्णन किया गया है। आश्चर्य है, घट रामायन का पता भी नहीं था, फिर तुलसीदासजी ने घट रामायन में ही रामरामायण का भेद कैसे लिख डाला?

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे अनैतिहासिक व्यतिक्रम हैं, जिनमें "घटरामायन" का महत्त्व एकदम कम हो जाता है।

'घटरामायनकार' ने कम से कम नौ स्थलों पर दरिया साहब के नाम अथवा शब्द का उल्लेख किया है।

डा. रामकुमार वर्मा ने 'हिन्दी-साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास' में दो दरिया साहबों का परिचय दिया है। एक तो बिहार वाले दरिया साहब थे, जो सम्वत् 1731 में जन्मे और 1837 में मरे; दूसरे मारवाड़ वाले दरिया साहब थे, जिनका जन्म सम्वत् 1733 में हुआ। किन्तु तुलसी साहब के ही लेखानुसार गोस्वामी तुलसीदास का देहावसान श्रावण शुक्ला सप्तमी सम्वत् 1680 में हुआ। स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदासजी तो दरिया साहब का उल्लेख न कर सकते थे। अतः यह सब गोलमाल उनके पीछे का होना चाहिए।

तुलसी साहब 'घट रामायन' में यह लिखते हैं कि वह पूर्वजन्म में गोस्वामी तुलसीदास थे, तब तो यह पुस्तक 'घट रामायन' अछूती कैसे कही जा सकती है। यह कहते हैं कि यह अपने पूर्वजन्म में गोस्वामी तुलसीदास थे, और इनका जन्म जमुना के किनारे राजापुर में हुआ, जो बुंदेलखण्ड में चित्रकूट से दस कोस की दूरी पर स्थित है। यह कुलीन कान्य कुब्ज ब्राह्मण थे। यद्यपि यह अपनी पत्नी में आसक्त थे, तथापि सतसंग प्रिय थे। श्रावण शुक्ला नवमी सम्वत् 1614 को इनको अगम का सौदा हुआ। इनकी समाधि लगने लगी, बड़ी प्रसिद्धि हो गई, लोग दर्शनों को राजापुर आने लगे। काशी का रहनेवाला हिरदे नाम का अहीर राजापुर में किसी के यहाँ नौकर था। वह नित्य-प्रति दर्शन को आता था, अतः इनकी उससे प्रीति बढ़ गई। एक दिन ऐसा हुआ कि हिरदे को काशी गये बहुत दिन हो गये, तब यह व्याकुल हो स्वयं काशी जा पहुँचे। हिरदे से मिले और काशी में गंगा के किनारे कुटी बनाकर सत्संग में रहने लगे। यह चैत्र द्वादशी मंगलवार सम्वत् 1615 की बात है। कार्तिक बदी पंचमी 1616 में पलकराम नानकपंथी से मुलाकात हुई। तत्पश्चात इन्होंने भादों सुदी 11 मंगल सम्वत 1618 को घट रामायन का प्रारम्भ किया। इस पुस्तक से काशी में बड़ी खलबली मची। अतः इन्होंने झगड़े के डर से इसे गुप्त कर दिया और सम्वत् 1631 में 'अंधा अन्धे विधि' समझाने के लिए रामचरित मानस का प्रारंभ किया और सम्वत् 1670 की श्रावण शुक्ला सप्तमी को बरुना नदी के किनारे महा प्रस्थान किया।

तिथि-वार सम्वत् और रचना-घटना का बाहुल्य निस्सन्देह तुलसी साहब की पूर्व जन्मस्मृति का अद्‌भुत साक्षी है। पूर्व जन्म में इनके जो जो सम्वाद अपने भक्तों से हुए थे, वे सब मय सम्वत के ज्यों के त्यों स्मृतिपटल पर अंकित हैं। उन सब भक्त स्त्री-पुरुषों के नाम याद हैं। उन्होंने जो कहा, वह सब याद है; इन्होंने जो उनसे कहा, वह भी याद है। इनका पूर्वजन्म में कब जन्म हुआ, वह बावन तोले पाव रत्ती स्मरण रहा। उनका जन्म स्थान कहाँ था, किस प्रान्त में और चित्रकूट से

कितनी दूर था, यह भी याद है। उन्हें अपनी मरण तिथि याद रही। इनका 'अगम का सौदा' कब हुआ, वह तिथि मास सम्वत् यहाँ तक कि आधी रात का समय भी याद है। यह हिरदे की प्यास में काशी किस दिन पहुँचे, यह भी याद है। इन्होंने घट रामायण किस दिन प्रारम्भ की, वह याद है। इन्हें यह भी याद रहा कि रामचरित मानस कब प्रारम्भ किया। और तो और, इनको यह घटना भी याद है कि पलकराम नानक पंथी इनके पास किस सम्वत् किस तिथि और वार को सर्वप्रथम मिला किन्तु खेद है तुलसी साहब की प्रखर स्मृति अन्त में इन्हें धोखा दे ही गई। इन्हें यह स्मरण नहीं रहा कि पूर्वजन्म में इनके पुण्यश्लोक माता पिता का क्या नाम था। इन्हें यह स्मरण नहीं रहा कि इनकी पत्नी का जिनमें यह अत्यंत अनुरक्त थे, क्या नाम था। इन्हें यह स्मरण नहीं रहा कि इन्होंने पूर्वजन्म में गोस्वामीजी के रूप में, 'घट रामायन' और 'रामचरित्र' के अतिरिक्त कौन-कौन-सी पुस्तकें लिखीं। इन्हें विनय पत्रिका, कवितावली आदि सभी अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकें विस्मृत हो गईं। इनकी स्मृति अविश्वसनीय होनी चाहिए; क्योंकि केवल जन्म-तिथि को छोड़कर अन्य कुछ तिथियाँ, जैसा डा. माताप्रसाद गुप्त ने बताया है, प्रथम तो गणना की कसौटी पर वार आदि के प्रभाव से नहीं कसी जा सकतीं और जो कसी भी जा सकती हैं, वे असत्य निकली हैं।

डॉक्टर माताप्रसाद गुप्त ने डी. लिट्. परीक्षा के लिए 'ए क्रिटिकल स्टडी आन दी लाइफ एण्ड वर्क्स आफ तुलसीदास' नामक अमुद्रित थीसिस के 51-53 पृष्ठों पर तुसलीसाहब की 'घट रामायन' की समीक्षा करते समय लिखा है कि यह कृति (घट रामायन) नितान्त उपेक्षित (**entirely neglected**) रही है। न जाने गुप्त जी ने ऐसा क्यों लिख दिया। उनके सहयोगी डा. रामकुमार वर्मा 'हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में इस विषय का किंचित उल्लेख कर चुके थे और वर्मा जी से भी बहुत पहले श्री लक्ष्मीनारायणसिंह 'सुधांशु' 'घट रामायन' की बहुत कुछ मनन पूर्ण समालोचना माधुरी (सितंबर, 1926) में कर चुके थे। डा. माताप्रसाद गुप्त ने यह भी लिखा है कि घट रामायणकार ने

ऐसे किन्हीं व्यक्तियों अथवा मितियों का उल्लेख नहीं किया है, जिनके तथ्यातथ्य का निर्णय ऐतिहासिक आधार पर हो।

(The author does not mention any persons or dates connected with them verifiable from history)

आश्चर्य है, गुप्त जी ने ऐसा लिख दिया। हो सकता है, उन्होंने समालोचना से पूर्व 'घट रामायन' को भली भाँति न पढ़ा हो; लेकिन, जैसा मैं ऊपर बता चुका हूँ, घट रामायन में अनेक स्थलों पर ऐसे व्यक्तियों और घटनाओं का उल्लेख है, जो इतिहास की कसौटी पर जरा भी नहीं टिकते।

वास्तव में 'घट रामायन' गोस्वामी तुलसीदास के विषय में किसी महत्व की पुस्तक नहीं है। एक मित्र ने तो उपहास में 'घट रामायन' को 'मरघट रामायन' बता डाला। यह पुस्तक उपेक्षा योग्य ही थी। मैं इस रचना के विषय में स्वयं अधिक न कहकर श्री लक्ष्मीनारायणसिंह 'सुधांशु' के ही शब्दों में इस विषय को समाप्त करता हूँ "हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि किसी तुक्कड़ ने इसकी रचना कर इसे तुलसीदासजी के पवित्र नाम से प्रकाशित किया है। यह पुस्तक सन्तमत की कट्टर समर्थक है। सारी पुस्तक दोहे चौपाई आदि में वर्णित है। पर इसमें रामचरित मानस की तरह न सरसता है, न सरलता और न अर्थ गंभीरता। छन्दोभंग की त्रुटियों से सारी पुस्तक खचाखच भरी पड़ी है।...जैसे-तैसे एक ही बात की बार बार आवृत्ति कर पुस्तक की कलेवर-वृद्धि की गई है। हमारी समझ में यह पुस्तक गोस्वामीजी के पवित्र नाम में कलंक लगाने वाली है।"



अध्याय 13

परम सन्त तुलसी साहब के ग्रन्थ घट रामायण पर किये गये आक्षेपों के उत्तर

396. घट रामायण का अर्थ घट की रामायण है। ''पिण्डेषु ब्रह्माण्डे'' जो पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में है। वैसे ही जो ब्रह्माण्ड में है, वह सब पिण्ड में है। सिर्फ देखने देखने ही का अन्तर है।

397. जगत की सैर बहिर्मुख है व घट की सैर अन्तर्मुख। घटहि में गंगा, घटहि में जमुना, घटहि में ठाकुर द्वारा है।

398. घट रामायण अन्तर की रामायण है यानी उसमें कुल अन्तर का भेद है। आध्यात्मिक रामायण दुर्गम है।

तुलसीदास ने कहा है : –

यत्पूर्व प्रभुणा कृतं सुकविना श्री शम्भुना दुर्गमं।
भाषाबन्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् ॥

जो रामायण पहले श्रेष्ठ कवि स्वामी शिवजी ने दुर्गम (जिसका अर्थ कठिनता से जाना जाय) रची थी उस रामायण (आध्यात्म रामायण) को बहु मान देकर तुलसीदास ने यह मानस (मन से कहा हुआ) भाषा प्रबंध (रामचरित मानस) रचा था।

399. और भी

रामचरित मानस मुनि भावन।
बिरचेउ सम्भु सुहावन पावन ॥
रचि महेश निज मानस राखा।
पाय सुसमय सिवा सन भाखा।
तातें रामचरित मानस बर।
धरेउ नाम हिय हेरि हरषि हर ॥
सम्भु प्रसाद सुमति हिअँ हुलसी।
रामचरित मानस कवि तुलसी ॥

मुनियों को प्रिय, पवित्र और सुहावने इस रामचरित्र मानस रूपी सरोवर को शिवजी ने बनाया है। इसको रचकर शिवजी ने अपने मन में रक्खा और सुअवसर पाकर उन्होंने पार्वतीजी को सुनाया। इसी से शिवजी ने खूब सोच समझकर और प्रसन्न होकर इसका सुन्दर नाम "रामचरित मानस" रक्खा। शिवजी की कृपा से मेरे हृदय में सुमति का प्रकाश हुआ, जिससे मैं तुलसीदास इस रामचरित मानस का कवि हुआ।

400. शिवजी योगिराज हैं। उन्होंने प्रथम रामायण को अपने मानस घट में रक्खा व समय पाकर पार्वती से कहा। पार्वती ने याज्ञवल्क्य से। फिर उसका क्रम चलते चलते हम लोगों तक पहुँचा।

401. जब कोई बात एक मुँह से निकलकर दूसरे के कान तक पहुँचती है और फिर दूसरे के मुँह से तीसरे के कान तक जाती है तो ज्यों की त्यों नहीं पहुँचती। इसलिये तुलसीदासजी कहते हैं—

करइ मनोहर मति अनुहारी।
सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी ॥

(इसे तुलसीदास बुद्धि के अनुसार तो मनोहर ही बनाता है, सज्जन उसे जी से सुनकर सुधार लें।)

402. जब इस कथा को तुलसीदासजी ने कहा तो जरूर इस पर उनकी मति का पुट चढ़ा होगा। इसलिये कहा कि कहीं गलती हो तो सुजन यानी अनुभवी भक्तजन उसको सुधार कर पढ़ लें, समझ लें। इसलिये अन्तिम कसौटी वही अनुभव, अन्तर्मुख योग द्वारा है।

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू।
वेद पुरान उदधि धन साधू ॥
वरषहिं राम सुजस बर बारी।
मधुर मनोहर मंगलकारी ॥

403. तुलसीदासजी ने वेद पुराण को यहाँ समुद्र कहा है जहाँ से पानी आता है, साधुओं को मेघ, बुद्धि को समतल भूमि व हृदय को गहरा स्थान व झील कहा है।

तात्पर्य —

वेद पुराण विवाद में, मत उरझे मतिमान।
सार गहे सब ग्रन्थ को, आपन रुची समान ॥

— रहीम

404. यहाँ विजय रुचि का नहीं, अनुभव का है जो योग का या घट वा अन्तर में चाल चलने का विषय है।

सतगुरु यानी भेदिए की आवश्यकता है।

405. योग के अधिकारी सब नहीं। इसलिये साँकेतिक भाषा में साध सन्तों ने इस विषय का वर्णन किया है, वह भी पूरा-पूरा स्पष्ट नहीं। कारण, यह सब करनी का विषय है। समझने व बाचक ज्ञान का नहीं।

यह करनी का भेद है, नाहीं बुद्धि विचार।
बुद्धि छोड़ करनी करो, तो पाओ कुछ सार ॥

— राधास्वामी साहब

406. सब बातें गुरु पर रक्खी हैं। वे मिल जावें तो काम बन आवे। योग मार्ग में चलने के लिए विद्या बुद्धि की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि विद्या बुद्धि एक मानी में बाधक हैं। तभी तो परम सन्त तुलसी साहब कृत घट रामायण विद्वानों की समझ में नहीं आती। बिना समझे उसे गलत ठहरा देना असंगत है। घट की पोथी के पढ़ाने वाले शिक्षक गुरु को तलाश करना चाहिये। फिर श्रद्धा से, जो वे उपदेश करें उसकी कमाई करके देख लें कि साध सन्तों ने क्या कहा है। बावन तोला पाव रत्ती, जो सबकी आँखों को खोल देने वाली है। पहुँचे हुओं का मत एक है। उसमें वर्ण, संस्कृति, आदि का भेद नहीं है। सबके लिए समान है।

पहुँचे का मत एक है, क्या हिंदू क्या शेख

— कबीर साहब

सन्त फकर बोली जुगल, पद दोउ एक अखण्ड

— राधास्वामी साहब

407. घट व रामायण, इन दोनों शब्दों का अर्थ समझ लेने पर सोचने की बात है कि घट रामायण क्या उस छोटी-सी पुस्तक में समा सकती है? पहले ही कह चुके हैं, पिण्डेषु ब्रह्माण्डे, जो घट में वह बाहर और जो बाहर वह घट में। जब बाहर का पार नहीं तो भीतर का पार कैसे?

तुम्हहिं आदि खग मसक प्रजंता।
नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अन्ता ॥

— उत्तर काण्ड

(हे गरुड़! आपसे लगाकर मच्छर तक सभी पक्षी आकाश में अपनी अपनी शक्ति के अनुसार उड़ते हैं, पर उसका अन्त कोई नहीं पाता।)

जो नहिं देखा नहि सुना जो मनहूँ न समाय।
सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवन विधि जाय ॥
एक एक ब्रह्माण्ड महँ रहऊँ बरस सत एक।
एहि विधि देखत फिरेउँ मैं अण्डकटाह अनेक ॥

— उत्तर काण्ड

(जो देखा नहीं, सुना नहीं और जो मन में भी नहीं समाता था अर्थात् जिस बात का अनुमान मन से भी न हो सके, वह सब आश्चर्य वहाँ देखा। उसका वर्णन किस तरह किया जाय? मैं एक एक ब्रह्माण्ड में सौ सौ वर्ष रहा। इस तरह मैं अनेक ब्रह्माण्ड देखता फिरा।)

भ्रमत मोहिं ब्रह्माण्ड अनेका।
बीते मनहुँ कलप सत एका ॥

— उत्तर काण्ड

(इस तरह अनेक ब्रह्माण्डों में भ्रमण करते करते मानो मुझे एक सौ कल्प बीत गये।)

उभय घरी महँ मैं सब देखा।
भयउ स्रमित मन मोह बिसेखा ॥

—उत्तर काण्ड

(इतना सब कुछ मैंने दो घड़ी में देख लिया। मैं थक गया और मन में अधिक मोह हो गया।)

देखि कृपाल विकल मोहिं बिहंसे तब रघुवीर।
बिहंसत ही मुख बाहेर आयउं सुनु मति धीर ॥

— उत्तर काण्ड

(हे धीर बुद्धि वाले गरुड़! सुनिये, तब कृपालु रघुवीर मुझे व्याकुल देख कर हँस पड़े। उनके हँसते ही मैं उनके मुख से बाहर आ गया।)

408. यह जीव का घट के अन्दर विराट का दर्शन है। कौशल्या ने भी देखा, यशोदा ने भी देखा, अर्जुन ने भी देखा व जो चाहे सो देख ले और अब कलियुग में, "देखा जाय सुरत से सारा।" यह सुरत शब्द योग सन्तों का है।

409. "आँखों वाला तेरे जोबन का तामाशा देखे" यानी जिसको दिव्य दृष्टि गुरु दें, वही देख सकता है। गीता में कहा है, 'दिव्यं ददामि ते चक्षु, पश्य में योगमैश्वरम्'

अर्थात् मैं तुझको दिव्य दृष्टि दे रहा हूँ, अब तू मेरे ईश्वरी योग को देख। तब अर्जुन कहता है, 'पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप' यानी हे विश्वेश्वर, हे विश्वरूप! मैं देखता हूँ।

410. घट रामायण का पारावार नहीं है, परन्तु सन्त तुलसी साहब ने मस्ती में जो फरमाया व शिष्यों ने जो नोट कर लिया वह लिखने में आ गया। बाकी वाणी हाथ से निकल गई। सन्तों की गुप्त भाषा में या कहिये योग शास्त्र के पारिभाषिक शब्दों में उसका भेद सन्त ही कह सकते हैं और सन्तों ने जिसे उसका भेद दिया हो, वही कह सकता है। सन्तों की इतनी ऊँची गति पर जिसे विश्वास है, वह कभी उनकी करतूत में अपनी गँदली बुद्धि को दखल न देगा। नहीं समझ में आवे तो धीरज धरेगा। समय आने पर सब खुल जायगा।

तुलसीदास ने इसी बात को इस तरह कहा है :—

जेहि यह कथा सुनी नहिं होई।
जनि आचरज करइ सुनि सोई ॥
राम कथा के मिति जग नाहीं।
अस प्रतीत तिन्ह के मन माहीं ॥
नाना भाँति राम अवतारा।
रामायण सत कोटि अपारा ॥

राम अनन्त अनन्त गुन अमित कथा विस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिनके बिमल विचार ॥

राम चरित सत कोटि अपारा।
स्रुति सारदा न बरनइ पारा ॥
राम अनन्त अनन्त गुनानी।
जनम कर्म अनन्त नामानी ॥
जल सीकरि महि रज गनि जाही।
रघुपति चरित न बरनि सिराहीं ॥

411. रामायण के सौ करोड़ श्लोक हैं व अपार हैं। यह कोई पुस्तक नहीं। यह तो अन्तर का अपार ज्ञान है। ज्ञान की कोई सीमा नहीं। वही बात वेदों की है। वेद भी ज्ञान का नाम है। कहते हैं कि कितनी ऋचाओं का लोप हो गया है। घट रामायण पहला भाग में पृष्ठ 128 पर वेदों की संख्या दस बतलाई है व गिनाई भी है।

वेद चारि ब्रह्मा निज कीन्हा।
पंचम सुषम वेद को चीह्ना ॥
छठवाँ प्रसंगै वेद कहाई।
बाकी विधी सुनो हो भाई ॥
चारि वेद जो गुप्त रहाई।
तामें कागद लगे न स्याही ॥
ताको भेद वेद नहिं जानै।
ताके परे कहे को मानै ॥

412. परम सन्त तुलसी साहब ने प्रसिद्ध चार वेदों के सिवा छः और कहे हैं। यह बात उन्होंने अपने मत अनुसार कही है। इसका यह अर्थ नहीं कि प्रसिद्ध वेदों की गिनती

व नाम तक वे नहीं जानते। पंचम सुषम अर्थात् सूक्ष्म वेद है। स्थूल वेद तो ब्रह्मा के चार मुखों से निकले।

मुख चारों से धुन उच्चारी।
ताते वेद भये पुनि चारी ॥

— राधास्वामी साहब

413. तुलसीदास ने बाल काण्ड में कहा है :

जाकी सहज स्वास स्रुति चारी।
सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी ॥

रामचन्द्र गुरु के घर पढ़ने के लिए गये। उस प्रसंग की यह चौपाई है जिसका अर्थ यह है कि चारों वेद जिसके स्वाभाविक श्वासी ही हैं, वह हरि विद्या पढ़े, यह कैसी भारी कौतुक की बात है।

414. यहाँ हरि से मतलब सहसदल कँवल के धनी से है।

सहस कँवल दल नाम सुनाऊँ।
जोत निरंजन बास लखाऊँ।
करता तीन लोक यह ठाऊँ।
वेद चार इन रचे जनाऊँ।

— राधास्वामी साहब

415. ये चारों वेद ओंकार से निकले जिसे नाद या पंचम वेद या सूक्ष्म वेद कहते हैं।

पंचम वेद नाद यहि गाया।
चहुँदल कँवल सन्त बतलाया ॥

— राधास्वामी साहब

416. छठा वेद परम्परागत मौखिक ज्ञान है यानी वह ज्ञान या इल्म जो लिखने में नहीं आया बल्कि पुश्तहा पुश्त से चला आ रहा है। इसको सन्तों ने लोक वेद कहा।

काल मता वेदान्त का, सन्तन कहा बनाय।
सत्तनाम सतपुरुष का, भेद रहा अलगाय ॥
वेद बचन त्रैगुन विषय, तीन लोक की नीत।
चौथे पद के हाल को, वह क्या जाने मीत ॥
लोक वेद में जो पड़े, नाग पाँच डस खायँ।
जनम जनम दुःख में रहें, रोवें और चिल्लायँ ॥
जिन सतगुरु के बचन की, करी नहीं परतीत।
नहिं संगत करी सन्त की, वे रोवें सिर पीट ॥

— राधास्वामी साहब

417. तुलसीदास ने भी रामचरित मानस में लोक वेद का जिक्र किया है। उदाहरणार्थ

सो जानब सतसंग प्रभाऊ।
लोकहू वेद न आन उपाऊ ॥
हानि कुसंग सुसंगति लाहू।
लोकहु वेद विदित सब काहू ॥

418. तुलसीदास ने वेद के समकक्ष लोक वेद को कहा

है। यह लोक वेद ही तुलसी साहब का प्रसंगे वेद है। शेष चार को गुप्त कहा है। उनको सन्तों ने आमतौर पर खोलकर कहना मुनासिब नहीं समझा। सिर्फ संकेत किया है।

बानी चार गुप्त जहँ उठती।
सुरत रागिनी नइ नइ सुनती ॥

— राधास्वामी साहब

419. इसी को तुलसी साहब ने अपनी बोली में यों कहा है

चारि वेद जो गुप्त रहाई।
ता में कागद लगे न स्याही ॥
ता को भेद वेद नहिं जानै।
ता के परे कहे को मानै ॥

420. इस तरह से परम सन्त तुलसी साहब ने दस वेद कहे हैं। जिनको प्रत्यक्ष देखना हो, वे यथा विधि सुरत शब्द योग का अभ्यास करें और देख लें कि वे चारों गुप्त वेद कहाँ हैं और क्या हैं।

421. साफ कह दिया है कि ये बातें वेदों के परे की हैं। जिनकी गति वेदों के परे है, वही समझ सकते हैं। सन्तों पर जिनकी श्रद्धा है और जो उन्हें वेद के ऊपर जानते हैं, वही मानेंगे। कूप मंडूक न्याय से समझ में नहीं आ सकता।

मेंढक सी गति इनकी जानी।
कूप समुद्र जान मगनानी ॥

— राधास्वामी साहब

422. सन्त ऊपरी चाल ढाल ऐसी रखते हैं कि उनको संसार पहचान नहीं सकता। कारण यह कि झूठों की भीड़भाड़ से सच्चों का अकाज होता है।

पर यह बात बड़ी अति झीनी।
सन्त करावें निन्दा अपनी ॥
निन्दा चौकीदार बिठाई।
कोई जीव धसने नहिं पाई ॥
बिरला जीव होय अनुरागी।
निन्दा से वह छिन छिन भागी ॥
निन्दा सुन सुन चित नहिं धारे।
सन्तन की यह जुगत बिचारे ॥
जस जाने तस मन समझावे।
सन्तन सन्मुख ज्यों त्यों आवे ॥
ऐसी दृढ़ता जा की होई।
तो फिर सन्त मौज करें सोई ॥
सन्त मौज फिर कोई न टारे।
ईश्वर परमेश्वर सब हारे ॥

— राधास्वामी साहब

423. घट रामायण पहला भाग पृष्ठ 179 पर परम सन्त तुलसी साहब ने महासुन्न से परे सत्तलोक गद्य में कहा है। यथा :

"सुन्न नाश होकर महासुन्न में समाता है। महासुन्न के परे सत्तलोक है जहाँ सत्त साहब रहता है। यहाँ प्रलय और

महा प्रलय की गम नहीं।"

424. और फिर आगे कहा है कि :–

"सत्त साहब की लहर से महासुन्न होता है, महासुन्न से सुन्न...।"

425. तब आगे पृष्ठ 180 के पद्य का संगत अर्थ न लगाते हुए उलटा अर्थ लगाते हैं और आलोचक महोदय कहते हैं कि 'सत्तलोक महासुन्न कहाई" व पूछते हैं कि इन तीनों में से कौन-सी बात ठीक है। ठीक तो यही है कि सुन्न के परे महासुन्न व महासुन्न के परे सत्तलोक है। तुलसी साहब की वे चौपाइयाँ ये हैं। महा प्रलय की गति बतलाते हैं।

ब्रह्मा बिस्नु और महादेवा ॥1॥
नास भये मन मत के भेवा ॥2॥
मन को नास सुनौ पुनि भाई ॥3॥
मन नसि गया निरंजन माई ॥4॥
नास निरंजन ब्रह्म समाना ॥5॥
ब्रह्म जो नसा शब्द में जाना ॥6॥
शब्द नास जो सुन्न समाना ॥7॥
सुन्न नास महासुन्न में जाना ॥8॥
यहाँ से उतपति परलय होई ॥9॥
आगे भेद न जाने कोई ॥10॥
वहाँ से आवै यहँ लै जावै ॥11॥
आगे भेद न कोइ पावे ॥12॥
सत्तलोक महासुन्न कहाई ॥13॥

तीनि लोक सब सुन में जाई ॥14॥
तीनि लोक करता नहिं जावै ॥15॥
वा पद को कोई सन्त समावै ॥16॥

426. ग्यारहवीं पंक्ति में 'लै' का अर्थ 'से' है। परम सन्त तुलसी साहब कहते हैं कि महासुन्न से प्रलय उत्पत्ति होती है। उसके आगे का भेद कोई नहीं जानता। वहाँ से रचना होकर, यहाँ से फिर वहीं लौट जाती है। फिर आगे का भेद कोई कैसे पा सकता है? आगे किसको कहा है? तुलसी साहब फरमाते हैं कि 'हमने सत्तलोक और महासुन्न को आगे कहा है (कहाई)'। तीन लोक तक वाले सब सुन्न में जाते हैं। फिर सुन्न के परे महासुन्न व सत्तलोक के भेद का हाल कौन जान सकता है? तीन लोक का कर्त्ता स्वयं उन पदों का हाल नहीं जानता, फिर तीन लोक के अन्दर रहकर यानी ऊपर गति न होकर कौन जान सकता है? उन पदों को सिर्फ सन्त जानते हैं। जब गद्य में दो बार वही बात कही तब पद्य में भिन्न क्यों कहेंगे? पंक्तियों को मिलाने की कठिनाई है। 'आगे भेद न कोई पावै।' सवाल होता है कि किसका? तो उत्तर देते हैं कि दो पदों का जिन्हें सत्त लोक व महासुन्न कहते हैं। सब सन्तों ने ऐसा ही कहा है। तुलसी साहब ने भी कई प्रसंगों में यही बात कही। फिर उल्टा अर्थ निकालकर अपने को भ्रम में डालना मात्र है।

427. एक जगह आलोचक लिखते हैं कि तुलसी साहब को शुकदेव, व्यास, जनक, नारद, वेद, शास्त्र, ब्रह्मा, विष्णु,

महेश, ज्ञानी, व्रत, तीर्थ, अवतार और संस्कृत में आस्था नहीं थी। आस्था न होती तो उन्हें लांघ कर आगे कैसे बढ़ सकते थे? यह निन्दा नहीं है। उन पदों व वस्तुओं से बढ़कर बात बतलाई गई है। जिसकी जहाँ तक गति व पहुँच है, वहाँ तक ही उनकी बात गाई है। सर्वोपरि तो सत्तलोक व सन्तों को बतलाया है। ठीक है।

428. रामचन्द्र को 'कोटि विष्णु सम पालन कर्त्ता' तुलसीदास ने कहा है तो क्या उनकी आस्था विष्णु में नहीं रही? तुलसीदास के कहने का तात्पर्य यह है कि राम का पद विष्णु से बड़ा है। 'बड़े की बात बड़े पहचाना' बड़ों की तुलना बड़ों से होती है। यदि आप विष्णु की महिमा जानते हैं तो कई गुनी महिमा उनसे राम की समझ सकते हैं। गीता में भी कहा है त्रैगुन विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन। बड़ी दूरी के नापों में बड़ी दूर की इकाई ली जाती है, जैसे खगोल शास्त्र में प्रकाश वर्ष व रचना के नाप में पालंग और जोजन। तत्त्व पाँच के बानवे हो गये। अखण्ड परमाणु के खण्ड हो गये। तत्त्वों का रूपान्तर होने लगा। एटम बम्ब व हाइड्रोजन बम्ब बनने लगे हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि वे तत्त्व, एटम आदि नहीं रहे। वरंच उनसे बढ़कर खोज हुई, ऐसा कहना चाहिये।

429. अनन्त में अनन्त समाया है, अनन्त के अवयव भी अनन्त होते हैं। पारावार नहीं है। सूर्य मण्डल के कण कण में सूर्य मण्डल हैं।

जिमि कदली के पात में पात पात में पात

430. गणित में अनन्त श्रेणियों को लेकर उनका मूल्य अंकित किया है, जैसे

$$1+\frac{1}{2}+\frac{1}{4}+\frac{1}{8}+\frac{1}{16}+\frac{1}{32}\ldots\text{इत्यादि}$$

अनन्त राशियों का जोड़ = 2

431. माया भी अपार है। माया, ब्रह्म, विद्या, अविद्या का कोई पार नहीं पा सकता। फिर भी माया माया ही है। उसका मूल्य ब्रह्म से कम है, ब्रह्म का पार ब्रह्म से, और पारब्रह्म का सत्तपुरुष से। सत्तलोक और सत्तपुरुष अविनाशी हैं। बाकी सब रचना नाशमान है। ये अनुमान से बाहर की बातें हैं। मगर फिर भी अनुभव के भीतर हैं।

अनुभव से वह जाना जाई।
शब्द बिना अनुभव नहिं पाई ॥

— राधास्वामी साहब

432. फिर आलोचक महाशय कहते हैं कि रावण की महिमा राम से कहीं अधिक की गई है। यह भ्रम मात्र है। रावण की यथार्थ महिमा बतलाने से शायद वह समझते हैं कि रावण से बड़े पद की महत्ता घट गई। सो नहीं। ऐसा प्रतापी रावण था कि राम ही उससे टक्कर ले सकते थे। रावण त्रिकुटी का ब्रह्म वा राम त्रिकुटी से ऊपर सुन्न दसम द्वार के धनी अव्यक्त ब्रह्म हैं। रावण से बढ़कर राम हुए,

घटे नहीं। ब्रह्म विद्या का निरूपण सन्तों ने अपने ढंग से व अपनी बोली में किया है। आलोचक महोदय कहते हैं कि किसी भी प्रकार से प्रसिद्धि पाने के लिए यह उलटफेर किया गया है व और भी प्रमाण देते हैं :

फूलदास कहे स्वामी सूझा।
है कबीर तुलसी नहिं दूजा ॥
जो कबीर सो तुम हो स्वामी।
दया करो मोहिं अन्तरजामी ॥

433. यहाँ कबीर साहब व तुलसी साहब का समान पदत्व ही बतलाया है। वह ठीक है। दोनों परम सन्त थे।

सन्त सभी धुर घर से आवें।
भेद कुल्ल मालिक का गावें ॥

— राधास्वामी साहब

434. सन्त सब सत्तपुरुष के अवतार हैं, इसलिये एक हैं। कबीर साहब, जगजीवन साहब, पलटू साहब आदि सब सन्त एक हैं व एक ही बात कहते हैं। कहावत मशहूर है कि रामो न द्वि भाषते **यानी राम दूसरी बार बदल कर नहीं बोलते। सोई बात कही भी है। प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए तुलसी साहब स्वयं कबीर साहब बन बैठे, यह कहना अलीक[1] है। पत्थर पर राम नाम लिखने से वह तैरने लगता है। यह बात अब भी सही होनी चाहिये। इस अकाट्य तर्क**

---

1. बे सिर पैर का, मिथ्या, झूठ।

को वह निन्दा समझते हैं।

435. फिर आगे चलकर तेरह व्यक्तियों की बातें जिनसे तुलसी साहब पूर्व जन्म में मिले थे, कहते हैं कि तेरह को परम पद मिला, तुलसी साहब का फिर जन्म क्यों हुआ? परम पद क्यों नहीं मिला? इससे मालूम होता है कि आलोचक अवतारवाद को नहीं मानते। ब्रह्म के दस अवतार हुए। इसी तरह परम सन्त कबीर साहब जब से आये, सन्त बराबर पृथ्वी पर अवतार लेते आ रहे हैं। एक बार आवें, दस बार आवें, अलग-अलग आवें। सत्तपुरुष जिसको चाहें जीवों के उद्धार के लिए भेजें।

436. फिर कहते हैं, दरिया साहब का नाम नौ जगहों पर क्यों लिया? रामायण में तुलसी नाम कई बार आया है। कबीर बचनावली में कबीर साहब का नाम बार बार आया है। इसमें क्या गड़बड़ी हुई? तुलसी साहब हाल में ही हुए हैं। दरिया साहब यदि दो हुए तो क्या हुआ, वे उनका उल्लेख कर सकते हैं। दोनों ही दरिया साहब साध गति के थे। इसलिये उनमें से कोई भी समझ लें।

437. आलोचक महोदय ने इस बात पर बड़ा जोर दिया है कि तुलसी साहब रघुबा (रघुनाथ राव पेशवा) के लड़के न थे। अगर वह पेशवा खानदान में होते तो इतिहास की पुस्तकों में उनका नाम जरूर होना चाहिए था। ज्ञात हो कि नाना फड़नवीस ने रघुबा का अंग्रेजों से मिल जाने के कारण पेशवाई का हक मार दिया था। परन्तु रघुबा के

लड़कों का हक कायम था। यह झगड़े बहुत दिनों तक चलते रहे। यही कारण था कि रघुबा के खानदान वाले पेंशन पाते थे और पेशवाओं का सा बरताव उनके साथ उस समय तक न हुआ जब तक सब मामले तय नहीं हुए। तुलसी साहब गद्‌दी पर बैठने से पहले ही भाग निकले। ऐसी अवस्था में आगामी इतिहासकारों ने अगर उनका जिक्र नहीं किया तो कोई ताज्जुब नहीं है। पर यदि Marattha Chronicles (मरहठों के मूल इतिहास ग्रन्थ) देखे जावें तो उनका नाम अवश्य मिलेगा। मगर इस बात की जरूरत ही क्या है? तुलसी साहब तो सदा अलग थलग और घरवालों से दूर ही रहे। सिर्फ बाजीराव से जब कि वे बिठूर में नजरबंद थे, एक बार मिले और बड़ी चेष्टा करने पर भी वहाँ से भाग निकले। इसी घटना के कारण लोग आम तौर पर जान गये कि तुलसी साहब पेशवा के बड़े भाई व गद्‌दी के हकदार थे। पर तुलसी साहब के लिए यह बात कोई प्रशंसा की न थी। हां, पेशवा कुल को इस बात का गौरव जरूर होना चाहिये कि उनके यहाँ परम सन्त पैदा हुए।

438. सम्वत् 1618 में तुलसीदासजी ने घट रामायण की रचना की। पर उसमें प्रचलित धर्मों की कुरीतियों का ऐसा खुले शब्दों में खंडन था कि रोजगारी लोग यानी पण्डित और भेष जो काशी में उस समय बहुत थे, बरदाश्त न कर सके और लड़ने पर आमादा हो गये। इसलिये इस ग्रन्थ को गुप्त कर दिया। फिर सम्वत् 1631 में 'रामचरितमानस'

लिखा जिससे लोग बहुत खुश हुए। इस ग्रन्थ में गूढ़ बातों को छिपाकर इस ढंग से लिखा कि उन पर साधारण लोगों की दृष्टि न पड़े और इसलिये जनता ने इसको खुशी खुशी अपनाया हालाँकि जो लाभ घट रामायण पढ़ने व अनुसरण करने से मिल सकता था, उससे वंचित रहे। आलोचक महाशय प्रश्न करते हैं कि तुलसीदास जी ने भय से ऐसा काम क्यों किया जिससे संसार का अपकार हुआ अर्थात् मूल सन्त मत की जगह लोगों में राम भक्ति क्यों दृढ़ाई?

439. सत्य तो यह है कि सन्त जो मुनासिब समझते हैं, वही करते हैं, न तो किसी के भय से और न किसी के आग्रह से। 'घट रामायण' प्रकट होने से जिनका लाभ होने वाला था, वह उनके निकट खिंच आये और चरणों में लग गये। जो पात्र नहीं थे, उनमें जलन और ईर्ष्या पैदा हुई। उसको बुझाने के लिए 'रामचरितमानस' लिखा। चाहे असली भेद से खाली रहे, पर सन्त मुख बानी पढ़ने से उनका भी बहुत कुछ लाभ हुआ। चूँकि संसार में सब जीव एक श्रेणी व अधिकार के नहीं हैं, इसलिये उनके परमार्थी भाग भी भिन्न भिन्न हैं। तुलसीदासजी ने जो जैसा था, उसके लिये वैसी ही वस्तु रच डाली।

440. इसके अतिरिक्त रामचरितमानस रचने के बाद भी हर अधिकार के जीव उनके दर्शनों आते रहे और उनमें से जो सन्त मत ग्रहण कर सकते थे, उनको उसी का उपदेश दिया। चूँकि सन्त संसार के कुदरती गुरु हैं, उनको अधिकार

है कि जीव को जिस तरह चाहें संभालें। उनको जीव के हेतु देह धारण करना व अपनी कार्रवाई उस देह से इस तरह करना होता है कि अधिक से अधिक सबका लाभ हो। फिर जो ऐसे महान् पुरुष हैं उनको संसार का क्या खौफ और भय है जो सच्चे ग्रन्थ को छिपाकर ऐसी बातों का प्रचार करें जो सन्तमतानुसार असत्य और भ्रम में डालने वाली हों। इसका उत्तर यह है कि सन्त अपनी दयालुता का अंग नहीं छोड़ते। उनको जबरदस्ती अमृत देना भी गवारा नहीं है और जीवों का उसी में लाभ है जो खुशी से ग्रहण कर सकें। और यह कहना ठीक नहीं है कि सन्त चूँकि समर्थ हैं उनका कोई विरोध नहीं कर सकता है। वह समर्थ अवश्य हैं पर जाहिर में अन्य जीवों ही की तरह बरतते हैं। उनको करामात दिखला कर अपनी पूजा व प्रतिष्ठा कराना मन्जूर नहीं। इसीलिये कबीर साहब को मगहर जाना पड़ा, पलटू साहब को जान बचाकर भागना पड़ा। चैतन्य महाप्रभु अपना ग्रन्थ गंगा में फेंक कर बंगाल छोड़ बिन्द्रावन चले गये। **जब मसलहत और मौज हुई तो डटे भी रहे, जैसे सरमद और मंसूर। उन्होंने अपने खून से जमीन को सींच कर जीवों का भाग बढ़ाया।**

441. आलोचक महोदय की दृष्टि इन महान् उदाहरणों पर नहीं गई। खुद श्रीकृष्ण महाराज जिस समय मौजूद थे और जहाँ ऊधो और विदुर जैसे भक्त थे, वहाँ कंस और शिशुपाल जैसे अनेक विरोधी भी थे। यह संस्कार की बात है।

442. तुलसी साहब ने पूर्व जन्म की और हाल के जन्म की बातें वर्तमान रूप में कही हैं, यह ठीक है। एक ही व्यक्ति होने से ऐसा कहा है।

443. घट रामायण की विशेषता बुद्धि गम्य न हुई, इसलिये मरघट रामायण उसको कह दिया तो ना-समझी के कारण कोई हर्ज नहीं। तुलसी साहब व और सन्त हो गये हैं व होंगे, घट रामायण का अन्त नहीं होगा, विस्तार भले ही कितना होता जावे, अभी अस्पष्ट रूप में, तो फिर उत्तरोत्तर स्पष्ट रूप में। तुलसी साहब के बाद जो परम सन्त, परम पुरुष पूरन धनी कुल्ल मालिक के अवतार हुए हैं, उनकी बानी को देखें। सन्त मत कितनी सरल भाषा में रक्खा है। तुलसी साहब ने कहा है कि पण्डितों की धूमधाम के कारण घुमा फिराकर जो कहना था सो कहा। कहना आवश्यक हुआ, इसलिये कह डाला।

तदपि कहे बिनु रहा न जाई

444. 'मरघट रामायण' हँसी में कहा तो वह अर्थ भी यथार्थ से अधिक दूर नहीं। मरघट ज्ञान का कितनों को अनुभव होगा। मरघट जाते तक तो जगत की क्षणिकता पग पग पर मालूम पड़ती है। यह वृत्ति परमार्थ की सहायक है। जग से उदास रहना परमार्थियों का काम है।

445. आलोचक महोदाय को अपने श्रद्धेय राम की यथार्थता का बोध अच्छा नहीं रुचा, पर उन्होंने यह नहीं

विचार किया कि घट रामायण में केवल राम ही की यथार्थता पर नहीं, प्रत्युत कृष्ण, पांडव व मत मतान्तरों पर भी प्रकाश डाला है जैनी, मुसलमान, सिख, कबीर पंथी, किसी को नहीं छोड़ा।

446. घट रामायण में रामायण का वाच्यार्थ नहीं लिया गया है। लक्ष्यार्थ लिया है। रामायण का अर्थ यथार्थता, वास्तविकता, हकीकत, कुल कहानी या भेद है। वही लेना चाहिये। घट के मंथन में जाति पाँति धर्म का कोई भेद भाव नहीं। मनुष्य मात्र के घट का मंथन एक है। मनुष्य मात्र की असलियत एक है। उसकी शारीरिक बनावट, व्यापार, व्यवहार, मानसिक गठन, सब एक है। फिर आध्यात्मिक गठन क्यों न एक हो। यही सच्चा एक धर्म है। नहीं तो जो जहाँ तक पहुँचा वहीं तक की गाता है व उसी को सच्चा एक परमात्मा समझता है। जैसी गति तैसी मति। इसके भेद भाव से संसार में अनेक मत व अनेक राह चल गये हैं। सन्त मत के अनुसार ही सबका सच्चा निर्वाह है, और कोई दूसरा उपाय नहीं। अन्त में उसकी विजय निश्चित है। सत्य की जीत सदैव होती आई है। सन्त मत परम सत्त मत है।

447. घट रामायण गागर में सागर है। उसमें तुलसी साहब ने क्या नहीं भरा। जितने मत मतान्तर शाखा सम्प्रदायें हैं, उनका कुछ न कुछ उल्लेख उसमें किया है। फिर आलोचक महोदय का कहना है कि उसमें तुलसी साहब ने सभी कुछ भरने का प्रयत्न किया है, वृथा है।

448. पिण्ड में ब्रह्माण्ड भर की वस्तुएँ और ब्रह्माण्ड से भी अधिक वस्तुएँ भरी हैं। ऐसी कौन सी चीज है जो अखिल विश्व में हो और वह पिण्ड में न हो। दोनों एक ही हैं। एक बड़े पैमाने पर, दूसरा छोटे पैमाने पर। है वहीं नक्शा। जब ही तो "घट ही में गंगा" आदि कहा है। जो जो घटनायें विश्व में घटित होती रहती हैं, सबकी प्रतिच्छाया पिण्ड में भी पड़ती है। इसीलिये पुराने ऋषियों के विषय में कहा है कि वे जगत को हस्तामलक[1] की भाँति जानते थे।

जानहिं तीनि काल निज ज्ञाना।
करतल गत आमलक समाना ॥

—बाल काण्ड

449. कहा है, तिल की ओट पहाड़ है। तिल में प्रवेश हुआ कि अन्तरी रहस्यों का उद्‌घाटन शुरू हुआ। यह तिल दोनों नेत्रों के मध्य में है जिसका भेद तथा उस मार्ग पर चलने का तरीका केवल सन्त बतलाते हैं। तुलसी साहब ने घट रामायण में जिसे नहीं भरा, वह भी तो घट में ही है। ईसा मूसा मरियम मुहम्मद जो कुछ भूत वर्तमान भविष्य में पाया जावे सो सब पिण्ड में मौजूद है।

450. कहीं पर क्रम व्यति-क्रम की बात कही है, यह सब समाधान योग्य है। भूत भविष्य वर्तमान उनके हृदय पटल पर समान रीति से अंकित हैं। वह तीनों काल में मौजूद हैं।

---

(1) हाथ में लिया हुआ आँवला।

सन्त नित्य अवतार हैं। पुरानी घटना को आज की कह देवें या आज की बात पुरानी करके दरसावें, क्योंकि अन्त में फिर सब एक हैं। एक से अनेक व अनेक से एक। शम्स तबरेज ने फरमाया है :—

दुइ अज खुद बरूँ करदम यके दीदम दो आलम रा
यके गोयम यके जोयम यके दानम यके ख्वानम

यानी मैंने अपने अन्तर से द्वैत निकाल दिया। फिर सारी रचना एक नजर आई। मैं एक ही को याद करता हूँ, उसी एक की तलाश करता हूँ, उसी एक को जानता हूँ और उसी एक का गुन गाता हूँ।

451. तुलसी साहब परम सन्त जब स्वयं कहते हैं कि पूर्व जन्म में वे तुलसीदास थे व सम्वत् आदि का उल्लेख करते हैं तो विश्वसनीय है। कितनी तारीखें इतिहास में गड़बड़ पाई जाती हैं। कौन ठीक कर सकता है? जब वे अपनी बातों का स्वयं प्रमाण तिथि वार सहित बतलाते हैं तो विश्वास रखना चाहिये कि ऐसा ही होगा और है।

452. यदि कोई यह खयाल करे कि तुलसी साहब ने अपने को तुलसीदास इसलिये बतलाया कि बड़े समझे जावें तो वह अनजान है। कौन नहीं जानता कि सन्त क्या हैं। उनसे ब्रह्म पारब्रह्म सभी पैदा हुए हैं। मौलाना रूम ने कहा है :—

आफ्ताब मतलए अनवार जात।
रोशन अज माहे जबीने औलियास्त ॥

यानी जिस स्थान से ब्रह्म का उत्थान हुआ, उसको सन्तों की पेशानी (माथे) से रोशनी मिलती है।

453. मौलाना रूम ने और भी फरमाया है :—

मन आं वक्त करदम खुदारा सिजूद।
कि जातों सिफाते खुदा हम न बूद ॥

(मैंने मालिक का उस वक्त सिज्दा किया यानी मत्था टेका जब कि खुदा और उसकी कुदरत पैदा भी नहीं हुई थी।)

454. तुलसी साहब की वाणी की टीका सन्त ही कर सकते हैं। बिना आध्यात्मिक पूरे पूरे अनुभव के कोई क्या टीका करेगा? तुलसी साहब के बाद बराबर सन्त होते आये हैं और जो कुछ तुलसी साहब ने फरमाया है, उसे वे सही कहते व मानते हैं। तुलसी साहब कोई साहित्यिक नहीं थे। वे तो अनुभवी महापुरुष व इलहाम वाले थे। इसलिये साहित्य की दृष्टि से उनकी बानी की आलोचना करना वस्तु की यथार्थ कीमत से ना-वाकफियत जाहिर करना है। 'कंचन काँच पलट शठ लेहीं' सदृश है। रत्न को हाथ से खो देना है। अनुभव हो तो ठीक ठीक पता लग सकता है। फिर ठीक मालूम हो जावेगा कि तुकबन्दी व तुक्कड़बाजी या शायरी नहीं बल्कि अन्तरी भेद है।

455. 'सुधा' मासिक पत्रिका भाद्र तुलसी सम्वत् 306 में 'सन्तों का साहित्य' नाम से एक लेख (लेखक पं. रामनारायण मिश्र, एम. एस-सी.) छपा था। वह पूरा लेख पढ़ने योग्य है। उसकी कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं :

"सन्त अपने सतत अभ्यास के कारण इन्द्रियों और मन के परे उड़कर आत्मा के विशाल क्षेत्र में क्रीड़ा करता है। अतएव वह जो कुछ कहता है, वह अलौकिक होता है। वह कविता अथवा पिंगल शास्त्र के किसी नियम से बँधा हुआ नहीं चलता। उसकी वाणी स्वच्छन्दता के उस अव्यक्त गगन में विहार करती है, जहाँ सांसारिक विकारों का धुआँ पहुँच ही नहीं सकता। उसे सन्त जन निर्मल चैतन्य देश कहते हैं। अतएव आध्यात्मिक दृष्टि से सन्तों का साहित्य सर्व श्रेष्ठ है।"

456. प्रसिद्ध है, 'सन्त न विद्या पढ़ते कोई, उनके अनुभव समुन्द समानी।' वे तो आम फहम जबान में जनता को चेताते व सच्ची उपासना की ओर लाते हैं। फिर उनकी भाषा आदि पर ध्यान देकर भावों की उत्तमता का कोई विचार न करना, रत्नों को धूल में फेंकना है।

457. तुलसीदास ने कहा है :–

कवि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू।
सकल कला सब विद्या हीनू ॥
कवित बिबेक एक नहिं मोरे।
सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे ॥
कवि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ।
मति अनुरूप राम गुन गावऊँ ॥
जो अपने अवगुन सब कहऊँ।
बाढ़ई कथा पार नहिं लहऊँ ॥
ता ते मैं अति अलप बखाने।
थोरे महँ जानिहहिं सयाने ॥

समुझि बिबिध बिधि बिनती मोरी।
कोउ न कथा सुनि देहहि खोरी ॥
एतेहु पर करिहहिं जे संका ।
मोहिं ते अधिक ते जड़ मति रंका ॥
कहँ रघुपति के चरित अपारा।
कहँ मति मोरि निरत संसारा ॥

(मैं न तो कवि हूँ और न बोलने में चतुर ही। मैं सब कलाओं और सब विद्याओं से हीन हूँ। कविता की कुछ भी परख मुझे नहीं है। यह बात मैं कोरे कागज पर लिखकर कहता हूँ। (लेखबद्ध बात अधिक प्रमाणित मानी जाती है।) न तो मैं कवि हूँ और न चतुर कहाता हूँ। मैं तो अपनी बुद्धि के अनुसार रामचन्द्रजी के गुण गाता हूँ। जो मैं अपने सब अवगुणों का बखान करूँ तो कथा बहुत बढ़ जायगी और दोषों का पार न पाऊँगा। इसलिये मैंने अपने अवगुणों का वर्णन बहुत ही थोड़े में किया है। बुद्धिमान लोग थोड़े ही में जान लेंगे। मेरी इस अनेक प्रकार की विनती को समझ कोई भी कथा सुनकर मुझे दोष न देगा। और इतने पर भी जो शंका करेंगे वे मुझसे भी अधिक मूर्ख और मन्द मति है। कहाँ अपार रामचरित्र! और कहाँ संसारी झगड़ों में फँसी हुई मेरी बुद्धि!)

458. साफ है, "भाव अनूठे चाहिये, भाषा कोऊ होय।" आपको तो भाव देखने चाहिये। तत्त्वों की ओर ध्यान देना सार्थक होता है।

459. सन्तों ने अपनी कविता साहित्यानन्द के लिए नहीं लिखी। यति भंग, निम्न श्रेणी का अनुप्रास, श्रुति कटु शब्द, अप्रिय व्यंग मिश्रित कथन, क्लिष्ट अर्थ, अपरिचित शब्दावली,

इन सबसे सन्तों ने सेवा ली है। "बानी तो पानी भरे, चारों वेद मजूर।" (कबीर)

460. हमें तो उनकी सच्ची सच्ची बातें, ऊँचा उपदेश, हृदयंगम करके अपना कल्याण करना चाहिये। निन्दा करके पाप नहीं बढ़ाना चाहिये। सूर्य की ओर थूकने से क्या लाभ? सन्त कबीर साहब तो बिल्कुल निरक्षर थे पर वे भक्त शिरोमणि रामानन्दजी को भी जो उनके जाहिरा गुरु थे, चेताने का सामर्थ्य रखते थे। पतंग यह नहीं देखता कि प्रकाश कहाँ से आता है। उसको तो केवल प्रकाश से काम। कहीं से आवे। यदि जिज्ञासा है तो सन्तों के पुनीत ज्ञान की ओर देखना चाहिये।

461. विद्वान समालोचक सन्तों व असन्तों के लक्षणों से भली भाँति परिचित होगा सो वह परम सन्त तुलसी साहब को परम असन्त समझता है, यदि ऐसा है तो उसकी समझ व परख की बलिहारी! चुप होने के सिवा अब अधिक क्या कहा जावे।

462. तुलसी साहब की भेदभरी बानी—

पैठ मन पैठ दरियाव दर आप में।
कँवल बिच जहाज में कमठ राजै ॥1॥
होत जहँ सोर घनघोर घट में लखै।
निरख मन मौज अनहद्द बाजै ॥2॥
गगन की गिरा पर सुरत से सैल कर।
चढ़ै तिल तोड़ घर अगम साजै ॥3॥

दास तुलसी कहै पछिम के द्वार पर।
साहिब घर अजब अद्भुत बिराजे ॥4॥

— — — —

स्रुति चढ़ गई आकाश में सोर भया ब्रह्मण्ड ॥
सोर भया ब्रह्मण्ड अण्ड में धधक चढ़ाई।
जब फूटा असमान गगन में सहज समाई ॥
सुन्न सहर के बीच ब्रह्म से भया मिलापा।
परमातम पद लेख देखकर भया हुलासा ॥
तुलसी गति मति लख पड़ी निरख लखा सब अण्ड।
स्रुति चढ़ गई अकाश में सोर भया ब्रह्मण्ड ॥

463. 'जब फूटा असमान' इसको आलोचक महाशय पढ़ते तो वे और भी आपे से बाहर हो जाते। उनको अपना कथन और भी पुष्ट होता दिखलाई पड़ता कि तुलसी साहब को भूगोल और नक्षत्र मण्डल का ज्ञान कम था। क्या आसमान भी कोई फूटने की चीज है। ऐसे ही प्रसंग पर एक साहब कहते हैं कि कुरान के खुदा को भूगोल का ज्ञान नहीं था। कुरान की एक आयत में आया है कि आसमान में गुबार फूटा व फरिश्ते आये व मुहम्मद साहब को उपदेश दिया कि तूने देख लिया, जाओ काफिरों को चेताओ आदि। वे कहते हैं कि आसमान कैसे फटा, इत्यादि।

464. आलोचक महोदय कहते हैं कि तुलसी साहब ने ध्रुव की मुक्ति का प्रतिवाद ठीक नहीं किया। लोग कहते हैं कि ध्रुव ने तपस्या की व तपस्या कर अटल पद को प्राप्त

हुए जो आज तक ध्रुव तारे के रूप में आकाश में स्थिर विराजमान हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि यह मुक्ति कैसी। आसमान के तारे सब नाशमान हैं। जब तारा टूटेगा तब अटल कहाँ रहा। आलोचक महोदय भेद भरी बातों को क्या समझें कि आसमान फटता या फूटता है। जब उनको पूरे गुरु मिले होते तब वे सच्ची हकीकत को समझते।

465. आलोचकजी फिर कहते हैं कि महासुन्न के परे सत्त की कल्पना की तुलना किसी सीमा तक शंकर की परमार्थी सत्ता अथवा काँट के न्यूमिनन से हो सकती है, फिर भी शंकर की सी विशद् व्याख्या और तर्क का नितान्त अभाव है।

466. शंकर की पहुँच तो विवर्तवाद तक ही है। उनका ब्रह्म सर्व व्यापक है, ब्रह्म के सिवा दूसरा कोई तत्त्व नहीं। अज्ञान व भ्रम मात्र है। सन्तों का परम तत्त्व एकदेशी व सर्वदेशी दोनों है।

सब में हूँ और सबसे न्यारा।
जानेगा कोई गुरु का प्यारा ॥

467. कह दिया है कि कबीर साहब तुलसी साहब एक ही कोटि के सन्त थे। सन्त कब मूर्ति पूजक हुए हैं? कबीर साहब कहते हैं, "पाहन पूजे हरि मिले तो मैं पूजूँ पहाड़।" ऐसा ही तुलसी साहब ने कहा है, "आतम को छाँड़ि पूजे पाहन जाई।" सब सन्तों ने वेद और राम के परे की बातें कही हैं। इसको अनसमझ लोग निन्दा कहते हैं।

468. गुरु शिष्य परम्परा ठीक है, पर जभी तक जब दो नजर आते हैं। जब 'ऐसे पद में जाय समाई, एक दोय कुछ कहा न जाई' तब आप क्या कहेंगे?

469. तुलसीदासजी ने घट रामायण लिखी थी, वह गंगा में बहा दी गई। उसमें क्या था, कौन जाने। सिर्फ रामायण का ही अन्तरी भेद उसमें वर्णित था, कि और भी कुछ था, कि अब नूतन संस्करण तुलसी साहब कृत के अनुसार उसमें मत मतान्तर व शाखा सम्प्रदायों का भी उल्लेख था, कौन जाने। तुलसी साहब के नूतन संस्करण घट रामायण में अपने पूर्व जन्म से लेकर हाल के जन्म तक का सब हाल एकत्रित कर दिया। महाभारत में पहले कम श्लोक थे। बाद में बढ़ गये। ऐसा ही भविष्य पुराण का हाल है जिसमें चन्द्रगुप्त तक का वर्णन आया है, आगे का हाल गोलमाल। सम्भव है कि तुलसी साहब ने घट रामायण को नया रूप दिया हो।

470. अन्त में घट रामायण से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करके यह लेख समाप्त किया जाता है।

बिन सतसंगति राह न पावै।
सत्त सत्त तुलसी गोहरावै ॥
जग अजान कछु मरम न जाना।
डिंभि पखंडि भेष भरमाना ॥
ये जग रीति जीति नहिं पावै।
भेष पंथ सब पोल चलावै ॥

माला कंठी सेली माही।
भूले पंथ भेष यह राही ॥
जो कोई मंत्र जंत्र को जानै।
उनको बड़े सन्त करि मानै ॥
जो रथ गाड़ी बैल चलावै।
जग सोई बड़े साध ठहरावै ॥
माया मोह बँधा संसारा।
जिनको साधू कहै लबारा ॥
सन्त रीति रस जगत न जाना।
डिंभ करै तेहि सन्त बखाना ॥
सन्त दयाल दरस नहिं चीन्हा।
उन बिन फिरै कर्म लौलीना ॥
वे दयाल के दरसन पावै।
मुक्ति राह और अगम लखावै ॥
जिनके बड़े भाग जग माई।
नित प्रति सन्त चरन लौ लाई ॥
काल जाल और जम की फाँसी।
दरसन सन्त कर्म भये नासी ॥
वे साधू बिरले जग माई।
जग जल में जस कँवल रहाई ॥
वे सज्जन सत साध कहावें।
उनकी गति मति बिरले पावें ॥
सन्त भेद भिनि कोउ कोउ जाना।
भेष डिंभ सब भर्म भुलाना ॥

ये सब जग में कीन्ह दुकाना।
या में जगत भेष लपटाना ॥
जीव लोक की राह नियारी।
कृपा सन्त बिन पावै न पारी ॥
बार बार नर देह न पावै।
ये तन दुरलभ सब गोहरावै ॥
सार भेद सन्तन ने जाना।
सो ग्रन्थन में नाहिं बखाना ॥
साखी सब्द पढ़ै जो कोई।
वस्तु न पइहै सिर धुन रोई ॥
कह्यो कबीर सार पद गुप्ता।
परगट माहिं लखो सब थोथा ॥
ये तो सन्त गुप्त मत भाखी।
ता की नकल ग्रन्थ में राखी ॥
ढूँढ़ै अब या में अज्ञाना ।
पचि पचि मूरख भये हैराना ॥
ये सब ग्रन्थ देखि हम भूला।
साखी सब्द माहिं बहु झूला ॥
आँखी फार फार हम जोवा।
जनम अकारथ बादहि खोवा ॥
सब्द साखि जो पढ़ि पढ़ि चलि है।
सन्त दृष्टि बिन कछू न मिलि है ॥
ता से सन्त चरन सिर दीजै।
कारज और बात में छीजै ॥

हम जूझे ग्रन्थन के माई।
केहि विधि हमरे हाथे आई ॥
जगत भेष नहिं भेद बिचारै।
ये कहा समझै सार असारै ॥
दीन होय सतसंगत तोला।
जा से सूझे वस्तु अमोला ॥
तौले दीन होइ निज दासा।
जो स्रुति सार मिलै उन पासा ॥
हम तो सरन सन्त कर लीन्हा।
और बात नहिं आई यकीना ॥
जो कोई लाख लाख समझावै।
हमरे मन में एक न आवै ॥
कहो को खोज सार कर दीन्हा।
हम तो स्वामी तुलसी चीन्हा ॥
सन्त कही और दास कबीरा।
जो जो अगम पंथ पद धीरा ॥
जिन जिन स्वाद पाइ पद हेरा।
होई हौं उन चरनन को चेरा ॥
चरन लाग तुलसी के तीरा।
उनहिं लखाया अद्भुत हीरा ॥
अब कहुँ चित्त लगै नहिं भाई।
तुलसी वस्तु अमोल लखाई ॥
बार बार चरनन सिर नाई।
करिहै तुलसी मोर सहाई ॥

अब तौ पोढ़ पोढ कर पकड़ा।
तुलसी चरनन में मन जकड़ा ॥
और कहूँ मोहिं बोध न आवै।
जो कोइ कोटि कोटि समझावै ॥
समझि परा सब बात बिधाना।
तुलसी बिन सूझे नहिं आना ॥



अध्याय 14

सन्तों का साहित्य

(पं. रामनारायण मिश्र एम. एस-सी.)

471. सन्तों का साहित्य ही निराला है। जो कुछ सन्तों की वाणी से निकलता है, उसी में साहित्यिक गुण आ विराजते हैं। सन्तों के श्री मुखों से जिन पवित्र शब्दों की सृष्टि होती है, वह उनकी एक विशेष तन्मयता की अवस्था से अद्भुत होकर छन्दों का रूप ग्रहण करती है। पूजनीय सन्तों ने अपने उच्चतम उद्गारों को पद्य रूप क्यों दिया, इसका सर्वप्रथम एक प्रमुख कारण तो उनकी मौज ही है। दूसरा कारण भी स्पष्ट है। वह है जग दुर्लभ उत्तम उपदेशामृत को काव्यानुपान के साथ छन्दों के हृदयग्राही पात्रों में जगद्विकार के आतंक से ग्रस्त प्राणियों के सम्मुख रखना। आध्यात्मिक शिक्षा के वे निगूढ़तम सिद्धान्त, जिनको सामान्यतः समझ न सकने के कारण हम भ्रम से नीरस कह कर साहित्य-क्षेत्र से परे मानते हैं, जब हमारे सामने ललित छन्दोलहरी के प्रवाह में क्रीड़ा करते हुए आते हैं, तो हमारी साहित्यिक बुद्धि उन्हें देखकर आनन्द से पुलकित हो नाच उठती है। सचमुच आध्यात्मिक सिद्धान्तों को साहित्य का रूप देकर हमें हृदयंगम कराने का महा परोपकारी प्रयत्न करके सन्तों ने हमें अपना चिरऋणी बना लिया है। एतदर्थ

उनके नाम हमारे लिए प्रातः स्मरणीय हैं।

472. सन्त जन अपनी समस्त चित्त-वृत्तियों का निरोध करके अपनी समस्त मानसिक एवं आध्यात्मिक क्रियाओं को एक स्थान में केन्द्रीभूत करके चिदानन्द के उस अनन्त स्रोत में, जहाँ से प्रादुर्भूत होकर प्रमोद की अनेक धाराएँ ब्रह्माण्ड में वितरित होती हैं, जिनके एक कण-मात्र की उपलब्धि लोगों को आनन्द विभोर कर देती है, कवियों को विक्षिप्त बना देती है, उसी अलौकिक आनन्द के उद्‌गम स्थान में निमग्न होकर, लोकोपकार की भावना में दत्तचित्त हो, जिन ध्रुव, सनातन और अभ्रान्त सत्य के सार रूप शब्दों का गान करते हैं, वे प्रत्येक भगवदानुरागी जन के लिए सूत्र-रूप हैं। सन्तों की एक-एक साखी में, एक-एक शब्द में, सत्य, शिव और सुन्दर का ही प्रतिबिम्ब है।

473. सन्तों ने जिस साहित्य का निर्माण किया है, वह मूल में सामान्य से विभिन्न है। प्रत्येक सन्त कवि होता है; किन्तु प्रत्येक कवि सन्त नहीं। क्यों? इसलिये कि सन्त जन "कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभू" की ही दिव्य ज्योति से ज्योतिर्मय हैं। सांसारिक कवि कविता के नियमों से बंधा हुआ कैदी की तरह एक कतार में, आगे और पीछे के साथियों से बेड़ियों में जकड़ा हुआ चलता है। उसकी कविता का विषय मन और इंद्रियों की दौड़ के भीतर ही रहता है। उसे अपनी कविता को शृंगारों से अलंकृत करने का, अनुपम भावों से गर्भित करने का तथा सुन्दर, सुडौल, कर्ण-मधुर सरस शब्दावली

में परिबद्ध करने का शौक होता है और वह अपने इसी शौक में मस्त रहता है। कोई कोई कवि इसी मस्ती को अलौकिक आनन्द समझकर फूला नहीं समाता। सन्त का दायरा इससे कहीं अधिक विस्तृत होता है।

474. सन्त अपने सतत अभ्यास के कारण इन्द्रियों और मन से परे उड़कर आत्मा के विशाल क्षेत्र में क्रीड़ा करता है। अतएव वह जो कुछ कहता है, वह अलौकिक होता है। वह कविता अथवा पिंगल शास्त्र के किसी नियम से बँधा हुआ नहीं चलता। उसकी वाणी स्वच्छन्दता के उस अव्यक्त गगन में विहार करती है, जहाँ सांसारिक विकारों का धुआँ पहुँच ही नहीं सकता। उसे सन्तजन निर्मल चैतन्य देश कहते हैं। अतएव आध्यात्मिक दृष्टि से सन्तों का साहित्य सर्वश्रेष्ठ है।

475. हिन्दी में संतों के साहित्य का आरम्भ प्रथम संत सद्गुरु कबीर साहब से ही हुआ। इन महात्माजी का जन्म सम्वत् 1455 माना गया है। मिश्र बंधुओं ने भी कबीर-कसौटी के आधार पर इसी सम्वत को स्वीकार किया है। प्रसिद्ध विद्वान इविलियन अण्डरहिल (Evelyn Underhill) ने कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ कृत 'वन् हंडरेड पोयम्स ऑफ कबीर' नामक अनुवाद ग्रन्थ की भूमिका में कबीरदासजी का जन्म 1440 के लगभग माना है। अण्डरहिल साहब के लेख से यह स्पष्टतया मालूम नहीं होती कि उनका मतलब ईसवी सन से है या विक्रमी सम्वत् से। फिर भी अनेक ग्रन्थों के आधार

पर सम्वत् 1455 ही स्वीकार करने योग्य तिथि है। कबीरदासजी के दीक्षित होने के बाद उनकी पद्यावली का स्रोत बहना आरम्भ हुआ। कबीर साहब की रचना का प्रारम्भिक काल निश्चित नहीं। सुविधा के लिए उनकी जन्म तिथि के बीस वर्ष बाद से ही उनकी रचनाकाल का आरम्भ माना जा सकता है। बाकी के अन्य संत सद्गुरु इनके बाद ही हुए।

476. संतों का साहित्य प्रायः सब का सब पद्य में ही है। किसी पद्य के पढ़ते समय मुख्यतः दो अंगों पर विचार करना होता है – भाषा और भाव।

477. कबीर साहब की भाषा के सम्बन्ध में सम्मानित मिश्र बंधुओं का मत है :–इनकी भाषा वर्तमान हिन्दी से बहुत कुछ मिल जाती है। वह साहित्य की दृष्टि से परम प्रशंसनीय है...। (हिन्दी नवरत्न द्वि.सं. प्रथम सं. की भूमिका पृ. 26)

478. श्रद्धेय मिश्र बंधुओं ने कबीर साहब के सम्बन्ध में समालोचना करते हुए आगे फिर कहा :–

"यह निर्विवाद समझ पड़ता है कि जितने लोगों ने हिन्दी रचना की है, उनमें गोरखनाथ, कबीर, तुलसी, सूर, नानक आदि सर्वोत्कृष्ट पुरुष हैं। ईश्वर-सम्बन्धी भाव कबीरदास ने प्रायः सबसे ऊँचे कहे हैं। विचार पूर्वक पढ़ने से प्रकट होगा कि हिन्दी का कोई भी भारी कवि इस विषय में इनकी बराबरी नहीं कर सका है।"

479. यह तो हुई कबीर साहब की कविता की भाषा। उसके भाव के संबंध में हिंदी के प्रसिद्ध समालोचक मिश्र बंधुओं की सम्मति यह है –"हिन्दी में अभी तक और संतों की कविता न तो इतनी प्रसिद्ध ही हुई है, और न उन पर समालोचनाएं ही लिखी गई हैं। फिर भी प्रायः सभी संतों की रचनाएं कबीर साहब के अनुरूप ही हुई हैं, यद्यपि कबीर साहब की ऊंची साहित्यिकता सभी में नहीं मिलती।"

480. कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि संतों की रचना जिस भाषा में हुई है, उसमें कहीं कहीं गंवारूपन आ गया है। भाषा भी कहीं कहीं कमजोर हो गई है। फिर भी कवि की योग्यता प्रधानतः उसके भावों के आधार पर जाँची जानी चाहिये। "भाव अनूठे चाहिये, भाषा कोऊ होय।"

481. भाषा सम्बन्धी वे सुन्दर गुण, जिनकी छटा देव, बिहारी और पद्माकर की कविता में मिलती है, प्रायः संतों की रचना में न मिलेगी। कारण यह कि संतों ने किसी राजा महाराजा को खुश करने के अभिप्राय से रचना नहीं की। और यह भी निर्विवाद है कि संतों ने अपनी रचना मुख्यतः साहित्यानन्द प्रदान करने के लिए नहीं की। उनकी रचना का मुख्य कारण जैसा कि लिखा जा चुका है, उनकी मौज ही है। ऐसी कविता जिसमें कहीं तो यति-भंग, दोष, कहीं निम्न श्रेणी का अनुप्रास और कहीं सत्य कथन पर ध्यान करके श्रुति-कटु शब्दों और अप्रिय व्यंग्य मिश्रित कथनों का प्रयोग किया गया हो, साहित्य-रसिकों की सरस कामना की

तृप्ति भले ही न करे, किन्तु ब्रह्मानन्द में तल्लीन संत सद्गुरु इसकी क्या परवाह करते हैं। हृदय में किसी उद्गार का उद्रेक हुआ और वह तत्काल किसी रूप में प्रकट हो गया। संतजनों में हिंदी के आदि संत कवि कबीर साहब तो बिल्कुल निरक्षर-भट्टाचार्य ही थे और लिखने पढ़ने की योग्यता न होते हुए भी उनका प्रत्येक शब्द उन्हें हर किसी के हाथों आचार्यता की उत्तुंग श्रेणी पर आसीन करा देता है।

482. किसी कवि की रचना की कसौटी रूप दो प्रश्न स्वाभाविकतः उठते हैं—(1) उसको क्या कहना है? अर्थात् उसका क्या संदेश है? (2) और वह, जो कुछ उसे कहना या उसका संदेश है उसका प्रतिपादन या निर्वाह किस प्रकार कर सका है।

483. संतों को जो कुछ कहना रहा है, अर्थात् उनका समस्त संदेश सामूहिक रूप से एक शब्द के अन्तर्गत आ जाता है। वह है 'तत्त्व ज्ञान'। इस समस्त सृष्टि-स्थित प्रलय-संयुक्त विश्व का तत्त्व क्या है और उसका प्रतिपादन जैसा संतों के साहित्य में किया गया है, किसी भी हिन्दी-कवि ने उस खूबी के साथ नहीं किया।

484. मनुष्य का शरीर धारण करके प्राणी के सम्मुख कौन-सा प्रश्न आता है? वेदान्तियों का कथन है कि मानव शरीर ही एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा प्राणी परम पद की प्राप्ति कर सकता है। मानव-योनि ही में वे समस्त

अवसर सुलभ हो जाते हैं, जिनके द्वारा प्राणी उस चिर सुख के उपभोग का अधिकारी बन सकता है। महात्मा भर्तृहरि, शुकदेवजी तथा श्री मंच्छकराचार्य इसी मत के परिपोषक हैं। योनियों के बंधनों के विनिर्मुक्त होना ही सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य है। संतों के साहित्य का ध्यानपूर्वक मनन एवं अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि वे अपने समस्त जगत के लिए एकमात्र सन्देश लाते हैं, जिसके अतिरिक्त अन्य सब उद्देश्य और सन्देश हेय हैं। वे बार बार मानव योनि की दुर्लभता की ओर सबका ध्यान आकृष्ट करते हैं, फिर मृत्यु के आने की चेतावनी देते रहते हैं।

485. "गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्" इसी मोटो (motto) का प्रतिबिम्ब संतों की विशद वाणी में पग पग पर मिलेगा। अब इस संदेश को इस लोकोत्तर चिदानन्दप्रद भाव का सांसारिक लोगों के सम्मुख रखने का सबसे सुन्दर और उत्तम साधन क्या है? वह है कविता।

486. कविता में कौन सा विषय उसको परमोच्चपद प्रदान करता है, इस विषय पर मत-भेद हो सकता है। मैं विरह को कविता का आदि स्रोत मानता हूँ। कविवर सुमित्रानन्दन पंत भी अपनी किसी कविता में कहते हैं – "वियोगी होगा पहला कवि।" कविकुल-कुमुद-कलाधार कालिदास ने अपने मेघदूत के लिए यही विषय चुना। पं. अयोध्यासिंह उपाध्यायजी का महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' इस विषय से ओत प्रोत है। हिन्दी साहित्य में शायद ही कोई

ऐसा कवि होगा, जिसने विरह या वियोग पर कुछ भी न लिखा हो।

487. अब लीजिये संतों की रचना। इसकी नींव ही वियोग है। सन्त मत में आत्मा का अपने आदि स्रोत से विलग होकर जीवन मरण के बंधन में पड़ जाना ही उसका परम वियोग है, और सच्चा वियोगी वही है, जो अपने प्रियतम की याद में प्रतिपल व्याकुल रहे।

488. संतों के साहित्य में अधिकांश रचना इसी विषय की है। 'जीव' जिसे संत जन 'सुरत' के नाम से पुकारते हैं, अपनी सारी सांसारिक वासनाओं से खिंचकर निवृत्ति-मार्ग की ओर रुख फेरता है। इस मार्ग की ओर चिर स्वातंत्र्य के लिए वह सतत प्रयत्नशील होता है, जिसका अभ्यास संत मत की दीक्षा में सिखाया जाता है। इसी को 'सुरत-शब्द-योग' कहते हैं।

489. सुरत को संतों ने स्त्रीलिंगात्मक माना है और परम पुरुष को पुलिंगात्मक। जब सुरत अपने प्रियतम की याद करती है, उस समय वह उसके मिलने के लिए दर्शनों के लिए नितांत विकल हो उठती है। इसी समय उसके मुख से ऐसे उद्गार निकलते हैं जो किसी विरहिणी के मुख से निकलने स्वाभाविक हैं। साथ ही वे सांसारिक बंधन जो सुरत को अपने प्रियतम के पास जाने से रोकते अथवा उसे अपने इष्टमार्ग से परे खींचते हैं, उनके प्रति सुरत अपनी स्वाभाविक घृणा और शत्रुता प्रकट करती है। इन शत्रुओं

में संतों ने 'कामिनी' और 'कंचन' को सर्वोपरि माना है। कबीर साहब ने इन्हीं के लिए कहा है–

चलो चलो सब कोई कहै, पहुँचे बिरला कोय।
एक कनक अरु कामिनी, दुरगम घाटी दोय ॥

सुदूर स्थित प्रियतम के पास जाने वाली सुरत नाम्नी अभिसारिका के लिए मार्ग में निस्संदेह कनक और कामिनी से बढ़कर भयंकर और दुर्गम कौन घाटियाँ हैं?

आगे फिर चेतावनी देते हैं–

कनक कामिनी देखि कै, तू मति भूल सुरंग।
बिछुरन मिलन दुहेलरा, केचुलि तजै भुजंग ॥
नारी की झाँई परे, अन्धा होत भुजंग।
कबिरा तिन की कौन गति, जे नित नारिन संग ॥
परनारी पैनी छुरी, मति कोई लाओ अंग।
रावन के दस सिर गये, परनारी के संग ॥

490. तो फिर साधारण लोगों के लिए, जिनके एक ही सिर है, परकीया कितनी भयंकर वस्तु है।

पलटू साहब कहते हैं–

भाग रे भाग फक्कीर के बालके,
कनक और कामिनी बाघ लागा।
मार तोहिं लेयँगे पड़ा चिल्लायगा,
बड़ा बेवकूफ तू नाहिं भागा ॥

सिंगी ऋषि से तो मार लिये,
बचे नहिं कोई जो लाख त्यागा।
दास पलटू कहे बचेगा सोई,
जो बैठ सतसंग दिन रात जागा ॥

491. अब विरह-सम्बन्धी शब्द पढ़िये।

हाथरस के सन्त-सद्गुरु तुलसी साहब कहते हैं—

व्याकुल विरह दिवानी, झरै नित नैनन पानी ॥ टेक॥
हरदम पीर पिया की खटकै, सुध-बुध बदन हिरानी ॥
होस हवास नहीं कुछ तन में, बेदम जीव भुलानी ॥
बहु तरंग चित चेतन नाहीं, मन मुरदे की बानी ॥
नाड़ी वैद बिथा नहिं जाने, क्यों औषध दे आनी ॥
हिय में दाग जिगर के अन्दर, क्या कहुँ दरद बखानी ॥
सतगुरु वैद बिथा पहिचाने, बूटी है उनकी जानी ॥
तुलसी यह रोग रोगी ही बूझे, जिनको पीर पिरानी ॥

492. मीराबाई भी इस पथ की पथिका थीं—

मीरा मन मानी, सुरत सैल असमानी ॥टेक ॥
जब जब सुरत लगै वा घर की, पल पल नैनन पानी।
हियरे पीर तीर सम सालत, कसक कसक कसकानी ॥
रात दिवस मोहिं नींद न आवत, भावै अन्न न पानी।
ऐसी विरह पीर तन भीतर, जागत रैन बिहानी ॥
ऐसा वैद मिलै कोई भेदी, देश विदेश पिछानी।
तासों पीर कहूँ तन केरी, फिर नहिं भरमौं खानी ॥

खोजत फिरौं भेद वा घर को, कोई न करत बखानी।
रैदास सन्त मिले मोहिं सतगुरु, दीन्ही सुरत सहदानी ॥
मैं मिली जाय पाय पिय अपना, तब मोरि पीर बुझानी।
मीरा खाक खलक सिर डारी, मैं अपना घर जानी ॥

493. इस शब्द की अन्तिम पंक्तियों से यह स्पष्ट झलकता है कि मीराबाई को 'मैं मिली जाय पाय पिय अपना' का आभास हो गया था, जिस सुख के लिए उसने सारे 'खलक' की खाक को अपने सिर पर डाला।

494. विरह निवेदन पर कबीरदासजी का एक बहुत प्रसिद्ध और सुन्दर पद पढ़िये —

तलफे बिन बालम मोर जिया ॥
दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया,
तलफ तलफ के भोर किया।
तन मन मोर रहट अस डोलै,
सूनि सेज पर जन्म छिया ॥
नैन थकित भये पंथ न सूझै,
साईं बेदरदी सुध न लिया।
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
हरो पीर दुःख जोर किया ॥

495. राधास्वामी मत में भी इसी विरह का ही राग मिलता है —

मैं तड़पी तुम दरस को, जैसे चन्द चकोर।
सीप चहे जिमि स्वाँति को, मोर चहे घनघोर ॥

— — — —

सुरत बसाओ शब्द में, शब्द गगन के माँहि।
विरह बसाओ हिये में, हिया तिरकुटी माँहि ॥

496. उपर्युक्त दूसरे दोहे में सुरत-शब्द-अभ्यास का मुख्य साधन विरह बतलाया है। विरहाग्नि के हृदय में जगाये और प्रियतम दर्शनेच्छा की उत्कट लालसा के बिना कोई साधन साध्य नहीं।

497. सन्त लोगों ने सतत प्रयत्न करके इसी साधन की ओर लक्ष्य किया है। वे प्रायः लोगों को उनकी असावधानता तथा प्रवृत्तिमार्गावलम्बन आदि के भयंकर परिणामों की चेतावनी देते हैं।

498. नानकजी कहते हैं–

रे मन कौन गति होइहै तेरी ॥टेक॥
यहि जग में राम नाम, सो तो नहिं सुन्यो कान।
विषयन सों अति लुभान, मति नाहिन फेरी ॥1॥
मानस को जनम लीन्ह, सिमरन नहिं निमिष कीन्ह।
दारा सुत भयो दीन, पगहु परी बेरी ॥2॥
नानक जन कह पुकार, सुपने ज्यों जग पसार।
सिमरत नहिं क्यों मुरार, माया जाकी चेरी ॥3॥

499. इस प्रकार के अनेक पद व दोहे सन्तों के शब्दों में मिलेंगे। मन को इस प्रकार की चेतावनी देने वाले पद

लिखने वाले बहुत हैं। पर मन को काबू करके दिलदार के चरणों में लगाने वाले सन्त जन ही हैं।

500. इसी विषय पर महात्मा चरणदासजी का एक पद देखिये –

अरे नर हरि का हेत न जाना।
उपजाया सुमिरन के काजै,
तैं कछु औरै ठाना ॥
गर्भ माँहि जिन रच्छा कीन्ही,
ह्माँ खाने कूँ दीन्हा।
जठर अगिनी सों राख लियो,
अंग सम्पूरन कीन्हा ॥
बाहर आय बहुत सुधि लीन्ही,
दसन बिना पय प्यायो।
दांत भये भोजन बहु भाँती,
हित सों तोहि खिलायो ॥
और दिये सुख नाना विधि के,
समुझि देख मन माहीं।
भूलो फिरत महा गरवायो,
तू कछु जानत नाहीं ॥
तुव कारन सब कछु प्रभु कीन्हों,
तू कीन्हों जनि काज।
जग व्योहार पगो ही बोले,
तोहिं न आवै लाज ॥

अजहूँ चेत उलट हरि सौही,
जनम सुफल करु भाई।
चरनदास सुकदेव कहै यों,
सुमिरन है सुखदाई ॥

501. सन्त मत में सबसे श्रेष्ठ दर्जा गुरु का है। परम सन्त सद्गुरु के ही आधार पर सन्त-मतानुयायियों की क्रियाएँ साध्य होती हैं। गुरु ही परम धाम की ओर अपने अनुयायियों को अग्रसर करता है। आत्मोन्नति-पथ के पथिकों को गुरु ही Guiding Star है। इतना ही नहीं, यदि शिष्य भक्ति व प्रेमपूर्वक गुरु के चरण कमलों को दृढ़तापूर्वक पकड़ लेता है, तो पंगु होने पर भी वह परम पद के दुर्गम पथ पर सुगमतापूर्वक चलकर अन्त में 'लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल' का अनुभव करता है।

502. इस अनुपम कृपा के लिए, जिसे सन्त-भाषा में 'मेहर' कहते हैं शिष्य निरन्तर अपने गुरुदेव दयालु की वन्दना में रत रहता है। बिना गुरु की मेहर के अभ्यास असम्भव होता है। सच पूछिये, तो गुरु की महिमा जितनी सन्तों ने गाई है और गुरु की अर्चना जितनी सन्तों ने की है उतनी किसी ने भी नहीं की। गुरु की पूजा सन्त मत में यहाँ तक बढ़ी कि गुरु और गोविन्द, दोनों में गुरु ही श्रेष्ठ समझा गया –

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, किसके लागूँ पांय।
बलिहारी गुरु आपने (जिन) गोविन्द दिया दिखाय ॥

—कबीर साहब

503. महात्मा सुन्दरदासजी ने अत्यन्त ललित सवैयों और कवित्तों में अपने गुरु दादूदयालजी की वन्दना की है—

सो गुरुदेव लिपै न छिपै कछु,
सत्त्व रजो तम ताप निवारी।
इन्द्रिय देह मृषा करि जानत,
सीतलता समता उर धारी ॥
व्यापक ब्रह्म विचार अखण्डित,
द्वैत उपाधि सबै जिन टारी।
शब्द सुनाय सन्देह मिटावत,
सुन्दर वा गुरु की बलिहारी ॥
परमेश्वर और परम गुरु, दोनों एक समान।
सुन्दर कहत विशेष यह, गुरु तें पावें ज्ञान ॥

504. आगे भी सुन्दरदासजी ने गुरु और गोविन्द में गुरु को ही श्रेष्ठ बतलाया है—

गोविन्द के किये जीव जात है रसातल को।
गुरु उपदेसे से तो छूटे जम फन्द तें ॥

और अन्य सन्तों के प्रति आदर 'और तो सन्त सब सिर ऊपर सुन्दर, के उर हैं गुरु दादू' इत्यादि।

505. काव्य की दृष्टि से सुंदरदासजी के शब्द बिल्कुल निर्दोष और मनमोहक हैं। इनके एक एक छन्द में सुन्दर साहित्य का उदाहरण मिलता है। इनकी भाषा भी साहित्यिक एवं परिमार्जित है।

506. भीखा साहब का भी एक दोहा चेतावनी रूप इसी विषय पर पढ़िये –

भीखा बिछुरे जुगन के, पल महँ देहि मिलाय।
जौ भल चाहौ आपनौ, (तौ) सतगुरु खोजहु जाय ॥

507. भक्ति मूर्ति दयाबाई गुरु की वन्दना में कहती हैं –

गुरु ही दीन दयाल गुसाईं, गुरु सरनै जो कोई जाई।
पलटे करै काग सूँ हंसा, मन की मेटत हैं सब संसा ॥
करुणासार कृपा-निधाना, गुरु है ब्रह्म-रूप भगवाना।
दै उपदेश करै भ्रम नासा, 'दया' देत सुख-सागर बासा ॥

508. वास्तव में सच्चे गुरु का एक तो मिलना ही कठिन है, और यदि ऐसा गुरु खोजने से मिल भी जाय, तो फिर संसार की किसी और विभूति की दरकार नहीं। जिसे सच्चे सद्गुरु मिल गये, उसे सब कुछ मिल गया। क्यों? इसलिये कि सद्गुरु अपने शिष्य को वह अनुपम परमपदरूपी रत्न देता है, जिसके पा जाने से फिर किसी वस्तु की प्राप्ति की लालसा नहीं रहती। इसलिये सभी को चाहिये कि परिश्रम-पूर्वक सद्गरु की खोज करें। "गुन ना हिरानो गुनगाहक हिरानो है।"

509. राधास्वामी मत में भी सबसे प्रथम शिक्षा सद्गुरु की खोज के संबंध में है।

510. वह देश जहाँ अनगिनत सूर्यों का प्रकाश है, जहाँ

परमानन्द का निवास है, दूर नहीं है, पास ही है। किन्तु राह बतलाने वाला नहीं है, इसी से लोग भटकते हैं।

नाँव न जाने गाँव का, बिन जाने कित जाँव?
चलता चलता जुग भया, पाव कोस पर गाँव ॥

— कबीर साहब

511. उस राह में मन रूपी पर्वत है –

कबिरा मन पर्वत हुआ, अब मैं पावा जान।
टांकी लागी शब्द की, निकसी कंचन खान ॥
अगम पंथ मन थिर करै, बुद्धि करै परबेस।
तन मन सब ही छाँड़ि कै, तब पहुँचे वा देस ॥

512. किन्तु तन और मन कैसे छूटे, यह मुक्ति तो गुरुदेव ही के बताने से आती है। स्वतः आनी क़ठिन है।

513. सन्तों ने इसके अतिरिक्त काम, क्रोध, लोभ, मोह अहंकारादि मानसिक विकारों पर दोहा छन्दों में बहुत कुछ कहा है। वे छन्द प्रायः लोगों में साखी रूप में प्रचलित हैं। इन्हीं दोहों ने कालांतर में सर्व-प्रियता के कारण आजकल कहावतों का रूप धारण कर लिया है।

514. कविता की दृष्टि से कबीर, सुन्दरदास और नानकजी की रचनाएँ अधिक श्रेष्ठ हैं।

515. सन्तों की कविताओं में विशेष कर दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं – (1) साखी और (2) शब्द।

516. साखी उन दोहों को कहते हैं, जिन्हें किसी विशेष

अवसर पर सन्तों ने किसी एक भाव को लेकर सूक्ष्मतः कह दिया है।

517. शब्दों में अनेक प्रकार के छन्द हैं। ये प्रायः भजन रूप में गाये जाते हैं।

518. सन्त मत में 'शब्द' उस गुरु-मन्त्र को भी कहते हैं, जिसका निरन्तर अजपा-जाप करने का विधान कई भजनों में आ चुका है। जैसे —

फूटि गया असमान सब्द की धमक में।
लगी गगन में आग सुरति की चमक में ॥
सेसनाग ओ कमठ लगे सब कांपने।
(अरे हाँ पलटू) सहज समाधि की दसा खबर नहिं आपने॥

— पलटू साहब

देखि आयों मैं साईं की सेजरिया।
साईं की सेजरिया, सतगुरु की डगरिया॥
सबदहि ताला, सबदहि कुंजी,
सबद की लगी है जंजरिया।
सबद ओढ़ना, सबद बिछौना,
सबद की चटक चुनरिया ॥
सबद सरूपी साँई आप बिराजै,
सीस चरन में धारिया।
दूलनदास भजु साँई जगजीवन,
अगिन से अहंग उजरिया ॥

— दूलनदासजी

519. कभी कभी आत्मानन्द में तल्लीन होकर उस तल्लीनता की अवस्था का, उस अवर्णनीय तुरियावस्था का वर्णन भी सन्तजन कर बैठे हैं। उसे पढ़कर हम अनुमान कर सकते हैं कि समाधिस्थ दशा में क्या क्या दृश्य दिखाई देते हैं, कौन-कौन से शब्द सुनाई पड़ते हैं तथा आत्मा की क्या गति रहती है—

है दिल में दिलदार सही,
अंखियाँ उलटी करि ताहि चितैए।
आब में, खाक में, बाद में,
आतस जान में सुन्दर जानि जनैए ॥
नूर में नूर है तेज में तेजहिं,
ज्योति में ज्योति मिलै मिलि जैए।
क्या कहिये कहते न बने कछु,
जो कहिए कहते हि लजैए ॥

— सुन्दरदासजी

520. पैठि मन पैठ दरियाव दर आप में,
कंवल बिच झाज[1] में कमठ राजै।
होत जहाँ सोर घनघोर घट में लखै,
निरख मन मौज अनहद्द बाजै ॥
गगन की गिरा पर सुरत से सैल कर,
चढ़ै तिल तोड़ घर अगम साजै।
दास तुलसी कहै पछिम के द्वार पर,
साहिब घर अद्भुत बिराजै ॥

---

(1) जहाज

तुलसी गति मति लखि पड़ी, निरखि लगा सब अण्ड।
सुर्त चढ़ि गई आकाश में, सोर भया बह्मण्ड ॥
सोर भया ब्रह्मण्ड अण्ड में धधक चढ़ाई।
जब फूटा असमान गगन में सहज समाई ॥
सुन्न सहर के बीच ब्रह्म से भया मिलापा।
परमातम पद लेख देखकर भया हुलासा ॥

—तुलसी साहब हाथरस वाले

521. ऊपर के शब्दों में परम गुरु तुलसी साहब ने अभ्यास सम्बन्धी कुछ भेदों का कृपापूर्वक उद्घाटन कर दिया है। फिर भी बहुत करके उन सज्जनों को, जो सुरत शब्द अभ्यास के रहस्य से अनभिज्ञ हैं, सुरत के इस ऊर्ध्वगामी मार्ग के भिन्न भिन्न स्थानों का समझना कठिन होगा। इन स्थानों में अनाहत[1] घण्टा, बंशी मृदंग आदि की ध्वनियाँ अपने अपने ठौर पर सुनाई पड़ती हैं। किंतु सन्तमार्ग-वलम्बी को इन ध्वनियों के आनन्द में न फँसकर सीधे अपनी राह पर चलकर मंजिले मकसूद, निश्चित स्थान की ओर सतत अग्रसर होते रहना चाहिये।

522. शब्दों के विषय में पलटू साहब की एक कुण्डली पढ़िये —

पलटू धारा तेल की मेलत हो गया भोर।
बंसी बाजी गगन में मगन भया मन मोर ॥

---

(1) घण्टा आदि की ध्वनि को 'अनाहत' इसलिये कहते हैं कि ये बाजे बिना बजाये, बिना डंके की चोट खाये (अन+आहत) सुनाई देते हैं।

मगन भया मन मोर महल अठवै पर बैठा।
जहाँ उठे 'सोहंगम' शब्द, शब्द के भीतर पैठा ॥
नाना उठें तरंग रंग कुछ कहा न जाई।
चोर सुरज छिप गये, सुखमना सेज बिछाई ॥
छूट गया तन गेह, नेह उनहीं से लागी।
दसवाँ द्वारा फोड़ जोत बाहर होय जागी ॥

523. सन्तों के कहे नीति के शब्द व दोहे लोगों में अधिक प्रचलित हैं, इसलिये विस्तार भय से उनका वर्णन यहाँ न किया जा सकेगा। इस लेख में केवल उन्हीं विषयों से सम्बन्ध रखने वाले छन्दों का उल्लेख किया गया है, और उन्हीं विषयों पर प्रकाश डाला गया है, जिन पर अभी तक शायद कम लेखकों ने लेखनी उठाई होगी। सन्तों के शब्दों और उनकी साखियों का संग्रह प्रयाग के बेलवेडियर प्रेस ने ही छापा है। अभी तक इन पर विद्वानों की वह समालोचनात्मक दृष्टि नहीं पड़ी, जो कबीरदास पर पं. अयोध्यासिंहजी उपाध्याय तथा मिश्र बन्धुओं की पड़ी है। कबीरदासजी की रचना है भी अन्य सन्तों की रचनाओं की अपेक्षा उत्कृष्ट। आशा है, विद्वान साहित्य मर्मज्ञ अन्य सन्तों की ओर भी दृष्टि फेरेंगे।

524. सन्तों की रचनाओं में उस पुराने जमाने में की हुई कविताओं में, खड़ी बोली की कविता मिलती है, तुकांत हीन कविता मिलती है, और उर्दू, ब्रजभाषा, अवधी और पूर्वी हिन्दी के भी छन्द मिलते हैं। इनके अतिरिक्त मिलती है उस विश्व विश्रुत कविता की माधुरी जिसे आजकल लोग

छायावाद कहने लगे हैं। कविताओं में तत्त्वाज्ञान के अतिरिक्त हिन्दू-मुस्लिम एकता, पाखण्ड खण्डन और अछूतोद्धार के आधुनिक भाव कम नहीं हैं।

525. खड़ी बोली और तुकांतहीन कविताओं के दो उदाहरण नीचे दिये जाते हैं। बाकी अन्य उदाहरण के लिए इस निबन्ध में उद्धृत की हुई सन्तों की रचनाएँ पर्याप्त होंगी।

खड़ी बोली की रचना –

भजवल अगम अथाह थाह का नहीं ठिकाना।
सतगुरु केवट मिलें पार घर अपना जाना ॥
जग रचना जंजाल जीव माया ने घेरा।
लोभ मोह वश पड़े करें चौरासी फेरा ॥

– तुलसी साहब हाथरस वाले

तुकांतहीन रचना –

काम क्रोध मद लोभ, सब विधि अवगुनहार मैं।
प्रभु राखो मेरी लाज, तुम द्वारे अब मैं पड़ा ॥

(राधास्वामी मत के तृतीय सन्त सतगुरु श्री महाराज साहब,
पं. ब्रह्मशंकर मिश्र, एम.ए. कृत)

526. सन्तों ने अपने मार्ग की सर्वश्रेष्ठता के सम्बन्ध की ओर भी संकेत किया है, जैसे –

सन्त मता है सार और सब जाल पसारा

– तुलसी साहब हाथरस वाले

मन्जे कुरां मग्जरा बरदाश्तम, उस्तख्वां पेशे सगां अंदाख्तम्

अर्थात् मैंने कुरान से सत (मग्ज) निकाल लिया है और हड्डी कुत्तों के सामने डाल दी है।

— **मौलाना रूम**

527. ठीक भी है, गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है

सन्त हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि-बिकार

528. सन्त मता सबसे बड़ा यह निश्चय कर जान।
सूफी और वेदान्ती दोनों नीचे मान ॥

— **राधास्वामी मत के प्रथम सन्त सद्गुरु स्वामीजी महाराज**

529. इन शब्दों में पाठकों को किसी प्रकार की गर्वोक्ति का भ्रम न होना चाहिये। अपने मार्ग की महत्ता बिना हृदय में दृढ़ हुए, सद्गुरु उपदेश पर दृढ़ विश्वास हुए, साधन की कमाई नितान्त असम्भव है। ऊपर के शब्द उसी स्वमत प्रतिपादन प्रेम तथा सन्त मत के मूल-रूप विश्वास से प्रेरित होकर सन्तों के श्रीमुख से बहिर्गत हुए हैं। गर्वोक्ति क्या गर्व की छाँह तक सन्तों को छू नहीं गई। उनमें नम्रता और विनयशीलता कूट-कूटकर भरी होती है। सहनशीलता के तो वे अवतार ही होते हैं। नम्रता सम्बन्धी कुछ शब्द देखिये।

मैं नाहीं कछु हौं नहीं, कछु आहि न मोरा।
औसर लज्जा राखि लेहु, सदना जन तोरा ॥

— **सदनाजी**

530. रामा हो जग जीवन मोरा,
तूँ न विसारी, मैं जन तोरा।
संकट सोच पोच दिन राती,
करम कठिन मोरि जाती कुजाती ॥
हरहु बिपति भावै करहु सो भाव,
चरन न छाड़ौं जाव सो जाव।
कहै रैदास कछहु देहु आलम्ब,
बेगि मिलौ जनि करौ बिलम्ब ॥

—रैदास जी

531. नानक छोटे ह्वै रहो, जैसे छोटी दूब।
और घास जरि जात है, दूब खूब की खूब॥

— नानकजी

532. सन्त मत की सर्वश्रेष्ठ गद्य पुस्तक 'डिस्कोर्सेज आन राधास्वामी फेथ' Discourses on Radhasoami Faith है। इसकी रचना स्वधाम-वासी परम गुरु पं. ब्रह्मशंकर मिश्र एम.ए. ने जिन्हें उनके भक्तजन महाराज साहब कहते हैं, की थी। इसका हिन्दी अनुवाद "राधास्वामी मत पर प्रवचन" नाम से सन्तदास माहेश्वरी, स्वामी बाग, आगरा, ने किया है।

533. सन्त साहित्य के अनुशीलन से पाठकों को सभी सन्तों के शब्दों और उपदेशों में एक प्रकार की समानता मिलेगी। कारण यह है कि उन सबने एक ही विषय को लेकर रचनाएं की हैं।

534. सारांश में सन्तों के साहित्य में ईश्वर सम्बन्धी कविता, नीति सम्बन्धी शिक्षा, आध्यात्मिक विवेचना, वन्दना, गुरु महिमा, परम तत्त्व के रहस्योद्घाटन, गृह वैराग्य और अन्य मतावलंबियों की खरी समालोचना आदि विषय ही प्रधानतः प्रतिपादित हैं।

535. इन रचनाओं में कहीं कहीं भँवरगुफा, सहसदल कँवल, बंक नाल और सुरत इत्यादि ऐसे शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं, जिनका सम्बन्ध सुरत शब्द अभ्यास से है। इन्हें समझने में प्रायः इतर मतावलम्बी जनों को सुगमता न होगी। इसका कारण यह भी है कि सन्तों ने अपने अभ्यास की युक्तियों को जन साधारण से गोप्य रक्खा है। उन्हें उपदेश देने में पात्रापात्र का बड़ा विचार रहा है।

536. फिर भी सन्तों की शब्दावली के पठन और अविराम अनुशीलन से अनेक अलौकिक शिक्षायें मिल सकती हैं। एतदर्थ यह साहित्य भी ईश्वरानुरागियों के लिए विशेषतः अध्ययनीय है। सन्तजनों ने अधिक ध्यान अक्षराभ्यास एवं सांसारिक विद्याओं की ओर नहीं दिया। सबसे प्रथम सन्त महात्मा कबीरदासजी ने तो बिना कागज कलम दवात छुए ही अनेक ग्रन्थ रच डाले। सन्तों की यह बड़ी जबरदस्त विशेषता है कि जिस तत्त्वज्ञान को, ब्रह्माण्ड के जिस रहस्य को बड़े-बड़े प्रकाण्ड पंडित अनेकों ग्रन्थ पढ़ कर नहीं समझ पाते, वही इनको केवल गुरु सेवा से सत्संग में प्राप्त हो जाता है।

537. सन्त मत में सतसंग दो प्रकार के माने गये हैं। एक गुरु की मौजूदगी में उनकी निरन्तर सेवा सुश्रूषा करना

और उनके बचनामृत का पान करना और दूसरा गुरु की अनुपस्थिति में हर समय गुरु के ध्यान में मग्न रहना, उनके शब्दों का पुनः पुनः स्मरण करना। पहले को बाह्य सतसंग कहते हैं और दूसरे को आंतरिक सतसंग। जो कुछ साहित्य हमें सन्तों द्वारा प्राप्त हुआ है, उसका मूल क्षेत्र यह सतसंग है, और यह मिलता है गुरु की अनुकूलता से। गुरु कैसे अनुकूल होते हैं, इस प्रश्न का उत्तर इष्ट मार्ग के प्रति उत्कृष्ट संलग्नता, सच्ची प्रीति और अविश्रांत सेवा के भीतर अन्तर्निहित है।

538. लेख समाप्त करने से पहले एक उर्दू का और एक हिन्दी का छन्द सुनाता हूँ, पढ़िये। आशा है आप ऊब न गये होंगे।

539. उर्दू की रचना (इसे उर्दू-मिश्रित खड़ी बोली की रचना भी कह सकते हैं)

अब तो अफसोस मिटा दिल का,
दिलदार दीद में आया है।
सन्तों की सुहबत में रह कर,
हक हादी को सिर नाया है॥
उपदेश उग्र गहि सत्तनाम,
सोई अष्टजाम धुनि लाया है।
मुरशिद की मेहर हुई यों कर,
मजबूत जोश उपजाया है॥
हर वक़्त तसव्वुर में सूरत,
मूरत अन्दर झलकाया है।

बू अली कलन्दर और फ़रीद,
तबरेज वही मत गाया है ॥
कर सिद्क सबूरी ला-मकान,
अल्लाह अलख दरसाया है।
लखि जन दूलन जगजीवन पीर,
महबूब मेरे मन भाया है ॥
खाबिन्द खास गैबी हुजूर,
वह दिल अन्दर में आया है ॥

— बाबा दूलनदासजी

540. हिन्दी की रचना —

दीनदयाल सुने जब तें,
तबतें मन में कछु ऐसी बसी है।
तेरो कहाय के जाऊँ कहाँ,
तुम्हें हित की पट खेंचि कसी है ॥
तेरो ही आसरो एक 'मलूक',
नहीं प्रभु सों कोउ दूजो जसी है।
एहो मुरार, पुकार कहों अब,
मेरी हँसी नहीं तेरी हँसी है ॥

— बाबा मलूकदास जी

'सुधा' भाद्र तुलसी सम्वत् 306, सितम्बर सन् 1930 ईसवी



परिशिष्ट एक

रामचन्द्रजी एवं रामायण से सम्बन्धित उद्धरण

(1)

एक और अनेक

लंका से रामचन्द्रजी अयोध्या लौटे। उनको देख सब नगर निवासी प्रसन्न हुए। वियोग से उत्पन्न हुई सब विपत्तियों का नाश हो गया। सब लोगों को प्रेम में व्याकुल देखकर दयालु रामचन्द्रजी ने एक कौतुक (खिलवाड़) किया।

अमित रूप प्रगटे तेहि काला।
जथा जोग मिले सबहिं कृपाला ॥

— उत्तरकाण्ड

वह कौतुक यह था कि उस समय रामचन्द्रजी ने अपने अनगिनत रूप प्रकट किये। इस प्रकार वे सबसे यथायोग्य मिले। प्रत्येक नगरवासी ने समझा कि हम रामचन्द्र से मिले अथवा रामचन्द्रजी हमसे मिले।

छन महुँ सबहिं मिले भगवाना।
उमा मरम यह काहु न जाना ॥

— उत्तरकाण्ड

भगवान श्री रामचन्द्रजी एक क्षण भर में सबसे मिले। शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती! इस मर्म को किसी ने नहीं जाना।

सत्तलोक में अनन्त सुरतें हैं जो सुरत जहाँ प्रतिष्ठित है

वहीं उसके सामने सत्तपुरुष विराजमान हैं। इस प्रकार प्रत्येक सुरत सत्तपुरुष के दर्शन का आनन्द ले रही है और शान्त व सन्तुष्ट है। प्रत्येक सुरत समझती है कि मैं सत्त पुरुष के सामने हूँ अथवा सत्तपुरुष मेरे सामने हैं। एक सत्त पुरुष अनेक रूप से अनेक सुरतों को शान्त और सन्तुष्ट किये हुए हैं।

(2)

अभिषेकोत्सव समाप्त होने पर सब बन्दर ब्रह्मानन्द में मग्न हो गये। रामचन्द्रजी के चरणों में उनका परम प्रेम था। उनको वहाँ निवास करते छः महीने बीत गये पर दिन जाते किसी ने नहीं जाना। सब अपने घरों को भूल गये। स्वप्न में भी उन्हें घर की याद नहीं आई। तब एक बार रामचन्द्रजी ने सबको अपने पास बैठा कर कहा कि तुम लोगों ने मेरी बड़ी सेवा की है, मैं मुंह पर तुम्हारी बड़ाई किस तरह करूँ? तुम लोग मुझे अधिक प्यारे इसलिये हो कि तुम लोगों ने मेरे हित के लिए अपने घर के सुख छोड़ दिये।

सब मम प्रिय नहिं तुम्हहिं समाना।
मृषा न कहउँ मोर यह बाना ॥
सबके प्रिय सेवक यह नीति।
मोरे अधिक दास पर प्रीति ॥

— उत्तर काण्ड

सभी चीजें मुझे तुम्हारे बराबर प्यारी नहीं हैं। मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं कभी झूठ नहीं बोलता। यद्यपि यह नीति है

कि सेवक सभी को प्यारे होते हैं, तथापि मुझे अपने दासों पर अधिक प्रेम है।

सेवक वह होता है जो किसी कारण वश सेवा करे। दास वह होता है जो निष्कारण ही अपना सर्वस्व स्वामी को सौंप कर आप निर्भय हो जाय।

(3)

गरुड़ अपना संशय दूर करने के लिए नारदजी के पास गये। नारदजी ने ब्रह्मा के पास जाने को कहा। ब्रह्मा ने शिवजी के पास जाने को कहा।

मिलेहु गरुड़ मारग मँह मोही,
कवन भाँति समुझावउँ तोही।
तबहिं होइ सब संसय भंगा,
जब बहु काल करिय सतसंगा ॥

— उत्तर काण्ड

शिवजी ने कहा है कि हे गरुड़! तुम मुझे रास्ते में मिले हो। तुमको मैं किस तरह समझाऊँ? जब बहुत काल तक सतसंग किया जाय तब संशय मिटें।

(4)

कागभुसुण्ड

राम रावण युद्ध में मेघनाद ने श्रीराम और उनकी सेना को नाग पाश में बाँध लिया था। इस पर नारद मुनि ने गरुड़

को युद्ध क्षेत्र में भेजकर राम और राम की सेना को नाग पाश से मुक्त कराया। इससे गरुड़ के मन में यह भ्रम हुआ कि

भवबंधन तें छूटहिं नर जपि जाका नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ नाग पाश सोइ राम ॥

जिसका नाम जप कर मनुष्य संसार बंधन से छूट जाते हैं उसी राम को जरा से राक्षस (इन्द्रजीत) ने नाग पाश में बाँध लिया।

गरुड़ ने बार बार मन को समझाया किन्तु यह शंका उनके मन से न गई। तब वे नारद के पास गये और इस शंका का समाधान चाहा। नारद ने उनको ब्रह्मा के पास भेजा। ब्रह्मा ने उनको शिव के पास भेजा। शिव ने उन्हें उत्तर दिशा में नीलांचल पर रहने वाले कागभुसुण्ड के पास भेजा और यह कहा कि वह तुमको यह रहस्य अच्छी तरह समझा देंगे क्योंकि समुझे खग खग ही की भाषा। तब गरुड़ कागभुसुण्ड के पास गये। कागभुसुण्ड ने पहले उनको पूरी राम कथा सुनाई और अन्त में अपना एक अनुभव सुनाया।

कागभुसुण्डजी गरुड़ से कहते हैं कि जब जब श्रीराम भक्तों के हितार्थ शरीर धारण करते हैं और बहुत-सी लीलाएं दिखाते हैं तब तब मैं अयोध्या जाकर उनकी बाल लीला देखकर हर्षित होता हूं। वहां जाकर श्रीराम का जन्मोत्सव देखता हूँ और पाँच वर्ष तक वहाँ निवास करता हूँ क्योंकि हे गरुड़! बाल रूप श्रीराम मेरे आराध्य देव हैं जिनका स्वरूप सौ करोड़ कामदेवों के समान शोभायमान है। अपने स्वामी का मुख देख देखकर अपने नेत्र सफल

करता हूँ और एक छोटे कौवे का शरीर धारण करके उनकी बाल लीलाएं देखता हूँ। इस अवसर में भी इसी प्रकार अयोध्या में गया था और भगवान की लीलाएँ देखकर चकित हो रहा था। रामचन्द्रजी ने मुझे भ्रम से चकित हुआ देखा और हँस दिये। अब वह विशेष चरित्र सुनिये। उस कौतुक का मर्म किसी ने नहीं जाना, न तो छोटे भाइयों ने, न माता पिता ही ने।

श्याम सुन्दर शरीर और लाल लाल हाथों तथा चरणों वाले रामचन्द्रजी हाथों और घुटनों के बल मुझे पकड़ने दौड़े। हे गरुड़जी! तब मैं भाग चला और रामचन्द्रजी ने मुझे पकड़ने के लिए भुजा फैलाई। अब मैं ज्यों ज्यों आकाश में दूर उड़ता जाता था त्यों त्यों रामचन्द्रजी की भुजा को अपने पास ही देखता था। मैं उड़ते उड़ते ब्रह्मलोक तक जा पहुँचा और जो मैंने पीछे को फिर कर देखा तो रामचन्द्रजी की भुजा अपने, दोनों के, बीच में दो अंगुल का अन्तर था। मैं सातों आवरणों (परदों जल, वायु, अग्नि, तेज, अहंकार, महत्तत्व और प्रकृति) को भेद कर जहाँ तक मेरी (जीव की) गति है, वहाँ तक गया पर वहाँ भी रामचन्द्रजी की भुजा को देखकर फिर बहुत व्याकुल हुआ। जब घबड़ा गया तो मैंने आँखें बन्द कर लीं, फिर आँखें खोलकर क्या देखता हूँ कि मैं अयोध्या पहुँच गया। मुझे देखकर रामचन्द्रजी मुसकुराने लगे। उनके हँसते ही मैं तुरन्त उनके मुख के भीतर चला गया। गरुड़जी! सुनिए! उनके पेट के भीतर मैंने बहुत से ब्रह्माण्डों के समूह देखे। वहाँ बहुत ही अद्भुत अनेक लोक थे। उनकी रचना एक से एक बढ़ चढ़ कर थी। करोड़ों

चतुर्मुख ब्रह्मा, गौरीपति महादेव, अनगिनत नक्षत्र गण, सूर्य, चन्द्र, अनगिनत लोकपाल, यमराज, काल, असंख्य पहाड़ और विशाल पृथ्वियाँ थीं। समुद्र, नदियाँ तालाब और अपार जंगल थे; अनेक तरह की सृष्टि का विस्तार फैला था। देवता, मुनि, सिद्ध, नाग, मनुष्य और किन्नर स्थावर-जङ्गम-सहित चार प्रकार के (जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्‌भिज) जीव थे! जो देखा नहीं, सुना नहीं और जो मन में भी न समाता था, अर्थात् जिस बात का अनुमान मन में भी न हो सके, वह सब आश्चर्य वहाँ देखा। उसका वर्णन किस तरह किया जाय। मैं एक एक ब्रह्माण्ड में सौ सौ वर्ष रहा। इसी तरह मैं अनेक ब्रह्माण्ड देखता फिरा। हर एक लोक में अलग अलग ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, मनु और दिक्पाल थे। मनुष्य, गन्धर्व, भूत, वेताल, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी और सर्प सभी थे। अनेक जातियों के देवताओं और दैत्यों के गण तथा सभी जीव वहाँ और ही तरह के थे। अनेक पृथ्वी, नदी, समुद्र, तालाब, पर्वत, सभी प्रपंच (संसार) वहाँ और ही और था। हर एक ब्रह्माण्ड में मैंने अपनी प्रतिरूप (अपने जैसा दूसरा कागभुसुण्डि) देखा और अनेक अनुपम वस्तुएँ देखीं। हर ब्रह्माण्ड में अयोध्या पुरी भिन्न थी और सरयू नदी तथा पुरुष और स्त्रियां भी भिन्न भिन्न थे। हे तात! सुनिये। उन अयोध्याओं में दशरथ और कौसल्यायें थीं और तरह तरह के रूपवाले भरत आदि भाई भी थे। हर एक ब्रह्माण्ड में रामचन्द्रजी का अवतार और उनके उदार बाल चरित्र मैंने देखे। हे विष्णुवाहन, गरुड़जी! मैंने सभी चीजें जुदी जुदी और अत्यन्त विचित्र देखीं; मैं असंख्य ब्रह्माण्डों में

फिरा किन्तु सर्वत्र रामचन्द्रजी वे ही थे, दूसरे मैंने नहीं देखे। मोह से प्रेरित शरीर लिये मैं उसी लड़कपन, उसी शोभा और उन्हीं दयालु रघुवीर को लोक-लोकान्तरों में देखता फिरा। इस तरह अनेक ब्रह्माण्डों में भ्रमण करते करते मानो मुझे एक सौ कल्प बीत गये। तब फिरते फिरते मैं अपने आश्रम में पहुँचा। फिर वहाँ निवास कर मैंने कुछ समय बिताया। वहीं मैंने अयोध्या में अपने स्वामी का जन्म होना सुन पाया और गाढ़े प्रेम में भरा मैं उठ दौड़ा। वहाँ जाकर जन्म का महोत्सव देखा, जैसा कि मैं पहले आपसे वर्णन कर चुका हूँ। मैंने रामचन्द्र जी के पेट में अनेक जगत देखे। वे देखते ही बनते हैं, कहते नहीं बनते। फिर वहाँ पर अति चतुर, माया के स्वामी, कृपालु, भगवान रामचन्द्रजी को भी मैंने देखा। मैं बार बार विचार करता था। मेरी बुद्धि मोह रूपी कीचड़ से सनी हुई थी। इतना सब कुछ मैंने दो घड़ी में देख लिया। मैं थक गया और मन में अधिक मोह हो गया। हे धीर-बुद्धि, गरुड़जी! सुनिये। तब कृपालु रघुवीर मुझे व्याकुल देखकर हँस पड़े। उनके हँसते ही मैं उनके मुख से बाहर आ गया। रामचन्द्रजी फिर मेरे साथ वही लड़कपन करने लगे। तब मैंने अपने मन को करोड़ों तरह से समझाया, पर उसने विश्राम न पाया। वे (बाल) चरित्र और वह प्रभुता (जो उनके पेट के भीतर देखी) समझते ही मुझे शरीर की सुध भूल गई। ''आर्त्तजन के त्राता! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो'', कहकर मैं पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस समय मुँह से बात नहीं कहते बनती थी। तब फिर प्रभु ने मुझे प्रेम से व्याकुल देखकर अपनी माया की प्रभुता को रोका और

अपना हस्तकमल (अभय-हस्त) मेरे मस्तक पर रक्खा और दीनदयालु ने मेरा सब दुःख हरण कर लिया। सेवकों के सुखदाता, दया के समूह रामचन्द्रजी ने मुझे मोह से रहित कर दिया। तब उनके प्रथम देखे हुए सामर्थ्य को सोच सोचकर मेरे चित्त में बड़ा भारी आनन्द होने लगा। स्वामी की भक्तवत्सलता देखकर मेरे हृदय में विशेष प्रीति उत्पन्न हुई। मेरे नेत्रों में जल भर आया और शरीर पुलकायमान हो गया। फिर मैंने हाथ जोड़कर बहुत प्रकार से विनय (प्रार्थना) किया। मेरी प्रेम सहित वाणी सुनकर और मुझे अपना दीन दास जानकर लक्ष्मी निवास, भगवान रामचन्द्रजी सुखदायी, गम्भीर और कोमल वचन बोले। हे कागभुसुण्डी! तू मुझे अत्यन्त प्रसन्न जानकर वरदान माँग ले, चाहे अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ, चाहे दूसरी ऋद्धियाँ, चाहे सुखों की खान मोक्ष, जो इच्छा हो ले।

— सन्तदास माहेश्वरी कृत प्रतीत की स्मृतियाँ, भाग 4 गुरुसाखी 192, पृष्ठ 134-138

(5)

रामायण के लंका काण्ड में कहा गया है कि

जौं मम चरन सकसि सठ टारी।
फिरहु रामु सीता मैं हारी ॥

यह बचन अंगद ने रावण से कहे थे। ऐसा होना कोई नामुमकिन बात नहीं थी। अंगद का भगवान राम में इतना अटूट विश्वास था कि न राम वापिस जा सकते हैं और न

मैं सीता को हार सकता हूँ, अतः रावण कभी मेरे पाँवों को नहीं हटा सकता।

—प्रतीत की स्मृतियाँ, भाग 1 व 2, गुरुसाखी 115, पृष्ठ 104

(6)

सत की सीता असत सिया को।
कुमति कौसल्या बसाई ॥

"असत सिया" का अर्थ समझ में नहीं आता कि पहले तो सीता को सत कहा और तुरन्त ही उसे असत कह दिया।

उपर्युक्त पंक्ति में सिया का अर्थ सीता नहीं है। यह असल में "सियावर" है जिसका अर्थ है सिया यानी सीता का वर या पति यानी राम। तुलसी साहब ने राम को मन कहा है। मन असत यानी झूठा है, यह ठीक ही है। सियावर कहने से कविता की पंक्ति बिगड़ जाती। इसलिये वर छोड़ दिया। केवल सिया लिखा जिसका अर्थ सीता नहीं बल्कि राम है। प्रमाण

अब बरतन्त कहूँ याही को।
भरत चत्रगुन भाई।
दसरथ सीता और कौसिल्या।
सिया लछमन्न कहाई ॥

— राधास्वामी मत के द्वितीय आचार्य सन्त सतगुरु हुजूर महाराज के प्रेमपत्र, छठा भाग, पृष्ठ 247, शब्द घट रामायण, कड़ी 5

यहाँ बिल्कुल स्पष्ट है कि सिया का मतलब राम से है। सिया यानी सीता, यहाँ ठीक नहीं बैठता।

दस इन्द्री रत दसरत कहिये।
राम रमा मन जाई ॥
सत की सीता असत सिया को।
कुमति कौसिल्या बसाई ॥

—प्रेमपत्र, छठा भाग, पृष्ठ 248, शब्द घट रामायण, कड़ी 12

सिया के मानी राम हैं। अन्य कोई मानी यहाँ नहीं बैठता।

— प्रतीत की स्मृतियाँ, भाग 4, गुरुसाखी 196, पृष्ठ 140-141

(7)

राम का नाम संसार में सार है,
राम का नाम अमृत बानी।
राम के नाम तें कोटि पातक हरै,
राम का नाम बिस्वास मानी ॥
राम का नाम लै साधु सुमिरन करै,
राम का नाम लै भक्ति ठानी।
राम का नाम लै सूर सन्मुख लरै,
पैठि संग्राम में जुद्धि ठानी ॥
राम का नाम लै नारि सत्ती भई,
जरी मरी कंत संग खेह उड़ानी।
राम का नाम लै तीर्थ सब भरमिया,
करत अस्नान झक्कोरि पानी ॥
राम का नाम लै मूर्ति पूजा करै,
राम का नाम लै देत दानी।
राम का नाम लै बिप्र भिच्छुक बने,
राम का नाम ले दुर्लम्भ जानी ॥

राम का नाम चारि वेद का मूल है,
निगम निचोर करि तत्त्व छानी।
राम का नाम षट सासतर मतियये,
षट दरसन में चली कहानी ॥
राम का नाम अगाध लीला बड़ी,
खोजते खोज नहिं हरहि मानी।
राम का नाम लै बिस्नु सुमिरन करै,
राम का नाम सिव जोग ध्यानी ॥
राम का नाम लै सिद्ध साधक बनै,
सिव सनकादि नारद गियानी।
राम का नाम लै रामचन्द्र दृष्टि लइ,
गुरु वसिष्ठ भये मंत्र दानी ॥
कहाँ लौं कहौं अगाध लीला रची,
राम का नाम काहू न जानी ॥
राम का नाम लै कृस्न गीता कथी,
बाँधिया सेत तब मर्म जानी ॥
है कैसी निरगुन निराकार परम ज्योति,
तासु को नाम निरंकार मानी।
रूप बिन रेख बिन निगम अस्तुति करै,
सत्त की राह अकथ कहानी ॥
बिस्नु सुमिरन करै सिव जोग जाको धरै,
भनै सब ब्रह्म वेदान्त गाया ।
सनकादि ब्रह्मादि कोई पार पावै नहीं,
तासु का नाम कह रामराया ॥

कहै कबीर वह सक्स तहकीक करु,
राम का नाम जो पृथ्वी लाया ।

— कबीर साहब की ज्ञान गुदड़ी, रेखता 10

(8)

राधास्वामी मत के चतुर्थ आचार्य सन्त सतगुरु बाबूजी महाराज ने अपने बचन दिनांक 18 सितम्बर सन् 1931 ईसवी में रामायण के गूढ़ रहस्य को बड़े ही संक्षेप में इस तरह फरमाया है –

"रामायण की कथा में अन्तर की अवस्थाएँ हैं, जो अभ्यासी पर रास्ते में गुजरती हैं। मन ही रावन है और त्रिकुटी उसका स्थान है। दसवें द्वार तक उसके दस सिर हैं जो एक एक करके कटेंगे। जब एक सिर कटता है तो उससे प्रबल दूसरा सिर निकलता है। जब वह कटे तब तीसरा। इस तरह सिर निकलते और कटते जाते हैं। सुरत, सीताजी की तरह जब रावन जैसे प्रबल शत्रु से अपनी असमत[1] बचाये रक्खे और दया के आसरे चलकर दसवें द्वार में पहुँचे, तब इस रावन और महा रावन से छुटकारा हो।"

—अतीत की स्मृतियाँ, दूसरा भाग गुरुसाखी 1764 (ब)

(1) इज्जत।



परिशिष्ट दो

श्रीकृष्ण जी एवं महाभारत से सम्बन्धित उद्धरण

(1)

कर्म करते हुए अकर्म रहना

एक गोपी को शादी के बाद 10-12 वर्ष तक कोई सन्तान नहीं हुई। पास पड़ौस और रिश्ते वाले उसे बाँझ कहकर अपमानित करने लगे। इस बात का उसे बहुत रंज था मगर क्या करती? उसके बस की बात तो यह थी नहीं। आखिर उसे अपने बाल सखा कृष्ण की याद आई और विश्वास था कि वह जरूर उसका दुःख दूर करेंगे।

जब वह कृष्ण के पास पहुंची तो कृष्ण ने उसका प्रेम से स्वागत किया और दोनों बड़ी देर तक बचपन की यादों में खोये रहे। फिर कृष्ण ने गोपी से उसके आने का कारण पूछा तो गोपी ने अपना दुखड़ा बयान किया। कृष्ण बोले "चिंता की बात नहीं। तुम नदी पार दुर्वासा ऋषि के पास जाओ। काम बन जायगा।" गोपी ने पूछा, लेकिन मैं जमना पार जाऊँ कैसे? कृष्ण बोले, जमना से कहना कि यदि कृष्ण ने कभी स्त्री संग न किया हो तो रास्ता दे देना। गोपी यह सुनकर चकित रह गई। इनके तो सोलह हजार स्त्रियाँ हैं और बाल बच्चे भी हैं, फिर भी यों कह रहे हैं। फिर उसे खयाल आया

कि कृष्ण कभी गलत बात नहीं कहते। वह जमुना किनारे पहुँची और हाथ जोड़ कर कृष्णजी की बात दोहराई। जमुना दो हिस्सों में बँट गई और गोपी उस पार चली गई।

दुर्वासा ऋषि के आश्रम में जाकर उनके सामने भोग और फल रक्खे और हाथ जोड़कर अपना मनोरथ कहा। दुर्वासा ने पूछा, तुझे किसने भेजा? गोपी बोली, मेरे कृष्ण ने। दुर्वासा ऋषि मुस्कराये और बोले, कृष्ण तो स्वयं समर्थ हैं। यह काम तो वह भी कर सकते थे। मेरे पास भेजने की क्या जरूरत थी? गोपी बोली, मैं क्या जानूँ? कृष्ण ने जो कहा वह मैंने किया और कृष्ण कभी गलत सलाह नहीं देते। दुर्वासा बोले, मैं समझ गया। वह बड़ा चितचोर है। अपने बजाय अपने भक्तों का महात्तम बढ़ाने के लिए वह ऐसे खेल खेलता है। फिर दुर्वासा ऋषि ने भोग लगाया और गोपी को एक फल देकर आशीर्वाद दिया, जा तेरा मनोरथ पूर्ण होगा। गोपी ने पूछा, लेकिन मैं जमुना पार कैसे जाऊँगी? ऋषि ने पूछा, आते समय तूने जमुना कैसे पार की थी? गोपी ने कृष्ण की बात बताई। तब दुर्वासा बोले, इस बार जमुना से कहना कि यदि दुर्वासा ने भोजन नहीं ग्रहण किया हो तो मार्ग दे देना। गोपी फिर चक्कर में पड़ गई। मेरे सामने अभी इन्होंने भोग लगाया और अब यों कह रहे हैं। मगर आज्ञा का पालन करना था। सो वहाँ से चल दी और जमुना किनारे पहुँच कर दुर्वासाजी की बात कही। जमुना ने मार्ग दे दिया।

जब कृष्ण के पास पहुँची तो कृष्ण से उसने इन उलटी बातों का भेद पूछा। कृष्ण बोले, हम अपने मन की इच्छा से

कोई भोग नहीं करते। संसार में आये हैं तो सांसारिक काम करने पड़ते हैं लेकिन उसमें आसक्त नहीं होते। इसलिये वे अकर्म ही होते हैं। उसी तरह दुर्वासा का भोजन ग्रहण करना है। दूसरों की इच्छा के लिए, उन्हें प्रसन्न करने के लिए कर्म करने पड़ते हैं।

—प्रतीत की स्मृतियाँ, भाग 4, गुरुसाखी 223

(2)

भक्ति

एक मर्तबा कृष्ण महाराज ने सिर दर्द का बहाना किया। बड़े-बड़े उपचार किये गये, मगर सिर दर्द किसी प्रकार अच्छा नहीं हुआ। तब उनके भक्तों ने प्रार्थना की कि महाराज! आप ही बतलाइये कि आपका सिर दर्द कैसे ठीक होगा। उन्होंने उत्तर दिया कि "अगर कोई भक्त अपने चरनों की रज मेरे माथे पर लगावे तो शायद सिर दर्द ठीक हो जावे।" परन्तु, अन्य भक्तों की क्या बात, ऊधोजी से परम भक्त ने भी अपने चरनो की रज नहीं दी, यह सोचकर कि क्या हम नर्क में जावेंगे। तब सब लोग गोपियों के पास गये और सब हाल सुनाया कि भगवान ने चरनों की रज के लिए कहा है। इतना सुनना था कि वह बोलीं, "लो, जितनी रज चाहिये, ले जाओ, वह तो अच्छे हो जावें।" (अर्थात् हमारे प्रीतम अच्छे हों, हमें स्वर्ग या नर्क में जाने का विचार नहीं है। हमें केवल अपने प्रीतम के अच्छे होने का खयाल है।) अतः हमारी भक्ति व प्रीति भी उन गोपियों की तरह

होनी चाहिये जिनको अपने प्रीतम के सिवा और कोई ख़याल नहीं था।

–प्रतीत की स्मृतियाँ, भाग 1 व 2, गुरुसाखी 115

(3)

महाभारत में कथा है कि एक बार द्रोणाचार्य ने दुर्योधन से कहा कि किसी ईमानदार और भले आदमी को ले आओ और युधिष्ठिर से कहा कि किसी बेईमान और बदमाश आदमी को ढूँढ़ लाओ। दुर्योधन को सब लोग बदमाश और बेईमान नजर आते थे। बर-अक्स इसके युधिष्ठिर की नजर में हर एक आदमी ईमानदार और भला था। अतः दोनों खाली हाथ लौट आये।

–प्रतीत की स्मृतियाँ, भाग 1 व 2, गुरुसाखी 472

(4)

विषमस्य विषमौषधम्

जहर जहर से मरता है

भीमसेन को महाबली देखकर दुर्योधन को सबसे अधिक ईर्षा और जलन हुई। दुर्योधन ने सोचा कि बल तो हम लोगों में इतना है ही नहीं जो भीमसेन से हम बदला ले सकें। बल से पाँडवों को हराना या मारना सम्भव नहीं। छल और युक्ति से काम लेना चाहिये। एक बार दुर्योधन बोला, चलो हम सब लोग गंगा के किनारे जल विहार करने चलें। वहाँ भोजन करते समय दुर्योधन ने विष मिली हुई मिठाई

भीमसेन को खिला दी। विष के प्रभाव से भीमसेन बेहोश होकर वहीं गंगा किनारे पड़े रह गये। उनका शरीर काठ की तरह हो गया। इस बात को सिर्फ दुर्योधन ने देखा और किसी ने नहीं। तब चुपचाप उनके पास जाकर लताओं से खूब मजबूती के साथ उन्हें बाँधा और गंगा में डुबो दिया। उसी दशा में भीमसेन गंगा के भीतर ही भीतर नागलोक में जा पहुँचे। वहाँ के महा-विषधर नागों को इन्हें देख बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कहा कि यह मनुष्य यहाँ कैसे आया? वे अपने पैंने दाँतों से भीमसेन को बार बार काटने लगे। फल यह हुआ कि सर्पों का विष भीमसेन के शरीर में जाने से मिठाई के साथ खाया हुआ विष नष्ट हो गया। विष दूर हो जाने से भीमसेन को चेत हो आया।

— प्रतीत की स्मृतियाँ, भाग 6, गुरुसाखी 168

(5)

आपा

जब तक आपा मौजूद है, मालिक नहीं मिल सकता। द्रौपदी-चीरहरण की तस्वीर में दिखलाया गया है कि दुर्योधन ने सारी साड़ी खोल ली है, केवल एक गाँठ पर बँधी है। भगवान ने तब साड़ी बढ़ाकर लाज रक्खी है। द्रौपदी के मन में यह आपा था कि मेरे पाँच हैं। अन्य स्त्रियों के तो एक ही पति है। मेरे पाँच पति हैं, और वे भी वीर और बहादुर, मुझे बचा लेंगे। लेकिन जब वह कुछ न कर सके और साड़ी सारी खुल गई और केवल गाँठ रह गई तो उसने भगवान

को याद किया, और साड़ी बढ़ गई। क्या भगवान यह सब जानते नहीं थे कि क्या हो रहा है? क्या भगवान पहले से रक्षा नहीं कर सकते थे? लेकिन भगवान को तो द्रौपदी का आपा तोड़ना था कि मेरे पाँच हैं। वह आपा रूपी गाँठ जैसे ही खुलने लगी यानी जैसे ही आपा टूटने लगा कि भगवान आ मौजूद हुए। इसलिये हमारे में जब तक आपा या अहंकार है, मालिक नहीं मिल सकता।

— प्रतीत की स्मृतियाँ, भाग 1 व 2, गुरुसाखी 115

(6)

"पिछले कर्म भोग हैं सोई"

द्रौपदी का चीरहरण

यह बात निश्चित है कि कर्म का फल मिलता ही है—अच्छा या बुरा। ईश्वर अपनी ओर से कुछ नहीं देता। वह सिर्फ मनुष्य को कर्मानुसार न्याय देता है। मनुष्य की किसी कार्रवाई में वह दखल नहीं देता। सुख (स्वर्ग) और दुःख (नर्क) की पूँजी मनुष्य अपने कर्म से स्वयं जोड़ता है।

जिसने जैसा दिया है वैसा ही पाया है। फल के लिए पहले देना (त्याग करना) पड़ता है।

पहले दाता शिष भया, जिन तन मन अरपा शीश।
पीछे दाता गुरु भये, जिन नाम दियो बखशीश ॥

महाभारत में एक प्रसंग है कि जब द्रौपदी का भरी सभा में चीरहरण हुआ उस समय कृष्ण महाराज ने वस्त्र

देकर उसकी लाज बचाई थी। कृष्ण महाराज ने द्रौपदी पर दया करके या उस पर मेहरबान होकर उसे वस्त्रदान नहीं किया था बल्कि द्रौपदी ने अपने पिछले पुण्य कर्म के बल पर लज्जा रक्षण और वस्त्र की पूँजी संचित की थी जो ऐन मौके पर पुकार करने पर उसे बख्शी गई।

यह कथा यों है कि द्रौपदी अपने किसी पिछले जन्म में एक दिन नदी पर नहाने गई थी। उसके सामने थोड़ी दूर पर एक सन्यासी भी स्नान कर रहा था। द्रौपदी ने स्नान किया, कपड़े धोये और बदले और वह घर लौटने की तैयारी करने लगी। सहज ही उसकी नजर संन्यासी की ओर गई जो ठण्ड से ठिठुर रहा था। उसका मन्त्र जाप हो चुका था, क्योंकि उसके होट बन्द थे। यह देखकर द्रौपदी को शंका हुई कि जरूर कोई मजबूरी है जिसके कारण संन्यासी पानी से बाहर नहीं निकल रहा है।

द्रौपदी भाँप गई और उसने अपनी साड़ी का एक पल्ला फाड़कर नदी में डाला जो बहता हुआ संन्यासी के पास से जाने लगा। संन्यासी ने उसे पकड़ने की कोशिश की मगर वह उसके हाथ नहीं आया। द्रौपदी को विश्वास हो गया कि उसकी शंका सही है। संन्यासी की लंगोटी स्नान करते समय नदी के प्रवाह में बह गई थी और बगैर लंगोटी के पानी से बाहर निकलने में वह संकोच कर रहा था।

द्रौपदी ने तुरन्त साड़ी की चार पांच पट्टियां फाड़कर पानी में छोड़ीं, जिनमें से एक संन्यासी के हाथ लगी और उसके चेहरे पर समाधान का भाव झलक उठा। द्रौपदी ने

जब देखा कि सन्यासी को उसकी इच्छित वस्तु मिल गई तो वह घर लौट गई।

सन्यासी जल के बाहर निकला और अपने निवास स्थान पर जाकर लंगोटी बदली और द्रौपदी से मिला। साड़ी की पट्टी को सुखाकर उसके धागे अलग किये और उन्हें एक-एक करके होम अग्नि को समर्पण किया और ईश्वर से प्रार्थना की कि कभी भी इस परोपकारी स्त्री को वस्त्र की कमी महसूस न हो और जैसी उसने मेरी लाज रखी उसी प्रकार उसकी लाज की रक्षा हो।

यही पूँजी द्रौपदी को द्वापर युग में चीरहरण के समय कृष्ण महाराज ने वापस की और उसकी लाज रक्खी।

— प्रतीत की स्मृतियाँ, भाग 6, गुरुसाखी 122

(7)

"मसलहत"

कर्ण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य की बाणवर्षा से पाण्डवों की सेना की बुरी गति होते देखकर युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा कि कोई यथोचित काम करना चाहिये। अर्जुन ने कृष्ण से कहा कि बहुत जल्द हमारा रथ कर्ण के पास ले चलो। कृष्ण ने कहा कि हे अर्जुन! कई कारण ऐसे हैं जिससे इस समय तुम्हारा कर्ण के सामने जाना उचित नहीं। निशाचर घटोत्कच (भीम का पुत्र) कर्ण की अच्छी तरह खबर ले सकता है। अतएव उसे ही यह काम सुपुर्द करना चाहिये। घटोत्कच ने राक्षसी माया रची और कौरवों की सेना व कर्ण

का बुरा हाल कर दिया। घटोत्कच ने शतघ्नी की एक ऐसी वार की कि कर्ण के चारों घोड़े एक ही साथ मरकर जमीन पर गिर पड़े। कर्ण बिना रथ के हो गया। उस समय कर्ण ने देखा कि हम तो इधर रथहीन खड़े हैं, उधर हमारी सेना लड़ाई के मैदान में नहीं है। राक्षस घटोत्कच जीत के मद में मस्त हो रहा है, अब क्या करना चाहिये। इस तरह से वे सोच ही रहे थे कि चारों ओर से कौरवों का दल बड़े कातर स्वर से इस प्रकार विनती करने लगा–

हे कर्ण! जान पड़ता है, कौरवों की सेना का आज ही जड़ से नाश हो जायेगा। अतएव इंद्र की दी हुई शक्ति चलाकर तुम तुरन्त ही इस निशाचर का संहार करो। यह घोर और भयंकर रात बीत जाने पर अर्जुन को परास्त करने के लिए हमारे वीरों को आगे बहुत मौके मिलते रहेंगे। इससे इस अमोघ शक्ति को उनके लिए व्यर्थ न रख छोड़कर इससे इस राक्षस को इसी समय मार डालिये। इसे अब और अधिक देर तक जीता न रखिये।

इस महा भयंकर रात में कर्ण अपने पक्ष वालों की दुःख भरी पुकार की उपेक्षा न कर सके। अर्जुन के मारने के लिए बहुत दिनों से बड़े यत्न से रक्खी हुई उस अमोघ शक्ति को उन्हें हाथ में लेना ही पड़ा। बस, उसका छूटना था कि घटोत्कच के हृदय को फाड़ दिया और ऊपर आकाश की तरफ उड़कर इन्द्र के पास पहुँच गई। कौरव लोग निशाचर घटोत्कच को मरा देख मारे आनन्द के सिंहनाद करने और शंख बजाने लगे। दुर्योधन भी बड़े प्रसन्न हुए।

परन्तु पाण्डवों को शोक से व्याकुल देखकर भी कृष्ण आनन्द प्रकट करने लगे। उनके इस काम से पाण्डवों का दुःख दूना हो गया। तब अर्जुन ने कृष्ण से कहा—पुत्र घटोत्कच की मृत्यु से हम लोग तो मारे शोक से विकल हो रहे हैं, आप क्यों ऐसे कुसमय में खुश हो रहे हैं?

कृष्ण ने कहा—हे अर्जुन! इन्द्र की दी हुई महाशक्ति को छोड़कर कर्ण ने आज बहुत ही अच्छा काम किया है। कर्ण ने अपना कवच और कुण्डल देकर जिस दिन से इस शक्ति को प्राप्त किया था उसी दिन से उन्होंने इसे तुम्हारे मारने के लिए बड़े यत्न से रख छोड़ा था। हे अर्जुन! कर्ण के पास से उस शक्ति के चले जाने से आज तुम उन्हें मरा हुआ समझो। उसी से तुम्हें रोक कर हमने निशाचर घटोत्कच को कर्ण से युद्ध करने भेजा था। यह शक्ति तुम्हारी मृत्यु का कारण थी। अतएव जब तक इससे बचने का उपाय हम नहीं कर सके तब तक न हमें निद्रा आई और न हमें किसी प्रकार का हर्ष हुआ। आज हमारा कौशल सफल हुआ। आज हमारी युक्ति कारगर हुई। इसी से हमें इस समय आनन्द हो रहा है।

मसलहत से यानी गुप्त लाभ और भलाई से कृष्ण ने अर्जुन को न भेजकर घटोत्कच को कर्ण से युद्ध करने भेजा। उस समय इस बात को कोई नहीं समझा। जब काम हो गया तब सब लोग समझे और बड़े हर्षित हुए। इसे मसलहत कहते हैं।

इन्द्र की दी हुई शक्ति को कर्ण केवल एक बार ही चला सकता था। कर्ण ने उसे अर्जुन के लिए रख छोड़ा था। कृष्ण की युक्ति से कर्ण को उस शक्ति का घटोत्कच पर प्रयोग करना पड़ा। तब अर्जुन का कर्ण को मारना आसान हो गया। उस शक्ति के रहते अर्जुन कर्ण को नहीं मार सकता था।

— प्रतीत की स्मृतियाँ, भाग 6, गुरुसाखी 272

(8)

युधिष्ठिर तो सत्य व धर्म के प्रतीक थे, फिर क्या कारण है कि वह जुआ खेले और दाँव में अपने प्रिय भाइयों, प्रियतमा द्रौपदी व स्वयं अपने आपको भी हार गये। यह घटना इस बात की प्रतीक है कि परमार्थ में सच्चाई से लगने पर मनुष्य को एक-बारगी सभी कुछ त्यागना पड़ता है। मालिक सब कुछ हर लेता है पर फिर उसे सब कुछ दे भी देता है। इसका प्रतीक है महाराज धृतराष्ट्र के आदेश से पाण्डवों व द्रौपदी को दासत्व से मुक्त करना व उनका राज पाट वापस करना।

(9)

धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों की मृत्यु का कारण

धृतराष्ट्र को अपने सौ पुत्रों के मारे जाने का बड़ा शोक था और वे इतने अधिक क्षमतावान थे कि उन्हें अपने पूर्व के सौ मानव जन्मों की बात याद थी। एक दिन उन्होंने

शोकाकुल होकर भगवान श्रीकृष्ण से पूछा "भगवन! मुझे सौ जन्मों की बात याद है। इन सौ जन्मों में मुझसे ऐसा कोई पाप नहीं बना जिसका फल मेरे जीते जी मेरे सौ वीर पुत्रों का मरण हो, फिर ऐसा क्यों हुआ?" यह सुनकर भगवान ने धृतराष्ट्र के विगत सौ जन्मों के पूर्व के एक जन्म का दृश्य उनके सामने उपस्थित किया।

एक नगर में एक राजा है। राजा बड़े सज्जन हैं पर वे कुछ चटोरे हैं। उनका रसोइया छिपा मांसाहारी है। उसने राजा को प्रसन्न करने की एक बात सोची। राजा के बगीचे में हंस हंसनी का एक जोड़ा था। हंसनी ने सौ अण्डे दिये और उसके सौ बच्चे हुए। रसोइया एक दिन उनमें से एक बच्चे को ले आया और उसे मारकर, राँधकर राजा को खिला दिया। राजा को वह स्वाद लगा। राजा ने रसोइया की प्रशंसा की और उसे इनाम दिया। रसोइया इनाम के लोभ से सौ दिनों तक एक एक बच्चे को मारकर राजा को खिलाता रहा। राजा निरामिष भोजी थे पर उन्होंने रसोइए से पूछा तक नहीं कि यह क्या चीज है। रसोइए ने इस डर से बताया नहीं कि निरामिष भोजी राजा को पता लगने पर इनाम तो दूर रहा, वे नाराज होकर दण्ड देंगे।

राजा ने स्वादवश बिना पूछे हंस के सौ बच्चे खा लिये। यही उनका पाप था। श्रीकृष्ण ने यह दृश्य दिखाकर राजा धृतराष्ट्र से कहा कि 'वही राजा तुम हो। बीच में सौ जन्मों में तुम्हारे कर्म संचय में पुण्य अधिक होने के कारण इस

पाप का फल भोगने का अवसर नहीं आया। इस जन्म में तुम्हारा वह कर्म फल प्रकट हुआ।'

— प्रतीत की स्मृतियाँ, भाग 5, गुरुसाखी 260-261

(10)

अग्रपूजा

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में व्यास के सुझाव पर भगवान श्रीकृष्ण की अग्रपूजा कराई गई। इस पूजा के माध्यम से उनके अवतार होने का संकेत दिया गया। इसके बाद ही वे व्यापक रूप में अवतार माने गये। इससे पहले ऐसी मान्यता नहीं थी।

श्रीकृष्ण सामान्य से अधिक बलशाली और नीतिज्ञ राजा तो माने जाते थे किन्तु अवतार नहीं माने जाते थे। वे दार्शनिक के रूप में भी प्रसिद्ध थे। किन्तु उनको अवतार के रूप में अब तक मान्यता प्राप्त नहीं थी। राज सभा में अनेकों ऐसे राजा थे जो श्रीकृष्ण को एक मानव से अधिक मानने को तैयार न थे और न उन्हें अग्रपूजा यानी प्रथम पूजा का अधिकारी ही मानते थे। उन्होंने अग्रपूजा के हेतु उपस्थित समुदाय से पाराशर, व्यास, भीष्म, द्रोण आदि के नाम प्रस्तावित किये किन्तु श्रीव्यास की युक्तियों से बहुमत श्रीकृष्ण के पक्ष में हुआ। विरोधी राजाओं के रूप में शिशुपाल ने, जो चेदि नरेश और पाण्डवों का सम्बन्धी भी था, श्रीकृष्ण को गिनकर 101 गालियाँ दीं। इस पर श्रीकृष्ण

ने अपने चक्र द्वारा सभा में ही उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। फिर किसी ने विरोध नहीं किया। धीरे धीरे श्रीकृष्ण जन सामान्य में विष्णु के और विद्वानों में पारब्रह्म के अवतार माने जाने लगे। कौरव पाण्डव युद्ध में अर्जुन को दिया गया गीतोपदेश में श्रीकृष्ण ने अपने को ''अव्यक्त'' और ''अक्षर'' बतलाया है और अनेकों स्थलों पर अपनी स्थिति ब्रह्म से ऊपर बतलाई है और अपने धाम को त्रिगुणातीत, अविनाशी बतलाया है, जहाँ पहुँच कर मनुष्य जन्म मरन से रहित हो जाता है। संकेत रूप में सहसदल कँवल, त्रिकुटी और सुन्न के धनियों का दो स्थलों पर उल्लेख किया है। ब्रह्म के रूप को उगते हुए सूर्य के रूप के समान बतलाया है और यह भी कहा है कि ब्रह्म के लोक तक पुनरावतन लगा रहता है। मेरे धाम में पुनर्जन्म नहीं है।

(11)

अन्तर में जो इसके और कुटुम्बी हैं यानी मन माया इन्द्रियाँ काल कर्म और पाँच दूत इनसे लड़ाई करनी पड़ती है। इसको जिहादे अकबर कहते हैं जैसे हंडरेड इयर्स वार (Hundred Years War) यानी सौ बरस की जंग वगैरा लड़ाई हुई हैं, वैसे ही यह चार जन्म का युद्ध है।

(12)

महाभारत मन की लड़ाई है। मन के विकारी अंगों को एक एक को चुन चुनकर मारना महाभारत है। यह महाभारत

की लड़ाई हर एक को अपने घट में करनी होगी। मन का स्थान त्रिकुटी है। वहाँ मन छूट जाता है। महाभारत में कई जगह इसका इशारा है—

(1) प्रातःकाल बन्दीजन और वैतालिकों के मधुर मधुर गीतों से महात्मा कृष्ण जगे। उठकर उन्होंने स्नान किया। जप और होम आदि करके बाल सूर्य की उपासना की।

बालसूर्य त्रिकुटी का उगता हुआ सूर्य।

(2) नये निकले हुए सूर्य के प्रकाश में सोने की झूलों और हौदों से शोभित हाथी और सोने के ही परदे पड़े हुए रथ, इस तरह मालूम होने लगे जैसे मेघ मण्डल में बिजली चमक रही हो।

सोना त्रिकुटी, हिरण्यगर्भ।

मेघ—बादल की गरज, त्रिकुटी की धुन।

(3) सोने के रथ पर सवार द्रोण, युद्ध का आरम्भ करके, पाण्डवों की सेना का नाश करने लगे। बार-बार गरजने वाले मेघों से...।

सोना, बादल की गरज—त्रिकुटी।

(4) अर्जुन ने सोने के कामवाला अपना देवदत्त शंख बड़े जोर से बजाया।

सोना वही त्रिकुटी।

पूर्णमासी के चन्द्र का जिक्र भी महाभारत में है।

पूर्णमासी के चन्द्र से मतलब सुन्न से है। यह अन्तरी भेद की बातें है। इन्हें कोई क्या समझे?

—प्रतीत की स्मृतियाँ, भाग 6, गुरुसाखी 293

(13)

ड्रामा या नाटक की पुस्तक में सबसे पहले पात्रों की सूची दी जाती है। महाभारत के पात्रों में सर्वप्रथम नाम विदुर का है यद्यपि वे दासी पुत्र थे। सबसे पहले उनका नाम देने का कारण भक्ति है। भक्ति में वह सर्वश्रेष्ठ थे।

— प्रतीत की स्मृतियाँ, भाग 4, गुरुसाखी 203

(14)

राधास्वामी और राधाकृष्ण का अन्तर

''राधास्वामी' कुल्ल मालिक का जाती सच्चा और ध्वन्यात्मक नाम है। 'स्वामी' नाम आदि शब्द का है। और 'राधा' नाम 'आदि सुरत' का है जो स्वामी के चरनों से निकली।

'राधाकृष्ण' नाम काल का है। राधा नाम आद्या का है जो दसवें द्वार और उसके ऊपर है। कृष्ण नाम काल का है।

राधास्वामी और राधाकृष्ण दोनों शब्दों में राधा है। इन दोनों राधा के अन्तर को राधास्वामी मत के संस्थापक —स्वामीजी महाराज ने राधास्वामी शब्द में आये राधा के लिए फरमाया है कि

राधा आदि सुरत का नाम

और राधाकृष्ण में आये राधा के लिए फरमाया है

राधा सुरत मिली जिस मन को।
वही कृष्ण पहुँचा दस द्वार ॥

राधास्वामी की राधा, स्वामी यानी राधास्वामी में पहुँचाने वाली है।

बैठक स्वामी अद्भुती राधा निरख निहार।
और न कोई लख सके शोभा अगम अपार ॥

राधास्वामी नाम का राधाकृष्ण या राधेश्याम नामों से कोई सम्बन्ध नहीं है। राधास्वामी नाम उस चैतन्य भण्डार और चैतन्य धार के साथ होने वाले शब्द का वर्णमय रूप है जिसके द्वारा कुल्ल कर्त्तार ने सारी रचना पैदा की। राधाकृष्ण या राधेश्याम काल का नाम है। राधास्वामी मत के सतसंगियों को राधास्वामी नाम का ही सुमरन और उच्चारण करना चाहिये।

— प्रश्नोत्तर सन्तदास, पृष्ठ 88

(15)

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत, प्रबृद्धो लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृतः। मैं लोकों का क्षय अर्थात् विनाश करने वाला ''काल'' हूँ। मैं लोकों का विनाश करने में प्रवृत्त हूँ। भगवद्गीता के अध्याय 11, श्लोक 32 में कृष्ण ने अपने आपको ''काल'' बतलाया है।

श्रीमद्भागवत के स्कन्ध 11, अध्याय 10, श्लोक 30 और स्कन्ध 11, अध्याय 1, श्लोक 24 में भी कृष्ण को काल रूप लिखा है।

अथर्व वेद के 19 वें काण्ड के 53 वें और 54 वें सूक्तों में "काल" की स्तुति की है। इन सूक्तों का नाम ही "काल सूक्त" है। इनमें ईश्वर ब्रह्म और परब्रह्म को 'काल" या "काल पुरुष" कहा है।

—प्रतीत की स्मृतियाँ, भाग 1 व 2, गुरुसाखी 140

(16)

मुरली की छाया धुन सुनकर।
मोहे सब सुर नर और नार ॥

(प्रेमबानी 2, बचन 12, शब्द 21)

असली मुरली या बंसरी भँवरागुफा में है। उसकी छाया सुन्न यानी दशम द्वार में है। वह कृष्ण की मुरली या बंसरी है। इस छाया रूप की मुरली को सुनकर ही सब सुर नर और नारी मोहित हो गये। अगर भँवरगुफा की मुरली सुनने को मिले तो क्या आनन्द प्राप्त होगा वह अवर्णनीय है। उस मुरली या बंसरी के बारे में सूरदासजी ने कहा है कि मैंने वह बंसी सुनी है जिस पर "लज्जित कोटिन श्याम।" एक श्याम क्या, करोड़ों श्याम उस बंसी के आगे लज्जित हैं। वहाँ श्याम की गति ही नहीं है।

— प्रतीत की स्मृतियाँ, भाग 4, गुरुसाखी 155

(17)

भगवद्गीता

भगवद्गीता की न सिर्फ भारत में बल्कि दुनिया के अन्य देशों में भी बड़ी कदर है। छः शास्त्रों में हिंदू दर्शन की छः विभिन्न शाखों का विचार किया गया है। गीता में छओं दर्शन का लुब्बे लुआब यानी सार और निचोड़ है। जब अर्जुन ने अपने चारों ओर अपने कुटुम्बियों, मित्रों, आचार्यों और अन्य प्रियजनों को देखा कि जिनके साथ युद्ध करना पड़ेगा और जिनको मारना पड़ेगा, तो उसका दिल बैठने लगा। तब श्रीकृष्ण महाराज ने उसे अपने विराट स्वरूप के दर्शन कराये और बतलाया कि जिनसे युद्ध करना है, वे सब मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं, इसलिये युद्ध भूमि में उनको मारने में अर्जुन की कोई जिम्मेदारी न होगी। इस प्रकार उन्होंने अर्जुन को अपना धर्म पालन करने यानी युद्ध करने और मारने का उपदेश दिया। गीता का यह हिस्सा बहुत शिक्षाप्रद है, जिसमें कर्म के फल की इच्छा न रखते हुए निष्काम कर्म करने और भक्ति और सरन की महिमा का वर्णन है। लेकिन ये उपदेश उस घाट या स्तर से किये गये थे जो कि काल की हद के अन्दर हैं। निर्मल और शुद्ध चैतन्य के घाट के नहीं हैं। इसलिये ये उपदेश या धर्म मन और माया के देश के परे निर्मल चैतन्य के देश में नहीं ले जा सकते। इनमें पुरुष या देव की संहारक शक्ति का जोर और प्राबल्य है। कौरवों और अन्य लोगों का विनाश जोर

और जबरदस्ती और बल से किया गया। दयाल कभी बल का प्रयोग नहीं करते। किसी का विनाश नहीं करते। जोर और जबरदस्ती नहीं करते। उनका जौहर और सार तत्त्व प्रेम है और हर एक काम प्रेम से करते हैं। दयाल देश में, मार काट खून बहाने और किसी किस्म की भी जबरदस्ती का नामो निशान नहीं है। मार काट करना और खून बहाना, हर हालत में, दूषित और घृणास्पद कार्य है, सो दयाल पुरुष कभी रवा नहीं रखते। प्रेम में बड़ी भारी शक्ति है और प्रेम से, जो चाहे सो किया और कराया जा सकता है। गीता या अन्य किसी धर्म पुस्तक की ओट में जो लोग वे कार्य करते हैं, वे बड़ी गलती में हैं और इससे उनके जीव के कल्याण में बड़ा हर्ज होगा। यह धर्म करने से कर्मों का बीज नाश नहीं हो सकता, जिनमें जोर और जुल्म और मार काट रवाँ रक्खी गई है। कर्म-बीज केवल सुरत की कार्रवाई से नाश होगा। काल के कर्म धर्म में खुद-गरजी और स्वार्थ लगा हुआ है। अगर वह सुख और आराम भी देता है तो इस बात का ध्यान रखता है कि उसके शासन और हुकूमत में फर्क न आने पावे। और याद रखना चाहिये कि वह अपने ही हल्के और हद के भीतर सुख और आराम दे सकता है। इसलिये गीता के उपदेशों के अनुसार दिये गये कर्म धर्म से कर्म-बीज नाश नहीं हो सकता, क्योंकि अगर कर्मों का बीज ही नाश हो जावे तो काल का शासन कैसे रह सकता है?

—राधास्वामी मत के चतुर्थ आचार्य सन्त सतगुरु बाबूजी महाराज के बचन, भाग 6, बचन 26, प्रसतर 2

(18)

गीता में कृष्ण महाराज ने अर्जुन से कहा था कि वेद की हद से जोकि तीन गुन से मिला हुआ है, न्यारा हो, यानी उसके ऊपर स्थान हासिल कर और सब कर्म धर्म छोड़ के एक मेरी सरन ले, तब काम बनेगा। और जब तक जीव वर्णाश्रम के कर्म और धर्म यानी उपासना में फँसा हुआ है, तब तक वेद का दास है यानी उसको वेद के कहने पर चलना पड़ता है और जब माया और तीन गुन की हद से निकल जाएगा तब वेद के सिर पर उसके चरन होंगे, यानी यह वेद के करता का करता हो जाएगा और उसका हुक्म वेद के हुक्म के ऊपर होगा।

त्रैगुण विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन

अर्थ—तीन गुण से मिला हुआ जो वेद है, उससे, हे अर्जुन! तू न्यारा हो ओर जहाँ तीन गुण नहीं हैं, वहाँ चल।

वर्णाश्रमाभिमानेन श्रुतिदासो भवेन्नरः।
वर्णाश्रमविहीनश्च श्रुतिपादोथ मूर्ध्वनि ॥

अर्थ—जिस मनुष्य को कि गृहस्थाश्रम के कर्म धर्म का अभिमान है, वह वेद का दास है और जो कि वर्णाश्रम से रहित है, उसके चरन वेद के सिर पर हैं।

अगुन सगुन दोउ ब्रह्म सरूपा।
व्यापक सत चित आनन्द रूपा।
मोरे मत बड़ नाम दुहूतै ॥

— — — —

ब्रह्म राम ते नाम बड़, बरदायक बरदान

— — — —

राम एक तापस तिय तारी।
नाम कोट खल कुमत सुधारी ॥
कहाँ लग कहूँ नाम प्रभुताई।
राम न सकहिं नाम गुन गाई ॥

— — — —

मोरे मन प्रभु अस विश्वासा।
राम से अधिक राम कर दासा ॥

— — — —

गुरु से बड़ नहीं अनामी

— राधास्वामी मत के तृतीय आचार्य सन्त सतगुरु महाराज साहब के बचन, भाग 2, पैरा 259



परिशिष्ट तीन

चितावनी

(1)

एक सीस का मानवा,
करता बहुतक हीस।
लंकापति रावन गया,
बीस भुजा दस सीस॥

—कबीर साखी संग्रह, भाग 1, 'चितावनी का अंग', कड़ी 108

(2)

करम गति टारे नाहिं टरी ॥टेक॥
मुनि वसिष्ठ से पण्डित ज्ञानी,
सोध के लगन धरी।
सीता हरन मरन दसरथ को,
बन में विपति परी ॥1॥
कहँ वह फन्द कहाँ वह पारधि,
कहँ वह मिरग चरी।
सीता को हरि ले गयो रावन,
सोने की लंका जरी ॥2॥
नीच हाथ हरिचन्द बिकाने,
बलि पाताल धरी।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृप,
गिरगिट जोनि परी ॥3॥

पाण्डव जिन के आपु सारथी,
तिन पर बिपति परी।
दुरजोधन को गर्ब घटाये,
जदु कुल नास करी ॥4॥
राहु केतु औ भानु चन्द्रमा,
बिधि संजोग परी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
होनी होके रही ॥5॥

—कबीर शब्दावली, भाग 1, 'चितावनी और उपदेश', शब्द 91

(3)

ढोल गँवार शूद्र पशु नारी।
सकल ताड़ना के अधिकारी ॥

ताड़ना = चोट मारना। मारना। हटा देना।

ढोल = एक प्रकार का बाजा जिसे लकड़ी से पीट कर बजाया जाता है।

गँवार = जो दुनिया में फँसा रहे और मालिक का नाम न ले। जिसको गुरु चरनों में विश्वास नहीं आता।

"मन है बड़ा गँवार,
करे नहिं चरनन विश्वासा।"

— प्रेमबानी राधास्वामी 4, शब्द 55, बचन 40, कड़ी 2

शूद्र = जिसको मालिक की मौजूदगी में विश्वास नहीं।

पशु = जिस मनुष्य को परलोक का खयाल नहीं है यानी जिसको यह खयाल नहीं आता कि इस

रूप में आने से पहले मैं कहाँ और किस रूप में था और बाद मरने के कहाँ, किस रूप में जाऊँगा, वह मनुष्य हुआ तो क्या, पशु है। ऐसे मनुष्यों पर जब तक दुःख तकलीफ की मार न पड़े चेत नहीं आता।

नारी = औरतों के छः दोष, गुनाह, बड़े भारी हैं, यथा –

(1) शराब पीना, (2) बुरी सोहबत में रहना, (3) खाविन्द यानी पति को छोड़ देना, (4) आवारा फिरना, (5) पराये घर में रहना, या (6) सोना।

— प्रतीत की स्मृतियाँ, भाग 4, गुरुसाखी 245

(4)

काहू न मन बस कीन्हा,
जग में काहू न मन बस कीन्हा॥टेक॥
शृंगी ऋषी से बन में लूटे,
बिषै बिकार न जाने।
पठई नार भूप दसरथ ने,
पकरि अजोध्या आने ॥1॥
सूखे पत्र पवन भषि रहते,
पारासर से ज्ञानी।
भरमे रूप देख बनिता को,
कामकन्दला बानी ॥2॥
सोइ सुरपति जा की नार सुची सी,
निसदिन ही संग राखी।

गौतम के घर नारि उरबसी,
निगम कहत हैं साखी ॥3॥
पारबती सी पतनी जा के,
ता का मन क्यों डोले।
खलित भये छबि देखि मोहनी,
हाहा करिके बोले ॥4॥
एकै नाल कँवलसुत ब्रह्मा,
जग-उपराज कहावै ।
कहैं कबीर इक मन जीते बिन,
जिव आराम न पावै ॥5॥

—कबीर साहब की शब्दावली, भाग 1, शब्द 12

(5)

नाम सुमिर नर बावरे, तोरी सदा न देहियाँ रे ॥टेक॥
यह माया कहो कौन की, केकरे संग लागी रे।
गुदरी सी उठि जायगी, चित चेत अभागी रे ॥1॥
सोने की लंका बनी, भइ धूर की धानी रे।
सोइ रावन की साहिबी, छिन माँ बिलानी रे ॥2॥
सोरह जोजन के मद्ध में, चले छत्र की छाँही रे।
सोइ दुर्जोधन मिलि गये, माटी के माहीं रे ॥3॥
भवसागर में आई के, कछु कियो न नेका रे।
यह जीयरा अनमोल है, कौड़ी को फेका रे ॥4॥
कहै कबीर पुकारि के, इहाँ कोई न अपना रे।
यह जियरा चलि जायगा, जस रैन का सपना रे ॥5॥

— कबीर शब्दावली, भाग 2, शब्द 21

(6)

विषय भोगादि भोगने के लिए ताकत या शक्ति अंतर से यानी सहसदल कँवल से आती है। ज्ञान इंद्रियों के सात द्वारे यह हैं – दो कान, दो आँखें, दो नाक के नथुने और एक मुँह। इन पर जब धार आती है, तब विषय भोगादि और रसादि का भोग होता है यानी विषयरस का रस प्राप्त होता है। सहसदल कँवल को आठ पंखड़ियों का कँवल भी कहते हैं। प्रत्येक पंखड़ी से जो शक्ति की धार निकलती है, उसका ज्ञान इन्द्रियों के सात द्वारों से सम्बन्ध होता है। इस प्रकार 8 × 7 = 56 का अंक निकलता है। यही छप्पन भोग का भोगरस, भोगों से प्राप्त होने वाले सुख या मजे हैं। चूँकि प्रत्येक सुख और मजे के पीछे दुःख और त्रास लगा हुआ है, इसलिये छप्पन भोग के छप्पन त्रास भी हैं जिसका वर्णन सहजोबाई ने अपनी बानी में किया है। सहजोबाई की वे पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती है।

पकरि बाँधि जम लै चले, धर्मराय के पास।
कई बार आगे गये, छप्पन जहाँ तिरास ॥

बहुतक घोर नरक में पड़े।
बहुतक खंभन बाँधे खड़े ॥
बहुतन के सिर आरे धरिये।
बहुतक पापी गुरजों गढ़िये ॥
बहुतों का सिर नीचे किया।
ऊपर बाँधि पाँव जो दिया॥

तले कड़ाहे तेल जलाया।
भरकर करछे छोंक लगाया ॥
बहुतन पकरि कुण्ड में डारे।
जिन सिर कागा चोंचन मारे ॥
कहँ लग कहूँ त्रास बहुतेरे।
छप्पन त्रास कहे गुरु मेरे ॥

—प्रतीत की स्मृतियाँ, भाग 4, गुरुसाखी 277-278

(7)

फख्र[1] बकरे ने किया, मेरे सिवा कोई नहीं।
मैं ही मैं हूँ इस जहाँ में, दूसरा कोई नहीं ॥
जब न छोड़ी मैं मैं इस बेमाय[2] असबाब ने।
तंग आकर फेर दी गरदन पै, छुरी कस्साब ने ॥
खाल, गोश्त और हड्डी जो भी था जिस्मेजार[3] में।
कुछ पक गया, कुछ फुक गया, कुछ बिक गया बाजार में॥
अब रहीं आंतें फकत मैं मैं सुनाने के लिये।
ले गया नज्जाफ[4] उन्हें धुनकी बनाने के लिये ॥
चोट जब पड़ने लगी, फिर सदा[5] क्या आने लगी।
मैं के बदले तू ही तू की फिर सदा आने लगी ॥

— प्रतीत की स्मृतियाँ, भाग 5, गुरुसाखी 137

---

(1) गर्व, (2) बे-माय = जिसके पास पूँजी न हो, निर्धन, जिसके पास विद्या रूपी पूंजी न हो, बेइल्म, (3) क्षीण और दुर्बल शरीर, (4) धुनिया, (5) आवाज।

परिशिष्ट चार

सन्त बचन बानी के उद्धरण

(1)

रामायण के बनाने वाले तुलसीदासजी की गति ब्रह्माण्ड से ऊपर, निर्मल चैतन्य के देशों में थी। लेकिन उस समय के जीवों का अधिकार अपूर्ण और अधूरा होने के कारण, उन्होंने राम की भक्ति ही पर जोर दिया। पर फिर भी कई एक स्थलों पर उन्होंने सत्त नाम या शब्द की महिमा का संकेत में इशारा किया है, उदाहरणार्थ—

(1) ब्रह्म राम ते नाम बड़, बरदायक बरदानि

(2) अगुन सगुन दुई ब्रह्म सरूपा।
अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥
मोर मत बड़ नाम दुहूँ ते।
किये जेहि जुग निज बस निज बूते ॥

अर्थ – निर्गुण और सर्गुण ये दोनों ब्रह्म के स्वरूप हैं। ये अकथनीय, अथाह, अनादि और अनुपम हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि मेरी सम्मति में इन दोनों से नाम बड़ा है क्योंकि इसने अपने बल से सर्गुण और निर्गुण दोनों को अपने वश में कर रक्खा है।

(3) कहौ नाम बड़ राम तें निज विचार अनुसार

(4) कहो कहाँ लगि नाम बड़ाई।
रामु न सकहिं नाम गुन गाई ॥

(2)

सत्य धर्म व अधर्म

सुरत को मन और माया के जाल से निकाल कर उसे निज घर में पहुँचाना सत्य धर्म अथवा निज धर्म है। जिस बात से यह मतलब हासिल न हो या जिसका असर इसके विपरीत हो, वह अधर्म है।

—राधास्वामी मत के चतुर्थ आचार्य सन्त सतगुरु बाबूजी महाराज के बचन, भाग 6, पैराग्राफ 777-778

(3)

समुन्द पाटि लंका गयो,
सीता को भरतार।
ताहि अगस्त अचै गयो,
इन में को करतार ॥
गिरवर धारयो कृस्न जी,
द्रोनागिरि हनुमन्त।
सेस नाग सब सृष्टि सहारी,
इन में को भगवन्त ॥
राम कृस्न अवतार हैं,
इनकी नाहीं माँड।
जिन साहिब स्रिष्टी किया,
(सो) किन्हुँ न जाया राँड ॥
हम तो लखा तिहुँ लोक में,
तुम क्यों कहो अलेख।
सार सबद जाना नहीं,

धोखे पहिरा भेख ॥
देही माहिं बिदेह है,
साहिब सुरत सरूप।
अनन्त लोक में रमि रहा,
जा के रंग न रूप ॥
बूझो करता आपना,
मानो बचन हमार।
पाँच तत्त्व के भीतरे,
जा का यह संसार ॥
जनम मरन से रहित है,
मेरा साहिब सोय।
बलिहारी वहि पीव की,
जिन सिरजा सब कोय ॥

—कबीर साखी संग्रह, भाग 2, 'निज करता के निर्णय का अंग'

(4)

वेद थके ब्रह्मा थके, थाके सेस महेस।
गीताहू की गम नहीं, तहँ सन्त किया परबेस ॥

—कबीर साखी संग्रह, साध का अंग, साखी 86

(5)

सतगुरु सबद हृदय दृढ़ राखो,
करहु बिबेक बिचारा।
कहै कबीर सुनो भाई साधो,
है सतपुरुष अपारा ॥

—कबीर शब्दावली, भाग 2, उपदेश, शब्द 36, कड़ी 6

(6)

बचन

राधास्वामी साहब स्वामीजी महाराज

(राधास्वामी मत के संस्थापक)

जो पिछले महात्माओं या अवतारों या पैगम्बरों या देवताओं का सिर्फ इष्ट धारन करने को उनका मत समझेगा, उसका कभी छुटकारा नहीं होगा।

—सार बचन बार्तिक, भाग 1, बचन 52

(7)

जो सच्चा खोजी है, उसको चाहिये कि अपने वक्त के पूरे सन्त या पूरे साध का खोज करे यानी पूरे सतगुरु जहाँ मिलें, उनका संग करे और उन्हीं में सब देवता और अवतार और महात्मा और सन्त और साध, पिछलों को, मौजूद समझकर तन मन से सेवा और प्रीत और प्रतीत करके अपना काम उनसे बनवावे, जैसे कि पिछले बादशाह चाहे बड़े मुन्सिफ और दाता हुए पर उनके हाल सुनने से या उनके नाम लेने से हमको दौलत और हुकूमत और ओहदा नहीं मिल सकता है। जो हमको उसकी चाह है तो चाहिये कि अपने वक्त के बादशाह से मिलें तब अलबत्ता काम हमारा बनेगा। नहीं तो खराबी और हैरानी के सिवाय और कुछ हासिल नहीं होगा। मौलवी रूम कहते हैं :—

चूँकि करदी जाते मुर्शिद रा क बूल
हम खुदा दर जातश आमद हम रसूल

यानी पूरे सतगुरु और मालिक में भेद नहीं है और मुर्शिद में और सतगुरु में मालिक और अवतार सब आ गये यानी जो मालिक से मिलना चाहते हो तो फुकरा यानी सन्तों में सतगुरु का खोज करना चाहिये। और यह जरूरी नहीं कि सन्त कपड़े रंगे हुए को कहते होवें। सन्त उनको कहते हैं जो सच्चे मालिक से सत्तलोक में पहुंचकर मिल गये चाहे वह गृहस्थ में होवें या विरक्त, चाहे ब्राह्मण होवें या और कोई जाति में होवें। मालिक का दीदार दुनिया में और कहीं नहीं है या तो अपने अन्तर में या पूरे साध और पूरे सन्त में जो कि कुल्ल जगत के कुदरती गुरु हैं। और खोजने वालों को इन्हीं दो स्थान पर दर्शन मालिक का प्राप्त होगा और मूरत तीरथ व्रत और चार धाम और मन्दिरों में कहीं पता और निशान उसका नहीं मिलेगा। मौलवी रूम कहते हैं :–

मस्जिदे हस्त अन्दरूने औलिया
सिज्दागाहे जुमला आँजा खुदा

यानी महात्माओं के अन्तर में मन्दिर और मस्जिद है और वहीं जो कोई मालिक और खुदा को सिजदा[1] करना चाहे, मत्था टेके। और यह भी कहा है कि

गुफ्त पैगम्बर कि हक फरमूदा अस्त
मन न गुंजम हेच दर बाला ओ पस्त
दर दिले मोमिन बिगुंजम ई अजब
गर मरा ख्वाही अजाँ दिलहा तलब

(1) दण्डवत करना।

यानी खुदा ने पैगम्बर साहब से कहा कि मैं कहीं नहीं रहता हूँ, न आसमान में और न जमीन में, पर अपने प्रेमी भक्तों के हृदय में रहता हूँ। जो मुझको चाहे, वहाँ जाकर उनसे माँगे। इस वास्ते हर एक सच्चे चाहने वाले मालिक के को मुनासिब है कि अपने वक्त का सतगुरु खोजकर उनसे उपदेश लेवे और उन्हीं के चरनों में तन मन धन से सेवा और प्रीत और प्रतीत करे। थोड़े ही अरसे में उसका काम बन जावेगा। संस्कृत में भी कहा है।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुदेवो महेश्वरः।
गुरुरेव पर ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

श्रीकृष्ण महाराज ने भी भागवत और गीता में लिखा है कि जो कोई मुझसे मिला चाहे और मेरी सेवा और प्रीत करना चाहे तो मेरे जो प्रेमी जन साध और भक्त हैं उनकी जो सेवा करेगा, वह मेरी सेवा है और मैं उससे प्रसन्न होऊँगा और वही मेरा प्यारा है जो मेरे सच्चे भक्तों से प्रीत करता है। और न मैं आकाश में रहता हूँ और न पाताल में और न मैं स्वर्ग में रहता हूँ और न बैकुण्ठ में। जो साध और भक्त जन मेरे प्रेमी हैं, उनके हृदय में मेरा निवास है।

(8)

बड़ा अफसोस आता है कि आज कल बहुत से जीव ऐसे लोगों की बड़ी महिमा समझते हैं जो कि तप करते हैं यानी पंच अगिन तपते हैं या हाथ सुखाये फिरते हैं या जल

में खड़े रहते हैं या मेख और कीलों पर बैठते हैं या रात दिन मैदान में नंगे बैठे रहते हैं या खड़े रहते हैं या और किसी तरह अपनी देह को दुःख देकर तमाशा दिखाते हैं या अन्न की गिजा छोड़कर सिर्फ दूध पीते हैं या रात भर या दिन भर पाठ करते रहते हैं या गुफा में बैठकर सुमिरन और ध्यान करते हैं या जंगल और पहाड़ में जाकर बसते हैं या मौन धारण करते हैं और किसी से नहीं बोलते हैं या और अनेक तरह के पाखण्ड दिखाते हैं। इन लोगों की जाहिरी हालत बड़ी आश्चर्य रूप दिखाई देती है कि उससे देखने वाले के चित्त में उनकी बड़ी महिमा समाती है, पर जो उनसे चर्चा या बचन किये जावे तो हाल उनका मालूम पड़े कि किस मतलब से या कौन सी चाह लेकर या किस मजे के वास्ते या किस वजह से यह काम उन्होंने इख्तियार किये हैं। तब असल हाल उनका दरियाफ्त हो जावेगा कि वह सच्चे परमार्थी हैं या कपटी हैं या पाखण्डी।

अब समझना चाहिये कि सच्चा परमार्थी कौन है और कपटी और स्वार्थी कौन है। सच्चा परमार्थी वह है जो कुल्ल काम वास्ते इस मतलब के करता है कि सच्चे मालिक का दर्शन मिले और वह उस पर इस कदर मेहरबान होवे कि निज धाम में बासा देवे ताकि हमेशा का आनन्द प्राप्त होवे और आवा-गवन के सुख दुख से छूट जावे, सिवाय इसके दूसरी चाह इसके अन्तर में नहीं है और कपटी और स्वार्थी और पाखण्डी का यह हाल है कि जो काम वे करें, इस मतलब से करें कि जिसमें उनकी मान और प्रतिष्ठा और

पूजा होवे और राज और धन और भोग मिलें और सब लोग उनकी स्तुति करें और बड़ा मानें, चाहे इस लोक के भोग और मान की चाह होवे चाहे स्वर्ग व बैकुण्ठ और ब्रह्म लोक की। इन दोनों में कुछ बहुत फर्क नहीं है, क्योंकि एक जगह के भोग जल्दी नाश होते हैं और दूसरी जगह के देर बाद और चाहे कोई स्वर्ग और बैकुण्ठ और चाहे ब्रह्म लोक में पहुँचे और मृत्यु लोक में रहे, दोनों जगह काल और माया के पेट में है। सच्ची मोक्ष नहीं हो सकती। वह बारम्बार जन्मेगा और मरेगा और दुःख भोगना पड़ेगा। कृष्ण महाराज ने अर्जुन को एक चींटे की तरफ इशारा करके कहा कि यह बहुत बार ब्रह्मा हो चुका है और बहुत बार इन्द्र और इसी तरह और और बड़ी बड़ी गति पा चुका है। अब इस जन्म में चींटा हुआ है। अब समझना चाहिये कि जब ब्रह्मा और इन्द्र चौरासी के चक्कर से नहीं बचे, फिर जो जीव कि उनके लोक की आशा बाँध कर अभ्यास करते हैं, वह कैसे अमर होंगे और चौरासी के चक्कर से कैसे बचेंगे। इस वास्ते जो कोई कि ऐसे कर्म कर रहे हैं, जैसे होम और यज्ञ और तीर्थ और व्रत और मूर्ति पूजा और चार धाम परिक्रमा ओर जो जीव कि भक्ति कर रहे हैं, जैसे भक्ति सूर्य और चन्द्रमा की या गणेश और शिव और विष्णु और ब्रह्मा और शक्ति की या अवतार स्वरूप ईश्वर की, उन सबकी गति ईश्वर के लोक यानी बैकुण्ठ से ज्यादा नहीं हो सकती और ऐसी भाक्ति करके अपने अपने उपास्य के लोक में यानी सूर्य लोक, चन्द्र लोक, स्वर्ग लोक, शिव लोक,

विष्णु लोक, शक्ति लोक, ब्रह्म लोक और बैकुण्ठ लोक वगैरा में पहुँच कर और वहाँ कुछ अरसे बास करके फिर मृत्यु लोक में जन्मेंगे और फिर चौरासी के चक्कर में आवेंगे और जो कोई और छोटे देवताओं की भक्ति कर रहे हैं, उनका तो कुछ जिक्र ही नहीं है, वह तो इसी मृत्यु लोक में उसका फल पाकर यानी कुछ माया का सामान या सिद्धि और शक्ति हासिल करके फिर चौरासी के चक्कर में आवेंगे।

(9)

ऐसे लोग जो कि ब्रह्म ज्ञानी अपने को कहते हैं, आज कल बहुत हैं और अपने को सबसे उत्तम जानते हैं। ब्रह्म ज्ञान हकीकत में इन सब अभ्यासों से जिनका जिक्र पीछे हुआ, बहुत बड़ा है, पर जो सच्चा होवे और जो पोथियाँ पढ़कर ज्ञान हुआ, उसका नाम विद्या ज्ञान है। उससे मोक्ष कभी हासिल नहीं होगी, क्योंकि ज्ञान के ग्रन्थों में जगह जगह लिखा है कि ''तत्त्व ज्ञान मनो वासना नाश'' यानी जब तक कि मन और वासना का नाश न होगा, तब तक तत्त्व यानी मालिक का ज्ञान हासिल न होगा, और मन और वासना का नाश बिना योगाभ्यास के मुमकिन नहीं है, फिर जब तक कि योग की साधना नहीं करे तो वह ज्ञान बाचक है। इस कदर तो हर एक शख्स जिसको विद्या हासिल हुई, कह सकता है और समझ सकता है। फिर इसमें क्या बड़ाई हुई और मन और इंद्रियों का क्या दमन हुआ? आजकल जो अपने तईं ब्रह्म-ज्ञानी कहते हैं, जो उनसे पूछा जावे कि कहो

क्या साधना करके तुमने ज्ञान पाया तो नाराज हो जाते हैं। बाजे कहते हैं कि पिछले जन्म में कर आये। जो यह बात सही होती तो उनको साधना की जुगती की खबर होती यानी याद जरूर होनी चाहिये थी क्योंकि ब्रह्म ज्ञानी और ब्रह्म में कुछ भेद नहीं है। यह कहा है कि "ब्रह्मवित ब्रह्मैव भवति" और दूसरा "इजा तमउल फकर फहो अल्लाहो।" फिर सूफी या ज्ञानी को सब हालतों की खबर होनी चाहिये और इन ब्रह्म-ज्ञानियों का यह हाल है कि इनको अपने मन और इन्द्रियों की भी खबर नहीं कि वे क्या-क्या काम उनसे करा रही हैं। ऐसी सूरत में अपने को ज्ञानी कहना और ब्रह्म मानना, यह उनकी बड़ी भूल मालूम होती है और इसका फल वही है जो कर्मियों को मिलेगा यानी चौरासी का चक्कर भोगना पड़ेगा।

(10)

जो पिछले वक्तों में ज्ञानी हुए जैसे कि व्यास और वशिष्ठ और राम और कृष्ण वे सब जोगेश्वर ज्ञानी थे और प्रकाशक थे और चारों साधन उनके पूरे हुए थे और इस वास्ते वे यह कैद लगा गये कि जिसमें यह चार साधन नहीं हैं वह ज्ञानी नहीं हो सकता बल्कि ज्ञान के ग्रन्थों के पढ़ने का अधिकारी भी नहीं है। और वह चार साधन यह हैं। पहला बैराग, दूसरा विवेक, तीसरा षट सम्पत्ति। इसमें छः साधन हैं। पहला सम, दूसरा दम, तीसरा उपरती, चौथा तितिक्षा, पाँचवाँ सरधा, छठा समाधानता। और चौथा

मुमोक्षुता। आजकल के ज्ञानियों में इनमें से एक साधन भी नजर नहीं आता। उन्होंने घर त्यागने को बैराग समझा और पोथी पढ़ने और विचारने को विवेक और षट सम्पत्ति को भी ऐसे ही अपने में घटा लिया कि देर अबेर भूख प्यास की बरदाश्त है, सर्दी गर्मी की भी थोड़ी बहुत बरदाश्त कर लेते हैं, कभी इन्द्रिय और मन भी वक्त पढ़ने और विचारने पोथियों के रुक जाते हैं और ज्ञानियों से मिलना और ज्ञान के ग्रन्थों के पढ़ने और पढ़ाने के शौक को मुमोक्षता समझ लिया। जब यह समझ है तो अब उनसे क्या कहा जावे? इस मूरखता पर अफसोस आता है कि मेला और तमाशा और सैर देशान्तर की और नामवरी के वास्ते भण्डारे करने और झण्डा खड़ा करके गोल बाँधने वगैरा की तो इनके चित्त में ऐसी लाग है कि रेल के खर्च के और भण्डारे के खर्च के लिए अदना-अदना गृहस्थियों के रू-ब-रू दीन होकर और राजों और साहूकारों से रुपया लेकर जोड़ते हैं और फिर अपने तईं बैरागवान कहते हैं, इससे जाहिर है कि उनको बैराग के स्वरूप और अवधि की जरा भी खबर नहीं है और पोथियाँ पढ़ने और पढ़ाने का शौक नित्य बढ़ता जाता है। तो आश्चर्य आता है कि यह कैसा ब्रह्मानन्द इनको प्राप्त हुआ कि जिससे जरा भी मन इनका नहीं बदला और जो पूछो तो कहते हैं कि यह काम हम उपकार के वास्ते करते हैं। यह कहना उनका साबित करता है कि उनको यह भी मालूम नहीं है कि उपकार किसका नाम है। जो कोई ज्ञानी है, वह जीवों के कल्याण करने के लिए समर्थ होना चाहिये।

जीवों को बंद से छुड़ा कर मोक्ष पद में पहुँचाना, इसका नाम उपकार है और विद्या पढ़ा कर लोगों को अहंकारी बनाना और खाना खिलाना और मंदिर और बाग और धर्मशाला बनाना और सदावर्त लगाना, इसका नाम उपकार नहीं है। ऐसे उपकार के वास्ते तो साहूकार और राजे पैदा किये गये हैं, न कि ब्रह्म-ज्ञानी। ब्रह्म-ज्ञानी को तो चाहिये कि जीवों को उनके मन और इन्द्रियों के बंधन से छुड़ाकर उनके निज स्वरूप को लखाना और उसमें पहुँचाना, ताकि आवा-गवन से रहित हो जावें और कष्ट और कलेश की निवृत्ति हो जावे। सो यह बेचारे क्या करें, उन्होंने अपने जीव का कल्याण तो किया ही नहीं, दूसरे का क्या कल्याण करेंगे? न मालूम क्या दुःख पड़े या क्या आफत और घर की लड़ाई या झगड़े ने घेरा या कि आलस और सुस्ती ने दबा लिया कि घर बार छोड़ दिया और मुफ्त में खाना और कपड़ा हासिल करने और अपनी मान और बड़ाई और पुजवाने की आसा लेकर भेष ले लिया और जब यह बात उनको थोड़ी बहुत प्राप्त हो गई तब अपने तईं बड़ा आदमी और उत्तम पुरुष या कि खुद ब्रह्म-स्वरूप मान लिया और लोगों का धन खैंचना और कोठियाँ चलाना या रुपया जमा करके ब्याज लेना और व्यापार करना शुरू किया, ताकि और ज्यादा नामवरी पैदा करें और दस बीस सौ पचास साधू घेर कर उन्हें खाना खिलाकर उनसे सेवा करावें और अपनी सवारी में उनको अर्दली बनाकर निकालें और मेलों में हाथी घोड़े पालकी और नालकी जमा करके और इधर उधर से

निशान नक्कारे माँग कर शाही निकालें। अब गौर करने का मुकाम है कि क्या ऐसे लोग ब्रह्म-ज्ञानी हो सकते हैं कि जिनके मन में यह हिर्स और हविस भरी हैं और जब उनकी यह ख्वाहिशें पूरी होती हैं तब महा मगन होते हैं और औरों पर तान और अहंकार करते हैं और अपने तईं महात्मा, पण्डित और विद्यावान और महंत कहलाते हैं और गृहस्थियों से मदद लेकर एक दूसरे गोल पर अपनी रौनक और जुलूस दिखाकर मान बड़ाई चाहते हैं? यह तो अहंकार और मान में भूल गये और मन और माया के चक्कर में ऐसे फँसे कि अब निकल नहीं सकते और जो कोई उनको यह कसरें उनके ज्ञान की जतावे तो उससे नाराज होकर लड़ने को तैयार होते हैं और उसको अभक्त और नास्तिक और सख्त और सुस्त कहते हैं।

(11)

नर शरीर का महत्त्व

अगर मालिके-कुल्ल का नमूना कहीं है, तो वह मनुष्य शरीर में है। सारी रचना का नमूना छोटे पैमाने पर नर चोले में हैं। इसीलिये इसको अशरफल-मखलूकात और नर अवतार कहा है। कमाई करने का सिर्फ यही चोला है। देवताओं और फरिश्तों को भी अगर ऊपर जाने की ख्वाहिश हो तो नर चोले में आकर कार्रवाई करेंगे। और सब चोले तो सिर्फ फल भोगने के हैं। कमाई सिर्फ मनुष्य चोले में ही हो सकती है। इसीलिये कहा है कि यह नर शरीर मिला है, बड़े

भाग की बात है, इस मौके को फिजूल मत खोओ और बरबाद मत करो। इसको सुफल करो। सुफल करना यह है कि अपने सुर्त चैतन्य को उसके खजाने और भण्डार में पहुँचाओ। यही उद्धार है। नर शरीर पाकर अगर यह काम नहीं किया तो जहन्नुम अबदी में चले जाओगे। जहन्नुम अबदी का यह मतलब नहीं है कि फिर कभी इस चोले में न आओगे। इस चोले में फिर आओगे, मगर बहुत बहुत वक्त और काल के बाद।

—बचन बाबूजी महाराज, 13—5—1937

(12)

अवतार की आवश्यकता

अगर हम देह में बैठे हुए हैं और साकारी हैं तो साकार रूप में ही मालिक अपना दर्शन दे सकता है और हम मालिक के दर्शन कर सकते हैं। निराकार यानी अरूप का दर्शन और ज्ञान इस देह में बैठे हुए नहीं हो सकता। इसलिए मालिक जब देह धारन करके आवे, तभी वह हमको हिदायत दे सकता है और हम उसकी हिदायत ले सकते हैं। अगर हमारा भाग इतना जबरदस्त है कि हमको मालिक का दर्शन मिले और मालिक को हमें दर्शन देना मन्जूर है, तो जिस घाट के मसाले की हमारी देह बनी हुई है, उसी मसाले की देह धारन करके उसी घाट पर मालिक आवे, तब यह हो सकता है, वरना ना-मुमकिन है। इतना फर्क होगा कि उनमें विशेष चैतन्य है और वह इस घाट पर फँसे हुए नहीं हैं,

चेतन और बाहोश हैं। हम में चैतन्यता कम है और इस घाट पर फँसे हुए हैं। वह अपने देह स्वरूप में हमसे प्रीत लगवा कर यहाँ की प्रीतों से छुड़ावेंगे और ऊपर के घाट पर खेचेंगे। वहाँ पहुँच कर वहाँ के सूक्ष्म मसाले की देह में हम बैठेंगे और उसी मसाले की देह में वहाँ मालिक का दर्शन होगा। यही गुरु स्वरूप जिसमें यहाँ हमारी प्रीत लगी है, उस घाट के सूक्ष्म मसाले के आकार में प्रकट होगा। वह रूप हमको और ऊपर के सूक्ष्म घाट में खेंच कर ले जाएगा। इस प्रकार जैसे जैसे हमारा रूप बदलता जायगा यानी सूक्ष्म होता जायगा, वैसे वैसे ही गुरु स्वरूप बदलता जायगा और घाट घाट पर वहाँ के मसाले के रूप में दर्शन होते जावेंगे। एक सूक्ष्म से दूसरे सूक्ष्म में ओर दूसरे से तीसरे में, होते होते सबके परे जो असली अरूप है, उसमें पहुंचकर उससे एक हो सकते हैं। यह विधि अरूप मालिक से मिलने की है। इसी तरह से हम अनहद शब्द नहीं सुन सकते हैं। इस घाट पर ध्वन्यात्मक शब्द का कोई ज्ञान नहीं हो सकता। यहाँ वर्ण से ही शुरू किया जायगा। वह वर्ण अपने ध्वन्यात्मक में पहुँचा देगा।

— बचन बाबूजी महाराज, 18 6 1937

(13)

इन्सान को जो इस चोले में ताक त दी गई है यानी इन्सान की अक्ल, समझ, बूझ, बुद्धि, इन्द्रियाँ वग ैरा, सब इसी दुनिया में काम करने के लिये हैं। उनसे जो कुछ हासिल और मालूम होगा वह सब इस दुनिया का होगा और

इस दुनिया में काम देगा। उससे ऊपर के देशों का कुछ हाल मालूम नहीं हो सकता। जिस देश में बुद्धि की गम ही नहीं है, जहाँ इन्सान की रसाई ही नहीं है, वहाँ के कवायद[1] और कवानीन[2] के बारे में कयासी[3] नतायज[4] निकालना ना माकूल[5] बात है। विद्या, धन, सरवत[6], सरो सामान, इल्म, हुनर व फन वगैरा जो कुछ हासिल होगा, सब अन्तःकरन के घाट का है। यहाँ बढ़ से बढ़कर सुख व लज्जत व मजा जो कुछ हासिल किया जा सकता है, वह सब अन्तःकरण के घाट का है। वह पूर्ण सुख और आनन्द नहीं है।

इस बात को अच्छी तरह से समझ लेना चाहिये कि जब तक सन्त साध महात्मा आचार्य मौजूद थे, तभी तक वह शगल और अमल यानी अभ्यास करा के अपने दरजे की नजात बख्श सकते थे। बाद उनके जब कि उस मत के अभ्यासी यानी शागिल नहीं रहे, तब उनके दरजे के परमार्थ की कार्रवाई बन्द हो गई। उनकी टेक बाँधने और किताबें पढ़ने से नजात और उनके पद की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती। ना-मुमकिन है। वेद पुरान धर्मशास्त्र और कुरान पढ़ने से कुछ हासिल नहीं होगा। सब किस्सा और कहानी है। जो शक्के-कमर[7] मुहम्मद साहब ने किया था, वह सिर्फ कुरान पढ़ने से कोई नहीं कर सकता और न जो बुराक[8] की सवारी मुहम्मद साहब को मिली थी, किसी को मिल सकती है।

---

(1) कायदे, (2) कानून, (3) अटकल पच्चू, अलल्टप्पू, कल्पित, (4) नतीजे, (5) अनुचित, (6) ऐश्वर्य, (7) चाँद का दो टुकड़े हो जाना, मुहम्मद साहब ने चाँद के दो टुकड़े कर दिये थे, (8) मुसलमानों के मतानुसार वह घोड़ा जिस पर उनके रसूल आसमानों पर गये थे।

उन लोगों को असल में पीर नहीं पैदा हुई है। जिसकी अपनी रूह को फैज पहुँचाने की सच्ची पीर पैदा हुई होगी, वह शरीयत की पाबन्दी से अपने को रिहा कर सकेगा और

इस दुनिया की नेकनामी बदनामी और यहाँ की विद्या बुद्धि और मालूमात को बालाए-ताक रखकर खोज और तलाश कर सकेगा। दुनिया जो चाहे सो कहे, किसी की परवाह नहीं करेगा। हमारा काम मालिक से है, किसी और से क्या मतलब?

करोड़ों जन्म यहाँ रहने के बाद जब इस देश से बेजार हो जायगा और यह तजरुबा होगा कि हमने इस दुनिया में सब कुछ किया, सब हालतें हम पर गुजरीं, मगर हमारा असली मतलब नहीं बरामद हुआ, हमारी रूह को फैज नहीं पहुँचा, तब खोज और तलाश पैदा होगी। वह सन्तों और फकीरों के मत का अधिकारी जीव है। इस देश के दुःखों से बेजार[1] तो बहुत मिलेंगे, मगर इस देश से बेजार बहुत ही कम जीव मिलेंगे। सन्त साध महात्मा वगैरा जो ऊपर से आये, उन पुरुषों ने कहा कि तुम गफलत में पड़े हो, यहाँ तो कुछ भी सुख नहीं है। यहाँ दुःख ही दुःख है। जिसको तुम सुख मानते हो, वह असल में दुःख है।

ऊपर के देश में क्या सुख, आनन्द, लज्जत और मजा है, उसको जानने वालों ने यह बतलाया है कि उसके मुकाबले में इस देश के सुख और मजों की कुछ भी हैसियत नहीं है, दुःख रूप हैं।

---

(1) विमुख, अप्रसन्न।

(14)

सन्तों और फकीरों ने नाम के जरिये उद्धार होना कहा है। जिसको फकीरों ने आवाजे आसमानी या सौते सरमदी और निदा करके बयान किया है, वह सन्तों का ध्वन्यात्मक नाम है। ध्वन्यात्मक नाम के अथवा उस नाम के जो ध्वन्यात्मक का लखायक है, जाप और अभ्यास से असली फल मिलेगा। और किसी नाम से कर्मफल तो मिलेगा, मगर रूह[1] को फैज[2] पहुँचाने का मतलब नहीं निकलेगा। जो आवाज मुँह से निकले, वह सब वर्ण है। जबान से आवाज निकले, वह सब वर्ण है। ध्वन्यात्मक शब्द भी तो जबान से अदा किया जायगा तो जो आवाज निकलेगी वह उस ध्वन्यात्मक शब्द का वर्ण है। मगर ध्वन्यात्मक नाम का वर्ण उस ध्वन्यात्मक नाम का लखायक है। जिस नाम और नामी में कोई भेद नहीं है, वह नाम यानी इस्म बा-मुसम्मा ध्वन्यात्मक नाम कहलाता है। जो नामी में ताकत है, वही उसके ध्वन्यात्मक नाम में है। उस नाम यानी आवाज को अन्तर में सुनना और उसे यकजाई[3] हासिल करना, उसके नामी से मिलना और एक होना है। जिस बाला[4] मुकाम का शब्द अन्तर में सुनेगा उस मुकाम से सिलसिला कायम हो जायगा और उस आवाज को पकड़ कर उसके सहारे वहाँ पहुँच जायगा। जिस शब्द ने तीन लोक की रचना की है, उस शब्द को अगर सुने तो तीन लोक रचने की ताकत

---

(1) सुरत, (2) उपकार, हित, लाभ, (3) सम्मिलन, एक होना, (4) ऊँचा।

हासिल हो जायगी। यही इस बात की पहचान है कि आया जो शब्द सुनाई देता है, वह उस मुकाम का असली शब्द है या कोई धोखा है। जहाँ से वह शब्द निकला है वहाँ की ताकत हासिल हो जानी चाहिये। अपने अन्तर में परख पहचान कर लो। अगर सत्तलोक की बीन का शब्द सुनाई दे, तो सुनने वाले और सत्तपुरुष में कोई भेद नहीं है। वह सत्तपुरुष के समान है। किसी के कहने-सुनने की जरूरत नहीं है। अपने अन्दर में देखो कि सत्तपुरुष की ताकत हासिल हुई है या नहीं।

आप आप को आप पिछानो, कहा और का नेक न मानो

सन्तों और फकीरों ने ही नहीं, और मत वालों ने भी नाम की महिमा की है। खुद तुलसीदासजी ने जो कि राम के बड़े भक्त थे, रामायण में नाम की महिमा में कहा है :–

कहँ लग कहूँ नाम प्रभुताई, राम न सके नाम गुन गाई

(15)

कबीर धारा अगम की, सतगुरु दई लखाय।
उलटि ताहि सुमिरन करौ, स्वामी संग मिलाय ॥

— कबीर साखी संग्रह, भाग 2, सुमिरन का अंग, कड़ी 63

(16)

तन और मन की आधीनता से सुरत के छुटकारा पाने की कार्रवाई का नाम परमार्थ है। पाँचों ज्ञान इन्द्रियों की गति इसी मण्डल में हैं। इसलिये हमको किसी चीज का

असली ज्ञान नहीं है। मालिक प्रेम रूप में सब जगह मौजूद है। परमार्थ तीन तरह के हैं, निर्मल परमार्थ, परमार्थ स्वार्थ और स्वार्थ परमार्थ। निर्मल परमार्थी ही सन्त मत को समझ सकता है। मनुष्य शरीर कुल रचना का नमूना है और इसी चोले में परमार्थ की कार्रवाई हो सकती है।

परमार्थ का यह मतलब है कि जीव के अन्दर जो निर्मल चैतन्य यानी सुरत है, वह तन और मन की आधीनता और मोहताजी से छूट कर स्वतंत्र और स्वयं रूप में ज्ञान और आनन्द प्राप्त करके परम शान्ति और परम सन्तुष्टता को प्राप्त हो। ज्ञान की शक्ति चैतन्य में ही है और उसी की ताकत से सब काम हो रहा है। तन और मन दोनों जड़ हैं। मगर इस वक्त, हालत मौजूदा में, सुरत को तन और मन की आधीनता और मोहताजी है। इसका कारण है। इससे छूटने की कार्रवाई का नाम परमार्थ है।

सुरत मालिक की अंश है। वह कभी मालिक से टूटी या अलग नहीं हुई है। वह indivisible (अविभाज्य) लायतज्जुज I है। उसका कभी भाग या विभाग नहीं हुआ है। गिलाफों में जज्ब होकर किसी शक्ति ने जो अलग और अतिरिक्त रूप धारन कर लिया, वह उस शक्ति का भाग और भाग्य है। भाग्यानुसार धर्म है। सबका एक-सा धर्म नहीं है। जो एक के लिए धर्म है, वह दूसरे के लिए अधर्म हो सकता है। किसी किसी पशु का यही धर्म है कि मारकाट कर खाय। मगर मनुष्य चोले का यह धर्म नहीं है। अगर मनुष्य चोले में भी यही काम करता है तो पशु अंग मौजूद है। सबने अपना अपना धर्म और मत कायम कर लिया है। जैसी जिसकी गत

है, वैसा ही उसका मत और धर्म है। गतानुसार मत होता है।

हमारी पाँच ज्ञान इंद्रियों की गति इसी मण्डल में है। इसलिये उनके द्वारा जो हमको ज्ञान प्राप्त होता है, वह किसी चीज का असली यानी अन्तरी ज्ञान नहीं है। सिर्फ सतह का ज्ञान है। और बुद्धि की गति अन्तःकरण के घाट तक है, इसलिये उससे कुल्ल-मालिक का भेद नहीं मालूम हो सकता। 'कुल्ल-मालिक' इसलिये कहा कि घाट घाट और मण्डल मण्डल के अलग अलग धनी और मालिक हैं और 'कुल्ल-मालिक' इन सबके ऊपर है। जो शक्ति जहाँ से प्रकट हुई है और जहाँ तक उसका मण्डल है, उस मण्डल का धनी और मालिक वह शक्ति है। और यह कायदा है कि जब कोई शक्ति चेष्टा में आती है, तो पहले उसका भण्डार बनता हैं, फिर उसमें से धार निकलती है और जहाँ तक उसका मण्डल बँधता है वह वहाँ तक प्रकट रूप में, और उसके नीचे गुप्त रूप में, सब जगह मौजूद है, जैसे बिजली जिस जगह से पैदा हुई है, उसके नीचे सब जगह मौजूद है। पाँच तत्त्व या पच्चीस प्रकृतियाँ या तीन गुन या ईश्वर और माया जहाँ से प्रकट हुए हैं, वहाँ से नीचे की रचना में वह सब जगह मौजूद हैं। ईश्वर और माया दोनों ने मिलकर यह रचना की है और इनकी उत्पत्ति बहुत ऊँचे घाट से है। पहले एक था, फिर दो हुए, फिर तीन और फिर अनेक और बे-शुमार पर नौबत पहुँची।

कुल-मालिक अंस रूप में सब जगह मौजूद है, यहाँ तक कि नीचे से नीचे एक एक परमाणु तक में चैतन्य मौजूद है।

अगर वह न होता तो कोई रूप और आकार नहीं बन सकता था। मालिक को जो सबकी खबर है और सर्व ज्ञान स्वयं प्राप्त हैं, वह बे-कायदा नहीं है। चूँकि मालिक अंश रूप में सब जगह मौजूद है, इसलिये वह सबसे बा-खबर है। अगर न होता तो उसको भी कोई खबर नहीं हो सकती थी। हमारी आँख में प्रकाश है और जिस चीज को हम देखते हैं उसमें भी प्रकाश है, तब दोनों का प्रकाश की धार द्वारा सम्बन्ध और योग होता है और हमको उस चीज का ज्ञान होता है। अगर उस चीज में प्रकाश न हो या हमारी आँखों में प्रकाश की धार न आवे, तो हम कभी उस चीज को नहीं देख सकते। बिना सम्बन्ध और योग हुए ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

जहाँ दृष्टि, दृष्टा और दृश्य तीनों एक हो गये हैं, वहाँ दृष्टि का पूर्ण ज्ञान और आनन्द है यानी वहां प्रकाश अपने आपको देखता है। प्रकाश स्वयं दृष्टि रूप है। वही अनुभव है। वैसे तो जो भी चीज हम यहाँ देखते हैं उसके लिये कह देते हैं कि हम उसका अनुभव कर रहे हैं, मगर यह असली मानी में अनुभव नहीं है। सिर्फ सतह देखते हैं। X-rays (एक्सरे) वगैरा की मदद से भी सिर्फ सतह ही दिखाई देती है। किसी चीज का अन्दरूनी हाल नहीं मालूम हो सकता। चाहे कैसे ही जराय और आले इस्तेमाल किये जावें, सिर्फ बेरूनी[1] हाल मालूम हो सकता है। किसी चीज का असली हाल मालूम होना बिना अन्तरमुख अभ्यास किये ना-मुमकिन है।

अन्तःकरन के घाट की बुद्धि से मालिक का भेद नहीं जाना जा सकता। इस मण्डल में जो कायदे और कानून बर्त

(1) बाहर का।

रहे हैं, उनको देखकर और बुद्धि से निर्णय करके मालिक का हाल नहीं मालूम किया जा सकता। इस मण्डल के जरा ही परे जाकर यहाँ के कानून कायदे सब पलट जाते हैं, बल्कि बिल्कुल उलटे हो जाते हैं। जैसी जिसकी बुद्धि है और जहां तक की उसकी गति है, उसी के अनुसार मत और अकीदा कायम होता है और वहीं तक की बात समझ में आ सकती है। उससे ऊपर के घाट की बात समझ में नहीं आ सकती। प्रमाण और सबूत देकर कायल और ला-जवाब भी कर दिया जाय, पर अन्तर हामी नहीं दे सकता। ज्यादा से ज्यादा यह कह सकता है कि 'हाँ ऐसा मुमकिन हो सकता है' या 'ऐसा होगा' पर उस पर अमल और काम नहीं कर सकता।

ऊपर के घाट की कैफियत इस घाट पर नहीं दिखाई जा सकती। अन्तर अभ्यास से, उस घाट पर पहुँच कर, उनका अनुभव किया जा सकता है और वही स्वयं प्रमाण है। इस घाट पर सिर्फ अनुमान कराया जा सकता है। अनुभव तो बिना अन्तरमुख अभ्यास किये हो नहीं सकता। यहाँ प्रमाण का रूप अनुमान, कयास, मुशाबहत, दृष्टान्त आदि ही हो सकता है। अथवा यह तरीका काम में लाया जा सकता है कि हम यह साबित कर दें कि जो उसूल हम बयान करते हैं, उससे सब बातें ठीक ठीक तौर पर समझ में आ सकती हैं और उस उसूल की छटा या नमूना सब जगह मौजूद है, हत्ता कि यहाँ के कायदे और कानूनों में भी दिखलाई पड़ता है। और उस उसूल के खिलाफ जो और कोई बयान करे, वह सब बातों पर लागू नहीं होता या किसी हलके में वह ठीक है, लेकिन सब जगह उसका

इतलाक नहीं होता और ऐसी बातें और नतीजे देखने में आते हैं जो उसके खिलाफ पड़ते हैं।

यहाँ तीन चीजें काम कर रही हैं। एक तन, दूसरा मन और तीसरी सुरत यानी निरमल चैतन्य जो मालिक की अंश है। इसी के अनुसार तीन देश है, एक पिण्ड देश, दूसरा ब्रह्माण्ड देश, तीसरा निर्मल चैतन्य देश। परमार्थ में भी इसी तरह से तीन दरजे हैं। एक स्वार्थ-परमार्थ, दूसरा परमार्थ-स्वार्थ और तीसरा निर्मल परमार्थ।

जो निपट संसारी और स्वार्थी हैं, उनकी तो कोई गिनती ही नहीं है। उनके दिल में इस संसार की ख्वाहिशात भरी हुई हैं और अपने स्वार्थ और मतलब के लिए दूसरों को धोखा देने और तकलीफ व नुकसान पहुँचाने में वह जरा दरेग नहीं करते। उन लोगों ने इस संसार को सत्य करके माना है, हालाँकि जो हमेशा यकसाँ कायम न रहे, वह असत्य है। अपने जीव के कल्याण का उनको कोई फिक्र ही नहीं है। रात दिन संसार में खपे रहते हैं।

उनका भी परमार्थ के जैल में शुमार नहीं है जो मालिक के वजूद से मुनकिर हैं। वह लोग इस जिंदगी के पूर्व और पश्चात् की बात को नहीं मानते। उन लोगों का कहना है कि हम न पहले कुछ थे और न बाद इस जिदंगी के हमारा कोई वजूद रहेगा। यहीं के परमाणुओं से हम बने हैं और जो कुछ है, वह यही जिन्दगी है। जो कुछ करना हो, कर लेना चाहिये। इसके साथ इतनी बात और कहते हैं कि यह बेहतर है कि आपस में एक दूसरे के साथ सलूक से बर्ताव करें और

जहाँ तक हो सके, दूसरों को आराम पहुँचावें। इनमें बाजों का दुनिया के लिहाज से बड़ा उत्तम बर्ताव दिखलाई देता है, मगर उसकी कोई हैसियत नहीं है। कई जानवर instinctively इस तौर से बर्ताव करते हैं कि उनको देखकर बड़ा ताज्जुब होता है। इन्सान उस तरह से नहीं कर सकता। इससे जानवर का दरजा मनुष्य से बढ़ नहीं गया।

मनुष्य शरीर कुल रचना का नमूना है। नीचे से नीचे और ऊपर से ऊपर तक की कुल रचना इसमें छोटे पैमाने पर मौजूद है यानी सब मण्डलों से मुताबिकत रखने वाले चक्र, कँवल और पदम मनुष्य शरीर में मौजूद हैं। मालिक से मिलने का यही जरिया और आला है। अगर कोई एक ऐसा जरिया न होता तो मालिक से मिलना ना-मुमकिन था। कोई सीढ़ी चढ़कर मालिक से नहीं मिल सकता, क्योंकि ऐसी कोई सीढ़ी नहीं बनी हुई है। सिवा मनुष्य चोले के मालिक से मिलने का कोई जरिया नहीं है और अगर परमार्थ की किसी कार्रवाई से मालिक नहीं मिल सकता, तो वह कार्रवाई बेकार और फिजूल है। उसका नाम 'परमार्थ' नहीं हो सकता।

वह लोग भी परमार्थ की जैल से खारिज हैं जो तीर्थ मूर्ति व्रत ओर कर्म काण्ड आदि निष्फल कामों में अटक गये। वैसे निष्फल तो कोई काम नहीं जाता। जो भी काम किया जायगा, उसका फल मिलेगा। पर इन कामों से सच्चे परमार्थ का फल यानी भक्ति फल नहीं मिल सकता। इसलिये 'निष्फल' कहा।

प्राणायाम योग, बुद्धि योग, अष्टांग योग, हठ योग, प्राण योग आदि योगों से पिण्ड के नाके तक और ब्रह्माण्ड

में रसाई हो सकती है। बहुत काल तक वहाँ ठहर सकता है, मगर प्रलय और महा प्रलय पर जब देश अभाव होता है, तब वहाँ से भी फिर उत्थान होता है। मुसलमान फकीरों ने 'तर्क मौला' कहा है। जब जोगेश्वर ज्ञानियों और सूफियों ने जो पार-ब्रह्म पद में जाकर समाये, देखा कि उस देश के धनी का अभाव होता है, तो उन्होंने उस धनी को भी त्याग करने के लिए कहा। यह दोनों देश पिण्ड और ब्रह्माण्ड, मन और माया के पेट के हैं। मन और माया करके जो रचना है, वह कल्पित और नाशमान है। यहाँ तक की प्राप्ति के जितने भी अभ्यास और कार्रवाइयाँ हैं, वह निर्मल परमार्थ के जैल में नहीं आतीं। परमार्थ तो है, मगर स्वार्थ लगा हुआ है, यानी मन और माया से रहित नहीं हैं, इसलिये इनको स्वार्थ-परमार्थ और परमार्थ-स्वार्थ कहा है। पिण्ड में स्थूल मन और माया है, इसलिये पिण्ड के नाके तक की रसाई की कार्रवाई को स्वार्थ-परमार्थ और ब्रह्माण्ड में सूक्ष्म मन और माया है इसलिये ब्रह्माण्ड में रसाई की कार्रवाई को परमार्थ-स्वार्थ कहते हैं। पर-ब्रह्म पद के बाद सन्तों का निर्मल चैतन्य यानी सुरत का देश शुरू होता है। सुरत द्वारा जो परमारथ की कार्रवाई उस देश की प्राप्ति के निमित्त की जाय, उसको निरमल परमारथ कहते हैं। यही सन्तों का मत है।

जिसको निरमल परमार्थ की सच्ची ख्वाहिश पैदा हुई है, उसकी समझ में सन्त मत आ सकता है और वही उपदेश को हित और चित से सुनेगा और उसी को सुनाना चाहिये। हित इसको कहते हैं कि उपदेश सुनाना सुहाय और प्यारा लगे और समझे कि यह हमारे हित की बात है। हित होगा

तो चित (चैतन्य) देगा। सन्तों ने अपने यहाँ जबरदस्ती रवा नहीं रक्खी है। जो हित और चित्त से सुने, उसको सुनाना रवा रक्खा है। जबरदस्ती से कोई मतलब नहीं निकल सकता। जबरदस्ती करना तास्सुब और हठ है। जबरदस्ती करना या मन और माया का लालच देना या धोखा देना, यह सब बातें गलत और फिजूल हैं। जो दूसरों को धोखा देता है, वह पहले अपने आपको धोखा दे चुका है। इससे यह मुराद नहीं है कि उसने धोखा दे दे कर धोखा देना सीखा है, बल्कि इसका यह मतलब है कि उसने किसी गलत बात की धारना की है और खुद धोखे और भरम में है और उसी के जेर असर दूसरों को भी वही बात समझाता है जिससे वह भी धोखे में पड़े हैं, चाहे इसमें वह बहुत रास्त यानी सच्चा हो ओर उसकी नीयत नेक ही हो। मसलन किसी ने यह गलत बात पकड़ रक्खी है कि बिना धन के कोई काम नहीं चलता और धन जान से भी ज्यादा कदर की चीज है तो जैसे वह शख्स गलती और धोखे में है, उसी तरह और लोग भी जो इसकी बात को मानते हैं, धोखे में पड़े हैं। इसने झूठ को सत्य समझ रक्खा है। यही धोखा है।

जब तक मन और माया के देश की ताकतों का, यानी बल पुरुषार्थ पराक्रम और संकल्प शक्ति का बड़ा जोर था, तब तक उन्हीं की कार्रवाई हो सकती थी, दूसरी कार्रवाई नहीं हो सकती थी। अनन्त काल तक जीव के यहाँ रहने के बाद जब वह शक्तियाँ क्षीण हुईं या शिथिल हुईं, तब सुरत की ताकत जगाने का समय आया और तभी सन्त यहाँ पधारे और उन्होंने सुरत का पता दिया और सुरत शब्द योग

का उपदेश किया। इससे पहले सुरत शब्द योग कभी नहीं किया गया था, क्योंकि सुरत को कोई जानता ही नहीं था। अगर इससे पहले सुरत शब्द योग बतलाया जाता तो उसको न कोई मान सकता था और न कोई कर सकता था।

हर एक कार्रवाई चार बातों पर मुनहसिर है, समय, कर्म, संस्कार और अधिकार। संस्कार पुष्ट होकर अधिकार पैदा होता है। पिछला जमाना प्राणायाम आदि योग बन सकने का था। उस समय में उस अधिकार के जीव पैदा होते थे जो उन योग विधियों को कर सकते थे। उनको अब हर एक शख्स नहीं कर सकता, न अब यह समय ही उस तरह की कार्रवाई करने का है। उन अभ्यासों के करने में जैसा बल पुरुषार्थ पराक्रम और संकल्प शक्ति दरकार थी, वह अब क्षीण हो गई है। अगर एक ताकत क्षीण न होवे, तो दूसरी ताकत जगाने की कार्रवाई कैसे हो सकती है?

सबसे पहले सन्त कबीर साहब हुए और उन्होंने आकर सुरत का पता दिया और अपने सामने अपने शिष्यों से जो थोड़े से अधिकारी जीव थे, सुरत शब्द का अभ्यास कराया। उनके बाद से साध सन्त महात्मा बराबर आते रहे हैं। जो अपने में आप रत है, वह स्वरत यानी सुरत है। तन और मन के सूक्ष्म और अति सूक्ष्म रूप को ही खुदा और परमेश्वर और आत्मा और परमात्मा सब मजहबों में कहा है। सुरत का भेद किसी ने नहीं जाना। सिर्फ सन्तों ने आकर सुरत का भेद और पता दिया कि तन मन से अलग कोई जौहर और शक्ति है, जिसको सुरत कहते हैं। वह मालिक की अंस है। तन और मन उसी से ताकत पाकर काम करते हैं।

मालिक ने यह रचना दुःख देने के लिए नहीं की है। महज रहमत और फजल व करम से यह रचना की गई है। इसमें ऐन रहम व दया है। यह हालत जो कहर की यहाँ है इसकी जरूरत थी और इसमें भी दया है।

मालिक सर्व शक्तिमान है। इसका यह मतलब है कि वह स्वाभाविक रूप से सबके ज्यादा से ज्यादा फायदे के लिए काम करता है। 'सर्व शक्तिमान' से यह मतलब नहीं है कि ऊटपटाँग कार्रवाई करे। मालिक स्वाभाविक रूप से वही काम करता है, जिसमें सबके लिए बेहतर से बेहतर नतीजा निकले और इसी का नाम 'सर्व शक्तिमान' है।

जिस भक्ति का वर्णन सन्तों ने किया है, वह बाला तरीन भक्ति है। वैसे तो यहाँ सब भक्ति कर रहे हैं। कृष्ण महाराज की, वे ब्रह्म के पूर्ण औतार हुए हैं, भक्ति आला दरजे की थी, मगर सन्तों की भक्ति इन सबसे न्यारी और ऊंचे दरजे की है।

जो भक्ति सन्तन ने भाखी है, वही तो सबसे बाला है
सन्तों की भक्ति के सिवा सब कूड़ा है।

— बचन बाबूजी महाराज, 25 – 9 –1936

(17)

नृत्य

जिस कायदे से घूमती हुई और नृत्य करती हुई सुरत ऊपर से नीचे आई है और नृत्य के साथ में राग और शब्द पैदा हुए हैं, उसी तरह से घूमती और नाचती हुई राग व

शब्द के साथ सुरत ऊपर चढ़ेगी।

जहाँ से तीन लोक की रचना हुई यानी त्रिकुटी से, माया बड़े इन्तशार और बिखेर के साथ गुब्बार रूप में फैली है। वही माया का गुब्बार बदली है। यहाँ के हिसाब से वहाँ बड़ी रोशनी है, मगर जिसने ऊपर से देखा उसके लिये वहाँ बदली की छाया ही है यानी धुँधला है। जो रोशनी और प्रेम आकर्षण ऊपर है, उसमें उस घाट पर आकर बहुत कमी हो गई है, इसलिये वहाँ गुब्बार, धुँधला और बदली है। वहाँ से प्रथम बिखेर हुए और बड़े जोर शोर से माया के परमाणुओं का गुब्बार छाया। उन परमाणुओं के दरमियान से और मध्य से होकर यहाँ चैतन्य शक्ति आई है, इसलिये कहा है कि त्रिकुटी के नीचे अंधकार है। त्रिकुटी के नीचे से अंधकार शुरू हो गया और जिस कदर नीचे उतार हुआ, अंधकार बढ़ता गया। परमाणुओं के दरम्यान और मध्य में से चैतन्य धार के आने से उसकी सज और धज में खम पैदा हुआ है। हर परमाणु में खम खाने से एक खासतौर की हरकत पैदा हुई है, वही नाच और नृत्य है। जैसी हरकत हुई, वैसी ही आवाज और राग निकला। नृत्य और राग साथ साथ हैं। कहने का मुद्दआ यह है कि उस जगह जो बड़े जोर शोर से माया और तम का जहूर हुआ और उस गुब्बार ने सबको ढका, उस भाव के साथ में खास तौर की हरकत और शब्द यानी नाच, राग, रंग और रूप पैदा हुए हैं। यहाँ आकर माया का काला रूप हो गया है। काली हो गई है। काली मायी है।

हर भाव के संग में उसकी खास हरकत और आवाज होती है। यहाँ गो अब बहुत बिगाड़ और फेरफार हो गया है मगर जितने नाच और राग हैं, हकीकत में सब ऊँचे देश की नक्ल हैं। चूँकि इस समय में अन्तर अभ्यास करने वाले या तो बिल्कुल नहीं है या बहुत ही कम हैं, इसलिये इन चीजों को कोई जानता और पहचानता नहीं है। अभ्यासी और अन्तर के भेद से वाकिफकार नृत्य और राग को खूब जानते हैं। शिवजी को नट राजन कहा है। उनके नृत्य यानी नाच की बहुत तस्वीरें हैं, मगर ठीक तौर से समझ में न आने की वजह से या तो उनमें किसी को दिलचस्पी और शौक नहीं पैदा होता या उनमें रुचि के अनुसार भोग विलास आदि के भाव झोंककर नाच और गाने का सत्या नाश कर दिया है। मौजूदा वक्त के नाच और गानों में विषय भोग के रस की मुख्यता है। पाँव पर पाँव रखकर मुरली बजाते हुए कृष्ण की एक तस्वीर है। यह भी अन्तर के भेद से ताल्लुक रखती है। कहने का मतलब यह है कि अभ्यासियों और गति वाले पुरुषों ने जो ऊँचे घाट पर देखा और सुना, उसकी नकल यहाँ की गई है, मगर इसको कोई बिरला ही समझ सकता है। इतना कह देना जरूरी है कि यह तस्वीरें वगैरा उसी तरह से हैं जैसे कि कोई कितना ही ऊपर की रचना को देख आवे, मगर उसका कागज पर क्या नक्शा खींच सकता है?

नृत्य यानी नाच दो हरकात का नतीजा है। एक तो अपने गिर्द घूमना यानी रोटेशन (Rotation) और दूसरा अपने से विशेष के गिर्द परिक्रमा करना यानी रिवॉल्यूशन (Revolution)।

अपने से विशेष के गिर्द घूमने से यानी अपने धनी की परिक्रमा करने से कार्रवाई करने की ताकत हासिल होती है। इसी से अनेक मण्डल और सितारे व सैयारे अपनी अपनी कार्रवाई कर रहे हैं और इसी से सब कायम हैं। अपने गिर्द घूमने से यानी घूर्णन से अपना कारज पूरा करता है। हमारी पृथ्वी, शक्ति लेने के लिए सूर्य की परिक्रमा करती है और अपनी कार्रवाई करने के लिए यानी अपने वजूद के लिए अपने गिर्द घूमती है यानी रोटेट करती है। अगर रोटेशन बन्द हो जाय तो पृथ्वी अपने सूरज में समा जायगी। ऊपर परिक्रमा यानी रिवोल्यूशन ज्यादा और रोटेशन कम है। जिस कदर नीचे उतार होता गया है, अपने आपे के गिर्द घूमने यानी अपना कारज और मतलब सिद्ध करने की मुख्यता होती गई है। नीचे उतार होने से रोटेशन बढ़ता गया हे। सब अन्तःकरण के घाट पर अपने आपे के गिर्द घूम रहे हैं। जिस कदर रोटेशन की प्रधानता है, उसी कदर यहाँ सख्त बन्धन हैं।

ऊपर कहा गया है कि खास भाव के साथ में खास सज, धज और खम का नृत्य और गान है। अब यह बयान किया जाता है कि खास किस्म से नृत्य करने और राग गाने से खास तरह के भाव उत्पन्न किये जा सकते हैं यानी ऐसा नृत्य किया जा सकता है और गाना गाया जा सकता है कि खुद भी और देखने व सुनने वाले विलाप करने लगें, बेहोश हो जावें, सुध बुध कुछ न रहे। सूर रस और हर्ष रस वगैरा रस पैदा हो सकते हैं। जिस कदर अपने अंतर में उसी तरह की अवस्था और भाव पैदा करके नाच किया जाएगा या राग

निकाला जायगा, उसी कदर देखने वालों पर असर होगा। कामयाबी के संग नाच व गाना तभी होगा जबकि वह खास भाव और अवस्था नाचने और गाने वाले के अन्तर में पैदा की जावे। नाटक, थियेटर और सिनेमा करने वाले किसी कदर वही भाव और अवस्था अपने ऊपर लाते हैं। तब दूसरों पर भी असर होता है और उनके काम की तारीफ होती है। मगर वह सब मसनूई और दिखावा है। इस बात के कहने का मतलब सिर्फ उस उसूल को जाहिर करना है कि अन्तर के किसी भाव और अवस्था के पैदा होने पर बाहर में उसका इजहार खास तौर के नाच व राग में होता है और बाहर में खास तौर से नृत्य और गान करने से वह भाव और अवस्था पैदा हो सकती है।

अब जो जरूरी बात कहने की है, वह यह है कि जिस तरह यहाँ नाटक और थियेटर में दिखावा करते हैं, उसी तरह से अगर भक्ति मार्ग में भी महज नाटक और थियेटर की तरह बरतने लगा तो सब बेकार है। जैसे वह स्टेज पर नाटक करते हैं, वैसे ही यह यहाँ भक्ति में नाटक और खेल कर रहा है। भक्ति और परमार्थ का मतलब यह है कि सुरत ऊपर की तरफ चढ़े और चढ़कर ऊँचे देश में पहुँचे। सेवा भक्ति और परमार्थ का यह नतीजा होना चाहिये। इसके लिये अन्तरमुख कार्रवाई और अभ्यास हैं। बाहर में सिर्फ वही कार्रवाई रवा हो सकती है जो अन्तरमुख कार्रवाई में मददगार हो। सन्तमत के अनुयायियों से सिर्फ इतना कहना है कि उन्हें अपनी हालत को देखते चलना चाहिये। अन्तरमुख

कार्रवाई को भूलकर और छोड़कर सिर्फ बाहर में भेड़चाल की तरह बरतने से कोई फायदा नहीं होगा।

महज घुमेरी लगाने से ही अन्तःकरण के घाट पर कि कदर यह अवस्था पैदा हो सकती है कि बेहोश हो जावे और कुछ भी सुध-बुध न रहे। शरीर पर आग रख दी जावे और कुछ खबर न पड़े। ऐसी हालत पैदा हो जाने की कुछ भी महिमा व तारीफ और कदर नहीं है। परमार्थ से और इस चीज से कोई मतलब नहीं है। एक पंथ ऐसा है जिसमें नाचते और गाते हैं। उसके चलाने वालों ने तो अन्तर के भेद के साथ और दिल पर जरब लगाकर शगल के साथ नाच और गाना रक्खा था और अपने दरजे में वह ठीक था, मगर इस वक्त में अन्तरमुख अभ्यास करने वाले और अन्तरी भेद को जानने वाले तो कोई रहे नहीं, इसलिये अन्तर की कार्रवाई बन्द हो गई और महज बाहर में नाचना और गाना रह गया और उन लोगों ने उसको बड़े जलील दरजे तक पहुँचा दिया है। इसी तरह काशी में मन्दिरों में और खास कर वैष्णवों के हरी कीर्तन में देखने में आता है कि राम राम या कृष्ण कृष्ण छपा हुआ कपड़ा पहनकर और करताल बजाते हुए लोग नाचते गाते और चिल्लाते हैं। इसमें इस कदर महब हो जाते हैं कि बे-होश होकर गिर पड़ते हैं और कुछ सुध बुध नहीं रहती। वह लोग इसकी बड़ी महिमा करते हैं और इसी को भक्ति और परमार्थ समझते हैं, मगर यह महज नाटक और थियेटर के तौर पर है। इसकी कुछ भी हैसियत नहीं है। सब व्यर्थ है।

सुरत के उतार के वक्त में जैसे तैसे नीचे उतार हुआ, वैसे ही माया का दबाव गुब्बार और तम उस पर पड़ता गया, मगर लौटते वक्त ऊपर चढ़ने में जैसे जैसे ऊपर चढ़ती जायगी, इसकी चैतन्यता और नजाकत बढ़ेगी और चैतन्यता की वृद्धि के साथ में निहायत मगनता और हर्ष प्राप्त होगा। नूर और प्रकाश बढ़ेगा। खूबसूरत रूप निकलेगा। इस कदर मस्त होकर सुरत नाचती हुई चलेगी कि उसका कुछ वर्णन नहीं हो सकता।

ऊपर चढ़ने के लिए और मतों के अभ्यासों में जो कि पुराने वक्तों में किये जाते थे, सबसे नीचे के चक्र से धार खेंची जाती थी मसलन प्राणायाम योग, अष्टांग योग और मुद्राओं के साधन वगैरा में। इन अभ्यासों में चूँकि कुल जिस्म में से धार को समेटा जाता था इसलिये स्थूल शरीर की इस कदर सफाई और शुद्धता रखनी पड़ती थी कि खान पान आदि में अगर जरा सी भी बे-परवाही हो जावे तो मृत्यु होने का डर था। इन अभ्यासों के संयम बड़े कठिन हैं। इस वक्त में तो वह हो ही नहीं सकते। अब सन्तमत में और खसूसियत से जब से कि राधास्वामी दयाल पधारे, वह सहज जुक्ति बताई गई है कि जिसमें यह सब दिक्कतें नहीं हैं। किसी कदर शरीर की सफाई और पाकीजगी की जरूरत तो रहेगी, मगर बजाय स्थूल शरीर में से धार खेंचने के दोनों आँखों में से खेंचकर तीसरे तिल पर एक की जाती हैं। मतलब और नतीजा दोनों अभ्यासों का एक ही है, मगर सन्तमत का अभ्यास निहायत सहल और आसान है। गो उस कदर स्थूल शरीर की शुद्धता और सफाई पर जोर देने की

ज़रूरत नहीं है जैसी कि प्राणायाम योग वगैरा में होती है, ताहम दोनों आँखों से तार खेंचने में शरीर में से भी धार खिंचेगी, इसलिये खान पान आदि में किसी कदर संयम और परहेज रखना जरूरी है। प्राणायाम आदि योगों में शारीरिक बल व पुरुषार्थ की जरूरत होती थी मगर इस अभ्यास में इन चीजों की जरूरत नहीं होती बल्कि इनका होना हाजिर और माना है।

सन्तमत में दोनों आँखों से धारों का समेटना 'नाम' के द्वारा होगा। सुरत के उतार के साथ शब्द हुआ है और अब शब्द के वसीले ही सुरत चढ़ेगी। सन्तों के 'नाम' का विधिपूर्वक उच्चारण करने से अन्तर का शब्द जागता जायगा। उतार के वक्त जिस भाव, अवस्था, सज, धज, खम और नृत्य के साथ जो जो राग और शब्द हुए थे, वही शब्द फिर जागने से, उनका श्रवण करने से और अन्तर में उनका उच्चारण करने से फिर वही भाव, अवस्था, सज, धज और खम आवेगा और इनके मुताबिक सुरत नृत्य करती हुई और घूमती हुई जैसे आई थी वैसे ही लौटेगी।

तीसरे तिल की जंतरी में से निकलने के लिए तार यानी धार निहायत सूक्ष्म, लतीफ और बारीक होनी चाहिये। दोनों आँखों से जो तार और धारें खेंची जावेंगी, उनकी स्थूलता और मलीनता झाड़ने के लिए एक तो 'नाम' का उच्चारण है और दूसरे सन्तों की प्रीत है। इस देश के बंधन और प्रीतें जो कि इसको यहाँ अटकाये हुए हैं और मन व माया के विघ्न जो कि इसको अंतर में चलने से रोकते हैं, इन सबको तोड़ने के लिए सन्त सतगुरु की प्रीत है। प्राणायाम आदि

योग में मन से बड़ा जूझना पड़ता है और फिर भी मन नही मरता। सन्तमत में भी मन से जूझना है, मगर नाम और गुरु की प्रीत द्वारा मन मर जायगा और काल व माया की सब अटकें टूट जायँगी और दोनों आँखों की धारें निहायत सूक्ष्म और लतीफ व बारीक होकर तीसरे तिल की जंतरी में से तार निकल आयगा। जिस तरह बाजे के तार, खूंटियों को ऐंठ ऐंठ कर ताने जाते हैं, उसी तरह से 'नाम' के जरिये यानी नाम के सुमिरन और रगड़ और सैक़ल से दोनों आँखों के तार यानी धारें ऐंठी जायगी।

(18)

परमार्थी कार्रवाई

मन व माया का नाश होना आसान काम नहीं है। जिस कदर नाम व गुरु में प्रीत जागती चलेगी, मन मरता जायगा और अभ्यास बनता चलेगा। मन व माया से जूझना देह पर्यंत का काम है यानी यही जिन्दगी नहीं बल्कि चार जन्म का काम है, इसलिये पक्का इरादा करके इस कार्रवाई को सहज सहज करते चलना चाहिये। दोनों आँखों में से दोनों धारों को उलटाना है, मगर वह आप ही आप उलटेंगी। जबरदस्ती और जोर लगाकर आँखों के ढेलों को उलटने से नुकसान होगा। जब वह दोनों धारें अन्तर में खिंच जायँगी, तब आँख का ढेला भी आप ही आप उलट जायगा। प्राणायाम आदि अभ्यासों में भी जब चक्रों से धार खिंचती है तब ढेला उलट जाता है। तीसरे तिल में दोनों धारों को एक करना मृत्यु को जीतना है।

कहने का मुद्दआ यह है कि भेड़ चाल और भाँड व मसखरों की तरह कोई कार्रवाई नहीं करनी चाहिये बल्कि धीरज और सब्र के साथ अपनी परमार्थी कार्रवाई करते रहना चाहिये।

— बचन बाबूजी महाराज, 2 — 11 — 1937

(19)

कपट निकालना, चीर-हरण

सन्त सतगुरु इसके एक एक करके सब कपट निकालेंगे। एक कपट निकाला, फिर दूसरा निकालेंगे, फिर तीसरा निकालेंगे, इस तरह से करते करते इसके सब कपट यानी पर्दे उतार कर इसको नग्न करके छड़ा कर देंगे और इसका असली व सत्य रूप निकाल देंगे। जब छड़ा और अकेला होगा तब उनका संग कर सकेगा और उसको संग सुहायगा। इसी को चीर-हरण कहते हैं। कृष्ण महाराज गोपियों के वस्त्र उतार कर उनको नंगी करके कदम के पेड़ पर जा बैठते थे। इसके असली मानी क्या हैं, इससे लोग ना-वाकिफ हैं। तीसरे तिल यानी छठे चक्र पर कदम का पेड़ है। वहाँ जाकर बैठने से पिण्ड के सब कपट दूर हो जावेंगे और नग्न रूप निकल आवेगा।

सत्तदेश से उतार होते वक्त जो जो खोल मन और माया के सुरत पर चढ़ते गये, वह सब चीर हैं और सतगुरु उनको एक के बाद एक सब उतार लेंगे। यही उनकी असली चीर-हरण लीला है। तब उनके और सुरत के दरमियान कोई

पर्दा बाकी नहीं रह जावेगा और जीव का असली रूप बरामद हो आवेगा।

इसको चाहिये कि अपने कपट खोल खोल कर निकाले और दूर हटावे। अपनी फिक्र करे, दुनिया की फिक्र छोड़े, दुनिया को सुधारने की कोशिश न करे। कलियुग में कलियुग का प्रभाव रहेगा। कलियुग में सतयुग की हालत नहीं आ सकती। एक तो वक्त के गुजरने के हिसाब से जो सुरत के उतार में फर्क आया है, उसके लिहाज से और दूसरे यके बाद दीगरे रद्दोबदल होते होते अब जो हालत पहुँच गई है उसके लिहाज से मलीनता और चंचलता रहेगी। एक पैमाने की मलीनता व चंचलता और विष का रहना जरूरी है वरना रचना कायम नहीं रह सकेगी। जिस चीज में पृथ्वी तत्त्व होगा वही तो पृथ्वी पर ठहरेगी। अगर जल तत्त्व के रूप में आ जावे तो हिलने डुलने लगेगी और वायु रूप में आ जावे तो जमीन पर नहीं ठहर सकती, ऊपर उड़ने लगेगी और आकाश रूप में होने पर आकाश में समा जावेगी।

— बचन बाबूजी महाराज, 22— 10 —1938

(20)

सुमिरन

कहा भरोसा देह का, बिनसि जाय छिन माहिं।
स्वास स्वास सुमिरन करौ, और जतन कछु नाहिं ॥
जिवना थोरा ही भला, जो सत सुमिरन होय।
लाख बरस का जीवना, लेखे धरै न कोय ॥

बिना साँच सुमिरन नहीं, बिन भेदी भक्ति न सोय।
पारस में परदा रहा, कस लोहा कंचन होय ॥
कंचन केवल गुरु भजन, दूजा काँच कथीर।
झूठा जल जंलाल तजि, पकड़ो साच कबीर ॥

कबीर साखी संग्रह, दूसरा भाग, सुमिरन का अंग, कड़ी 55 58

(21)

पिण्ड में छः चक्र हैं, ब्रह्माण्ड में छः कँवल हैं और दयाल देश, निर्मल चैतन्य देश, में छः पदम हैं। दसों अवतार जो जग में आये, ब्रह्म ही के अवतार थे, मगर पहले तीन अवतार मच्छ, कच्छ और वाराह पशु रूप के थे और उनका ताल्लुक नीचे के तीन चक्रों से था जिनमें हैवानी ताकतों का जोर बहुत ज्यादा है। मच्छ अवतार गुदा चक्र का, कच्छ इन्द्री चक्र का, वाराह अवतार नाभि चक्र का शूकर रूप में था। हृदय चक्र पर पशु और नर की सन्धि है। हृदय चक्र पर सिमट कर आने से पशुओं की मृत्यु हो जाती है। और अगर वहाँ बैठकर बा-होश कार्रवाई कर सके तो नर श्रेणी में आ जाता है। नरसिंह यानी नर और पशु का अवतार हृदय चक्र का था। इसके बाद ऊपर के चक्रों और कँवलों के अवतार आये और सबसे आखीर में श्रीकृष्ण महाराज ब्रह्म के पूर्ण अवतार हुए। सतयुग से लेकर द्वापर युग के अन्त तक जब पिंड देश और ब्रह्माण्ड देश के धनियों के अवतार हो चुके, तब कलियुग में ब्रह्माण्ड के ऊपर निर्मल चैतन्य देश और दयाल देश के सन्त अवतार होने का समय आया।

इससे पहले सन्तों को अवतार लेकर आने की जरूरत नहीं थी क्योंकि जीवों का अधिकार नहीं था, उसी कायदे से जिससे कि सतयुग और त्रेतायुग में कृष्ण नहीं आ सकते थे।

— बचन बाबूजी महाराज, भाग 1, बचन 77, दफा 10
(1961 का संस्करण), 12 – 12 – 1940

(22)

पिण्ड देश और ब्रह्माण्ड देश के जितने अवतार आये, वह सब काल के अवतार थे, इसलिये उन्होंने मार काट करके सुधार किया जैसे राम और रावण का युद्ध।

— बचन बाबूजी महाराज, भाग 1, वचन 77, दफा 7
(1961 का संस्करण), दिनांक 12 – 12 – 1940

(23)

सन्त चूंकि दयाल देश और दयाल पुरुष के अवतार हैं, इसलिये मार काट नहीं करते बल्कि दया से अधिकारी जीवों का सुधार और उद्धार करते हैं।

— बचन बाबूजी महाराज, भाग 1, वचन 77, दफा 8
(1961 का संस्करण), दिनांक 12 – 12 – 1940

(24)

सरन, दुनियादारों की मुखालिफत

हर एक शक्ति का देवता और धनी होता है। जिस देवता या धनी या इष्ट से शक्ति आकर वह कार्रवाई की

थी, उस देवता या धनी या इष्ट को ही त्याग दे। उसकी सरन तोड़ दे। इसका नाम तबर्रा है। अभी यह काल और माया की सरन लिये हुए है। उनकी सरन तोड़ कर, उनके पन्जे से निकल कर कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल की सरन लेनी चाहिये। जिस कदर सरन लेगा, दीनता और प्रेम घट में पैदा होगा। ऐसे भक्त के लिए फरमाया है कि अगर मालिक की सरन प्राप्त है तो उसके सब गुनाह मुआफ हो जावेंगे और जिसको मालिक की सरन प्राप्त नहीं है तो वह चाहे बे-गुनाह मालूम हो, बढ़के गुनहगारों में गिना जायगा। वैसे बे-गुनाह तो कोई है नहीं। फर्क सिर्फ इतना है कि एक के गुनाह ज़हूर में आने लगे हैं, उसको अपने गुनाहों की खबर पड़ने लगी है और उनको दूर करने के लिए वह सरन में आया है। इससे सब गुनाह धुल जावेंगे। दूसरे को अभी अपने गुनाहों की खबर भी नहीं पड़ी है कि मुझमें क्या क्या औगुण और विकार भरे पड़े हैं और अपने को बे-गुनाह समझता है। जो अपने को रोगी ही नहीं समझता, वह इलाज क्या करावेगा? वह अभी दया के हलके में नहीं आया है। वह अभी काल के सुपुर्द है। हजरत ईसा ने भी कहा है कि आओ ऐ गुनहगारों, मैं तुम्हारे लिये आया हूँ। बे-गुनाह मालिक के दरबार में दखल नहीं पावेंगे। लोग इसकी हँसी उड़ाते हैं कि यह क्या उलटी बात कही है, मगर इस कहने में कितनी सत्यता है, इसकी उनको खबर नहीं हैं। दुनियादार इन बातों को नहीं समझ सकते। दुनिया की रीति और परमार्थ व भक्ति की रीति बिल्कुल उलटी है। दुनिया ने

हमेशा भक्तों को तकलीफ ही दी है, मगर सन्त साध महात्मा बर्दाश्त करते हैं। अगर दुनियादारों की तरफ से मुखालिफत न हो तो भक्ति में कसर और कमी है। यह भक्त और उसकी भक्ति की पहचान है कि बिला किसी वजह के आप से आप दुनियादारों के दिलों में भक्त के लिए जलन पैदा हो। भक्तों ने बड़ी-बड़ी जिल्लतें सही हैं। स्वामीजी महाराज ने अपने जमाने के मुआफिक, हुजूर महाराज ने अपने जमाने के मुआफिक और महाराज साहब ने अपने जमाने के मुआफिक कौन ऐसी जिल्लतें और तकलीफें हैं, जो दुनियादारों की वजह से बर्दाश्त न की हों।

(25)

भक्ति, उसका रूप और महिमा

भक्ति महातम सुन मेरे भाई।
सब सन्तन ने किया बखान ॥
यही मता गुरु मत पहचानो।
और मते सब झूठ भुलान ॥

सन्तों ने जो भक्ति वर्णन की है, उसी की महिमा है। वैसे तो सबों ने अपने अपने दरजे की भक्ति कही है और यहाँ भी सब एक दूसरे की भक्ति कर रहे हैं, परन्तु प्रमाण भक्ति सन्तों ने ही कही है।

जिससे जिसकी गरज और मतलब अटका है, वह उसी की भक्ति कर रहा है। जिसको धन माल विद्या बुद्धि बगैरा इस देश के सामान की चाह है और जिससे यह चीजें प्राप्त

होने की आशा है, उसे उसकी भक्ति करनी पड़ती है। इस घाट से ऊँचे घाट का मन है, ऊपर के धनी हैं, देवता हैं, सबकी भक्ति करनी पड़ती है। कृष्ण महाराज ने जिस भक्ति को कहा है, वह बहुत ऊँचे दरजे की है, और भक्ति की इतनी महिमा की है कि भगवद्‌गीता में कृष्ण महाराज ने फरमाया है कि जो सब छोड़कर सिर्फ मेरी सरन में आवे, उसका निर्वाह हो जायगा। मगर सन्तों की भक्ति इन सबसे न्यारी है और वही सच्ची और बाला है।

जिसमें जितनी ज्ञान की शक्ति है वह सब ज्ञान मय होकर और कोई अंग ज्ञान का छूटा या छिपा मन के गिलाफ में चुराया न रह जाय यानी सर्वाङ्ग करके मालिक में समा जाय और लौलीन हो जाय, यह पूरन रूप भक्ति का है। भक्ति का अधिकार सुरत को है। सुन्न में सुरत मन से न्यारी होती है, तब सच्ची भक्ति शुरू होती है और सत्त लोक में जाकर पूरी होती है। वैसे भक्ति की कार्रवाई होती रहती है, मगर सुन्न तक मन का साथ रहता है। सुन्न से मन का साथ छूट जाता है। मालिक के प्रेम आकर्षण से जो आकर्षित हो, वह भक्त है। बाकी सब झूठे हैं। प्रेम आने पर कोई जतन या परियास नहीं करना पड़ता। प्रेम अनमोल है। इसकी कोई कीमत नहीं है। इसके बदले में कुछ नहीं दिया जा सकता। जिसके बदले में कुछ दिया जा सके, उसकी कीमत हो सकती है। मन और माया का बदला और कीमत हो सकती है। चैतन्य का कोई बदला या कीमत नहीं हो सकती। वह अनमोल है।

— बचन बाबूजी महाराज, 17 – 8 —1936

(26)

त्रिकुटी जाय लंका गढ़ घेरा।
रावन ब्रह्म राम मन हेरा ॥
सीता धुन ले सूरत साधी।
पहुँची जाय अवधपुर आदी ॥
राज किया घर अजर बसाया।
रावन सीता राम समाया।

राधास्वामी साहब, सार वचन राधास्वामी छन्द बन्द, भाग 2,
—बचन 15, शब्द 1, कड़ी 6—8

(27)

अन्तःकरण के घाट पर मन भूत अघ रावण की तरह है। वह रावण से भी ज्यादा बलिष्ट और मोटा है। इस मन और उसके कुटुम्ब को करबला में कलपा कलपा कर दफन करना होगा। बार बार दफन करने और फिर जी जी उठने से, गो कुछ फायदा होता है, मगर जो असली नतीजा मकसूद है, वह बरामद नहीं होता। जैसे श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन के ही हाथों से उसके कुटुम्बियों को, गीता का उपदेश देकर, कटवा डाला था, इसी तरह उन अंगों को, जिनको यह अपना समझता है या अपना उपकारी जानता है, इस तरह मार कर दफन करना होगा कि फिर उभरने का मौका न रहे। रमजान में रोजा रखते हैं, इस तरह फाका करके और रियाज करके तीसरे तिल पर पहुँच कर वहाँ के मन रावण को मारेगा जिसके दस सिर हैं, एक कटा और दूसरा निकल आया, तब सुरत चन्द्र के दर्शन ब-शक्ल

हिलाल-माह-नौ करेगी। यह ईद है। और दसवें द्वार पर पहुँचकर अपने निज रूप के दर्शन शर्द ऋतु के पूर्णमासी के चाँद की तरह प्राप्त होंगे और निर्मल होकर मन माया से छुटकारा पाकर सुरत पुरुष को ब्याहेगी।

–बचन बाबूजी महाराज, भाग 4, (1956 संस्करण), बचन 95

(28)

सवाल–मुहम्मद साहब ने चाँद के दो टुकड़े कैसे किये?

जवाब–चाँद से मतलब इस चन्द्रमा से नहीं है। यह तो उपग्रह है। छठे चक्र का चन्द्रमा जो कि दसवें द्वार से मुताबिकत रखता है यानी उसकी छाया है, उससे मतलब है। मुहम्मद साहब ने इसके दो टुकड़े किये यानी उस स्थान को चीर कर पैठे।

(29)

कुरबानी, यज्ञ

असली कुरबानी का रूप और मतलब। बकरे की कुरबानी, अश्वमेध यज्ञ, ऊँट की कुरबानी, सोम यज्ञ और गोमेध यज्ञ से क्या मतलब है?

बगैर कुरबानी यानी मर्दन किये, उन अंगों के, जो परमार्थ के रास्ते विघ्नकारक हैं, अन्तर में रास्ता चल नहीं सकता। यह एक किस्म का संजम और साधन है और जो उस रास्ते पर चल रहे हैं, उन पर ऐसी हालतें गुजरती रहती हैं।

मर्दन करने से यह मतलब है कि जीव ब-खुशी व रजामन्दी शौक से अपना गला काट दे, अपने तईं ज़िबह करा दे, जिस तरह खुशी से डॉक्टर से छुरी फिरवाता है। चाहे उसमें किसी कदर तकलीफ भी महसूस करता है,

लेकिन समझता है कि मेरी बेहतरी व बेहबूदी इसी में है।

यह कुरबानी किसी जानवर की जान लेने से नहीं करनी है। किसी की जान जबरदस्ती लेना तो अजाब है। अपने ही विकारी अंगों की जो मन के गहरे झुकाव के लिहाज से किसी न किसी पशु अंग से ताल्लुक रखते हैं, कुरबानी करनी है।

जो जीव सन्त सरन में आये हैं, उन पर बिकारी अंगों का असर कम व्यापेगा। कोई करम वेग जो अन्तर में नहीं कट सकता, अगर आया भी, तो इतना जोर उसका नहीं होगा कि बहा ले जावे और भारी नुकसान कर दे, जैसे विकारी अंगों में बरतने से इसके सम्बन्धी रिश्तेदारों वगैरा तक पर खराब असर पड़ता है, वैसे ही उन अंगों के मर्दन करने से और सकारी अंग जागने से उन सब रिश्तेदारों, दोस्तों बगैरा पर अच्छा असर पड़ता है।

विकारी अंगों, लोभ मोह आदिक में, लोभ सबसे नीचे दर्जे का है। वह बकरे से मुवाफकत रखता है।

लोभ की कुरबानी बकरे की कुरबानी है

अन्तःकरण के घाट पर मन की चंचलता जबरदस्त घोड़े से मुशाबत रखती है। वह तमाम इन्द्रिय द्वारों पर दौड़ता फिरता है, चक्कर लगाता है। जब वह सब जगह दौड़ फिर कर लौट आवे और कहीं पकड़ा न जावे तो गोया उसने पिण्ड के चक्रों को और इद्रियों को कमोबेश फतह कर लिया और स्थूल मन की चंचलता किसी कदर काबू में आ गई, वह चक्रवर्ती राजा है। यह अश्वमेध यज्ञ है।

जब स्वाँस झीना और हल्का होकर और प्राण जिनकी चाल ऊँट की तरह ऊपर नीचे है, सूक्ष्म होकर संपूर्ण अंग में तीसरे तिलके बारीक द्वारे और नाके में से रगे-जान से होकर निकल सके तो यह ऊँट की कुरबानी है। पहले जमाने में यह काम प्राणायाम के जरिये से बड़ी कठिनाई से एक एक चक्र करके षट चक्र को वेध कर होता था।

पिण्ड यानी रेगिस्तान में तो प्राण रूपी ऊँट खूब चलता है, मगर जब तीसरे तिल की पहाड़ी पर चढ़ता है, तब घबराता है। बिलबिलाता है। यह चढ़ाई सुरत शब्द अभ्यासी सहज में कर लेता है। अलेहदा अलेहदा चक्रों के बेधने की जरूरत नहीं होती, यह सब गौन अंग से होता रहता है। अगर किसी चक्र की भी ताकत प्रत्यक्ष तौर पर बढ़ जावे तो सिद्धि शक्ति में फँस जावेगा और जब तक वह ताकत भुगत भुगत कर थक न लेगी, पिण्ड से इसको निकालना मुश्किल हो जावेगा क्योंकि वहाँ मन की मुख्यता है और गुरु यानी शब्द का सरीही असर सुरत पर नहीं पड़ता है और सुरत का घाट पिण्ड के नाके तीसरे तिल पर है। सिद्धि शक्ति की दुनिया में बड़ी महिमा है, मगर असलियत में यह भारी जाल है।

सोम यज्ञ में दुम्बे या बकरे को किसी तेज हथियार से नहीं मारते हैं, बल्कि उसके सब इंद्रिय द्वारे बंद कर देते हैं ताकि कहीं से आवाज न निकल जावे और वह बिला चिल्लाये मर जावे। जब सब द्वारों से खिंच कर सुरत तीसरे तिल पर, जो जोगियों का दसवाँ द्वार है, आवे तो देह और मन के सब अंग अर्पण हो जावेंगे और इसको चन्द्र रूप के दर्शन प्राप्त होंगे। तब असल सोम यज्ञ होगा।

इन सब कुरबानियों से बढ़कर जब सुरत पिण्ड के सब द्वारों से खिंच तीसरे तिल कर पहुँच कर और मौत के घाट से निकलकर सहसदल कँवल में समाने लगती है, गोमेध यज्ञ है। गौ का बड़ा सरल और कोमल स्वभाव है। वह सुरत के स्वभाव से मुवाफकत रखता है। सुरत गौर रंग है और सबकी हितकारी और उपकारी है। अपनी पूँजी खर्च करके तन मन को फायदा पहुँचाती है, गोया घास खाकर दूध देती है। गऊ जोनि के बाद मनुष्य चोला अवश्य मिलता है।

कुरबानी के लिए ऐसा दाखला है और कहा जाता है कि जब किसी पशु की कुरबानी हो, तो पहले यह ताकत हासिल कर ली जावे कि उसको मारकर जिलाया भी जा सके।

यह मरदन और कुरबानी तैयारी है, उस हालत के आने के लिए, जब दया नाजिल हो सके, यानी अपना बल हारता चले और मालिक पर बलिहार होता चले। जब उनकी दया दृष्टि पड़ेगी, छिनभर में काम हो जावेगा। कोई कहे कि जब छिन भर ही में काम हो जावेगा और गुरु समरथ हैं, तो इस सब पसारे की जरूरत ही क्या है? हाँ, वह दर-असल समरथ हैं और एकदम ऊपर खेंच सकते हैं, लेकिन बिला सफाई के खेंचने से यह बेहोश हो जावेगा और फिर नीचे भेजना पड़ेगा। सफाई और चढ़ाई के लिए गुरु दृष्टि से बढ़कर और कोई तरीका नहीं है। उनकी दया दृष्टि पड़ने से हर बार सुरत का कुछ अंग ऊपर चढ़ेगा और निर्मल अंग ऊपर ठहरता जावेगा।

— राधास्वामी मत के चतुर्थ आचार्य सन्त सतगुरु बाबूजी महाराज
के बचन, भाग 4, 86, दिनांक 18-4-1932

(30)

तिलांजली, तोबा, तबर्रा

परमार्थ में रगबत, नफरत, स्वभाव, दिल का रुझान और तबियत का रुख, यह सब बदलना पड़ेगा। जो रगबत नफरत और स्वभाव पहले था, वही कायम रहेगा तो जैसे पहले संसार कमाता था, वैसे ही अब भी संसार कमाता रहेगा, परमार्थ नहीं कमा सकता। परमार्थ के लिए दूसरे किस्म की रगबत नफरत और स्वभाव पैदा होने की जरूरत है, बल्कि पहली रगबत नफरत से बिल्कुल उल्टी रगबत नफरत पैदा करनी होगी। पहले संसार और संसार के बासी प्रिय थे। अब उनसे चित्त में हटाव पैदा होना चाहिये। इसके लिए यह लाजमी और जरूरी है कि पहले जिन इष्टों और देवताओं की सरन ले रक्खी थी और जिनसे ताकत पाकर काम करता था, उनसे रिश्ता तोड़ दे। यह सन्त मत का तबर्रा है। और यह तबर्रा करना ही पड़ेगा। अगर पुराने इष्टों की टेक दिल में मौजूद रहेगी तो नया इष्ट और खासकर सत्तपुरुष राधास्वामी का इष्ट नहीं धारन कर सकता और अगर दुरुस्ती से नहीं धारन किया गया, तो सन्तमत में शामिल होने का पूरा फायदा नहीं मिल सकता। इसलिये हर एक शख्स को जो राधास्वामी मत में शरीक हुआ है या होना चाहता है, चाहिये कि पहले के इष्टों से सम्बन्ध तोड़ दे और उनसे तबर्रा करके आवे। अगर पुराने इष्टों का जरा भी लेश बाकी रहेगा तो वह अपना हक माँगेंगे और आगे चाल न चलने देंगे। एक सतसंगिन थी जो अरसे तक सतसंग करने के बाद कहने लगी कि हम गोश्त खाना चाहती हैं। इससे जाहिर होता है कि पहले कभी ऐसा

इष्ट रहा होगा।

हिंदुओं में मृत्यु के बाद सब क्रिया कर्म करके तिलांजली देने की प्रथा है। हाथ की अंजुली में जल लेकर और तिल डालकर मृतक का नाम लेकर छोड़ते हैं और तिनका तोड़ते हैं। इसका मतलब यह है कि मरने वाले शख्स के साथ जो संबंध और नाता था, उसको तोड़ दिया। यह तिनका तोड़ना जरूरी है और तोड़ देना ही चाहिये। न तोड़ने में मरने वाले का और जो मौजूद हैं, दोनों का परमार्थी हर्ज और नुकसान है। इसी तरह से जब सन्तमत में दाखिल हो और सत्तपुरुष राधास्वामी का इष्ट धारन करे, तब पुराने इष्टों और अटक भटक वगैरा सबको तिलांजलि दे देनी चाहिए।

इस तबर्रा या तिलांजली से यह मुराद नहीं है कि पिछले सन्त साध महात्मा व पीर पैगम्बर वगैरा की बे-अदबी या निन्दा की जावे या उनके बचन बानी और ग्रन्थों वगैरा की बे-कदरी की जावे। सिर्फ इतनी जरूरत है कि उनमें से इस भाव को हटा लेना चाहिये कि वे हमारे मुक्ति दाता हैं। विश्वास पैदा हो जाना चाहिये कि उनसे अब हमको नजात नहीं मिल सकती। हमको मुक्ति और मोक्ष हमारे वक्त के सतगुरु से ही मिलेगी। सिवा इसके बाकी उन बुजुर्गों की बड़ी ताजीम और अदब करना चाहिये। यह उन्हीं का प्रताप है कि चाहे जिस दर्जे के वह साध महात्मा थे मगर इस देश में परमार्थ की रीति चलाई जिससे रफ्ता रफ्ता सन्तमत के परमार्थ के अधिकारी जीव पैदा हुए। उनके बचन बानी और ग्रन्थों से हिदायत और गवाही ली जा सकती है और यह उन्हीं की ब-दौलत है कि उनको पढ़ पढ़ कर जीवों में

परमार्थ का शौक पैदा हुआ, इसलिये उनके फजल व करम और दया का शुक्र करना चाहिये। उनकी याद कर करके मालिक का गुणानुवाद गाना चाहिये। यह सन्तमत के मुताबिक मदह-सहाबा है।

तोबा करना और मुआफी माँग लेना काफी नहीं है। 'तबर्रा' करना चाहिये। सन्तमत में 'तोबा' और 'तबर्रा' के क्या मानी हैं, वह नीचे बयान किये जावेंगे। लोग आकर कहते हैं कि साहब मुआफ कर दीजिये और हाल उनका यह है कि जबान से तो यह कह रहे हैं, मगर मन में फिर वही काम करने के लिए दाँव पेच लगा रहे हैं। यह मुआफी माँगना नहीं है। यह कपट है। यह गुनाह से बढ़कर गुनाह है। अगर कोई कसूर बन पड़ा तो दिल में उसके लिए सच्चा पश्चात्ताप पैदा होना चाहिये और इस बात का पक्का इरादा होना चाहिये कि हमसे यह काम आइन्दा न बन पड़े। हमको अपनी ही दो चार बातें अब तक याद हैं, गो उन वाकआत को आज पचास साल का अर्सा हो चुका है। जब उनका खयाल आता है तो जिस्म काँप उठता और मन में मरोड़ और ऐंठन होने लगती है कि हाय हमसे ऐसा काम क्यों और कैसे बना। अपनी हालत को अन्तर में देखते चलना चाहिये, आया मन में यह मरोड़ और ऐंठन और पश्चाताप होता है कि नहीं। इस तरह के भाव के पैदा होने को 'तोबा' कहते हैं। अगर यह भाव नहीं आया तो मुआफी माँगना कपट और झूठ है। क्या वे किसी के दिल के हाल को नहीं जानते हैं? वे पूरन धनी हैं। उनके सामने कपट से पेश आना किस कदर गलती की बात है। जिसके दिल में सच्चा पश्चाताप पैदा हुआ होगा,

उसको बाहर में मुआफी माँगने की जरूरत नहीं है। उसको तो इस कदर अफसोस होगा कि जबान से कुछ नहीं कह सकता। उसके मुआफी माँगने से पहले मुआफी उसकी अगवानी को आयगी, जैसा कि उर्फी ने कहा है :—

मुर्ग तबा अन्दर हवाए मासियत नकशूदा बाल।
अफ्व तो शाहीन रहमत रा वराँ अन्दाख्ता ॥[1]

मालिक की मुआफी को शर्म आती है कि ऐसा भक्त अपने दिल में पछता रहा है और मुआफी उसके पास न जावे। ऐसे भक्त के सब गुनाह मुआफ हैं। यह भक्त भगवन्त रूप है। ऐसे भक्त के लिए कहा है कि उसके हृदय में जिसके लिये दया आ जावे उसका उद्धार हो जाता है।

तोबा के बाद 'तबर्रा' होना चाहिये। वह 'तबर्रा' नहीं कि जिस पर शीया और सुन्नियों में झगड़ा होता है। लफ्ज उनका इस्तेमाल कर दिया है। मानी सन्तमत के अनुसार कहे गये हैं।

(31)

सन्त कभी प्रचार करने को नहीं जाते। जो आता है, उनके पास आता है। सन्तों का यह उसूल है कि अगर अमृत भी पिलाना हो तो जबरदस्ती नहीं पिलाना चाहिये। जब तक

---

(1) गुनाह की हवा में उड़ने के लिए खू-ए-इन्सानी के परिन्द ने पर भी नहीं खोले थे कि तेरी अफू ने रहमत के शाहीन को उस पर डाल दिया यानी मालिक ऐसा दयालु है कि गुनाह करने का ख्याल भी पूरी तरह इसके दिल में पैदा न होने पाया था या गुनाह करने भी न पाया था कि उसकी मुआफी होकर उसका नाम व निशान मिट गया।

किसी को अमृत पान करने की प्यास पैदा नहीं हुई है और खुद अमृत नहीं माँगता है, तब तक अगर अमृत पिलाया जायगा तो के कर देगा या पागल हो जायगा या उसके रूप का अभाव हो जायगा। कोई फायदा नहीं होगा। जबरदस्ती से अमृत पान कराना भी बेकार है। अब कोई यह कहे कि अगर प्रचार नहीं किया जायगा तो लोग सन्तों के पास कैसे आवेंगे और उनको कैसे मालूम होगा तो उनका यह खयाल करना गलत है। सच्ची बात तो यह है कि जो मालिक से मालिक को चाहने वाला है, वह आप से आप खिंचा चला आयगा। मगर सब धन सन्तान और नामवरी के आशिक और ख्वाहिशमन्द हैं। स्वामीजी महाराज ने फरमाया है कि :–

मैं कहूँ कौन से भाई, कोई मेली नजर न आई

मालिक से मालिक को चाहने वाला भक्त चाहे दुनिया के किसी पर्दे पर हो, खिंचा चला आयगा और वही अमृत पान करने के योग्य है। हम लोग भी जो सतसंग में पड़े हैं तो यह उनकी दया है कि उन्होंने सतसंग में लगा रक्खा है, वरना हमारी क्या ताकत है कि सच्चे सतसंग से मेल कर सकें?

—बचन बाबूजी महाराज, भाग 2, बचन 11, 3–9–1937,
दफा 90 (12), (1964 का संस्करण)

(32)

सन्त अमृत से मारते हैं और काल विष से मारता है।

"अमृत पी पी मरें जहर की गाँठी खोली"

मारना यह है कि कर्मों के पेड़ की आबफशी और सिंचाई जो पहले मन के विकार रूपी जहर से होती थी, अब

शब्द रूपी अमृत से होने लगी। अमृत से उस पेड़ का फलना-फूलना नहीं हो सकता। अब सूखा पड़ने लगा। उसका बीज सूखने लगा। जैसे चाशनी बनाने में दूध डालने से मैल निकलता है, उसी तरह इस अमृत की धार का संग होने पर कर्म रूपी मैल निकालता है। कर्म जल्द जल्द प्रकट होते हैं। मगर प्रबल नहीं हो सकते हैं। कर्म और विकार जो अन्दर गुप्त रक्खे हैं, वह प्रकट होंगे और सफाई होती जायगी, मगर कर्मों की वृद्धि नहीं होगी। इस तरह सतसंगियों की शुद्धि होती है। विकार नहीं बढ़ते हैं। जिन नाकिस कर्मों के प्रकट होने व कटने में कई जन्म लगते थे वे बहुत जल्द इस तरह से कट जाते हैं।

—बचन बाबूजी महाराज, भाग 3, बचन 16, 20—8—1936 दफा 82 (4), (1968 का तृतीय संस्करण)

(33)

यह बात सच है कि जिसको भगवान छू देते हैं वह तर जाता है। इस हिसाब से कंस और रावण भी तरे होंगे। मगर कहाँ तक तरे होंगे उसमें फर्क है। स्वर्ग तो बहुत नीचे है। इस पृथ्वी से जरा ही ऊपर है। थोड़े दिन खुशी मना कर यहाँ आ जाना पड़ता है। जो पूरा तर जावे तो हमेशा को आनन्द हो जावे, फिर यहाँ नहीं आना पड़े। अगर सन्त छू दें तो वह पूरा तर जावेगा यानी पूर्ण और सत्य उद्धार हो जावेगा।

सन्तदासजी, पत्र संख्या 125, 18 9 1967

